



MATS
UNIVERSITY

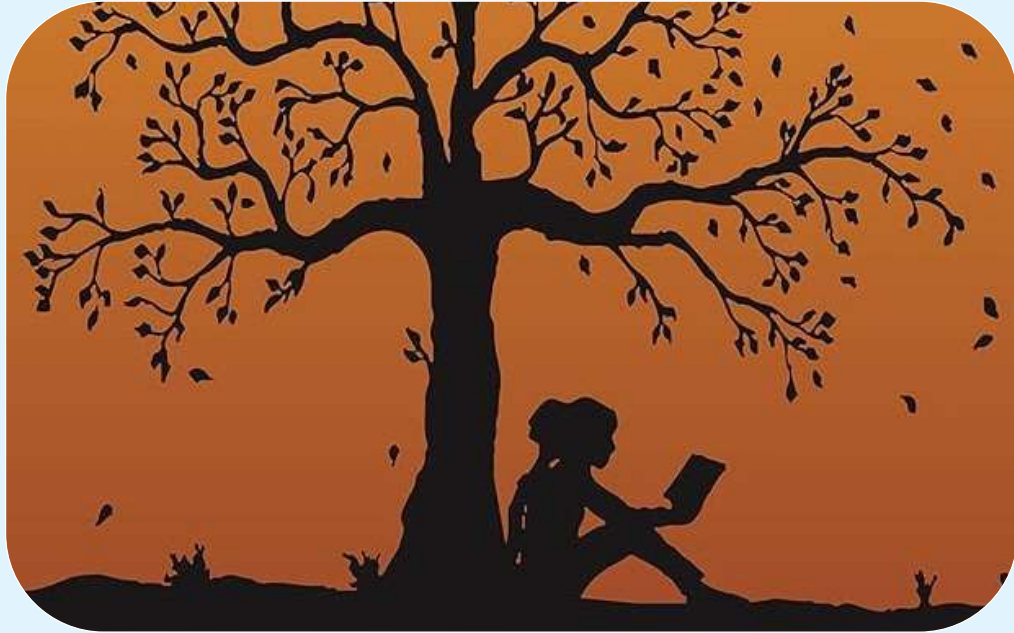
NAAC
GRADE **A+**
ACCREDITED UNIVERSITY

MATS CENTRE FOR DISTANCE & ONLINE EDUCATION

छायावादोत्तर काव्य

मास्टर ऑफ़ आर्ट्स - हिन्दी

द्वितीय सेमेस्टर



SELF LEARNING MATERIAL

COURSE DEVELOPMENT EXPERT COMMITTEE

1. Prof. (Dr.) Reshma Ansari, HOD, School of Arts and Humanities, Hindi Department, MATS University, Raipur, Chhattisgarh.
2. Dr. Sudhir Sharma, Subject Expert, HOD Hindi Department, Kalyan College, Bhilai, Chhattisgarh.
3. Dr. Kamlesh Gogia, Associate Professor, School of Arts and Humanities, Hindi Department, MATS University, Raipur, Chhattisgarh.
4. Dr. Sunita Shashikant Tiwari, Associate Professor, School of Arts and Humanities, Hindi Department, MATS University, Raipur, Chhattisgarh.
5. Dr. Rajesh Kumar Dubey, Subject Expert, principal Shahid Rajiv Pndey Govt. College, Bhatagouan, Raipur Chhattisgarh.

COURSE COORDINATOR

Prof. (Dr.) Reshma Ansari, HOD, School of Arts and Humanities, Hindi Department, MATS University, Raipur, Chhattisgarh.

COURSE /BLOCK PREPARATION

Dr. Suparna Shrivastava
Assistant Professor, School
of Arts and Humanities,
Hindi Department, MATS
University, Raipur,
Chhattisgarh.

March, 2025

@MATS Centre for Distance and Online Education, MATS University, Village- Gullu, Aarang, Raipur- (Chhattisgarh)

All rights reserved. No part of this work may be reproduced, transmitted or utilized or stored in any form by mimeograph or any other means without permission in writing from MATS University, Village- Gullu, Aarang, Raipur-(Chhattisgarh)

Printed & published on behalf of MATS University, Village-Gullu, Aarang, Raipur by Mr. Meghanadhu Katabathuni, Facilities & Operations, MATS University, Raipur (C.G.)

Disclaimer: The publisher of this printing material is not responsible for any error or dispute from the contents of this course material, this completely depends on the AUTHOR'S MANUSCRIPT.
Printed at: The Digital Press, Krishna Complex, Raipur-492001(Chhattisgarh)



MAHDSC203
Chhayawadottar Kavya

छायावादोत्तर काव्य (Chhayawadottar Kavya)

मॉड्यूल		पेज नंबर
	मॉड्यूल -1 गजानन माधव मुक्तिबोध	1-13
इकाई 1.1	चाँद का मुँह टेढ़ा है: कविता 'अंधेरे में'	14-27
इकाई 1.2	प्रयोगवादी दृष्टि	28-38
इकाई 1.3	आत्मसंघर्ष और समाज-चेतना	
	मॉड्यूल -2 अज्ञेय	
इकाई 2.1	आँगन के पार द्वार: कविता 'असाध्य वीणा'	38-50
इकाई 2.2	नई कविता की प्रतीकात्मकता	51-71
इकाई 2.3	रहस्यबोध और सौंदर्य चेतना	72-87
	मॉड्यूल -3 रामधारी सिंह दिनकर	
इकाई 3.1	उर्वशी: तीसरा सर्ग	88-94
इकाई 3.2	शृंगार और वीर रस का समन्वय	95-101
इकाई 3.3	जीवन और प्रेम-दर्शन	102-112
	मॉड्यूल -4 धूमिल	
इकाई 4.1	संसद से सड़क तक: कविता 'पटकथा'	113-118
इकाई 4.2	समकालीन यथार्थ	119-129
इकाई 4.3	राजनीति और जनपक्षधरता	130-145
	मॉड्यूल -5 छायावादोत्तर काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ	
इकाई 5.1	प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, समकालीन कविता	146-156
इकाई 5.2	काव्य में सामाजिक यथार्थ, राजनीति और जनसरोकार	157-169
इकाई 5.3	भाषा और शिल्प की नवीनता	170-187
इकाई 5.4	प्रतीक, बिंब और बौद्धिक चेतना	188-194
इकाई 5.5	कवियों की काव्य-दृष्टि और वैचारिकी	195-213

Acknowledgement

The material (pictures and passages) we have used is purely for educational purposes. Every effort has been made to trace the copyright holders of material reproduced in this book. Should any infringement have occurred, the publishers and editors apologize and will be pleased to make the necessary corrections in future editions of thisbook.

मॉड्यूल 1

गजानन माधव मुक्तिबोध

संरचना

इकाई 1.1: चाँद का मुँह टेढ़ा है: कविता 'अंधेरे में'

इकाई 1.2 प्रयोगवादी दृष्टि

इकाई 1.3 आत्मसंघर्ष और समाज-चेतना

1.0 उद्देश्य:

- विद्यार्थियों को गजानन माधव मुक्तिबोध की काव्य-दृष्टि और विचार-प्रणाली से परिचित कराना।
- कविता "अंधेरे में" के माध्यम से मुक्तिबोध की सामाजिक-राजनीतिक चेतना और आत्मसंघर्ष का विश्लेषण कराना।
- प्रयोगवादी काव्यधारा की प्रमुख विशेषताओं और मुक्तिबोध के योगदान को समझाना।
- मुक्तिबोध की रचनाओं में उपस्थित व्यक्ति और समाज के द्वंद्व को समझने की क्षमता विकसित करना।
- विद्यार्थियों में आलोचनात्मक और सृजनात्मक दृष्टिकोण का विकास करना ताकि वे आधुनिक हिंदी कविता के संदर्भ में मुक्तिबोध का स्थान निर्धारित कर सकें।

इकाई 1.1: चाँद का मुँह टेढ़ा है: कविता 'अंधेरे में'

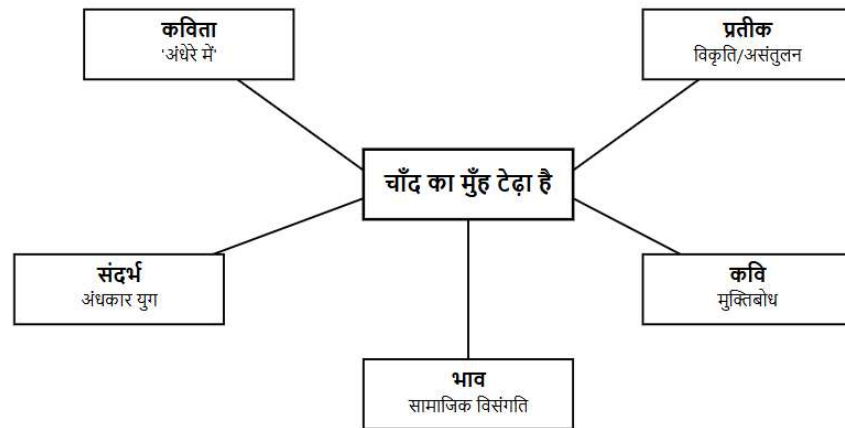
मुक्तिबोध: व्यक्तित्व और काव्य यात्रा का परिचय

हिंदी साहित्य के आकाश में गजानन माधव मुक्तिबोध एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपनी जटिल और गहन रचनाओं से पाठकों को सोचने पर मजबूर किया। सन् 1917 में मध्य प्रदेश के श्योपुर जिले में जन्मे मुक्तिबोध ने अपने साहित्यिक जीवन में ऐसी कविताएँ रचीं जो केवल शब्दों का खेल नहीं थीं, बल्कि मानवीय चेतना और सामाजिक यथार्थ की गहरी पड़ताल थीं। उनका जीवन संघर्षों से भरा रहा - आर्थिक कठिनाइयाँ, नौकरियों की अस्थिरता, और सामाजिक व्यवस्था से निरंतर टकराव ने उन्हें एक ऐसा कवि बनाया जो अपने समय की विसंगतियों को बेबाक तरीके से अभिव्यक्त कर सका।

मुक्तिबोध प्रगतिशील कवियों की उस पीढ़ी के प्रतिनिधि थे जो स्वतंत्रता के बाद के भारत में नई उम्मीदों और पुरानी निराशाओं के बीच फँसी हुई थी। वे केवल एक कवि

ही नहीं थे, बल्कि एक गहरे चिंतक, समीक्षक और दार्शनिक भी थे। उनकी कविताओं में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, लेकिन वे कभी भी केवल वैचारिक नारेबाजी तक सीमित नहीं रहे। उन्होंने अपनी कविताओं में व्यक्ति और समाज, आत्म और परिवेश, स्वप्न और यथार्थ के बीच के जटिल संबंधों को उजागर किया। उनकी रचनाओं में एक ईमानदार बौद्धिक का संघर्ष दिखाई देता है जो अपने समय के सवालियों से रूबरू होने से कभी नहीं कतराता।

मुक्तिबोध के प्रमुख काव्य संग्रहों में 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' और 'भूरी-भूरी खाक धूल' विशेष महत्वपूर्ण हैं। इन संग्रहों में उनकी कविताएँ परंपरागत काव्य रूपों से अलग एक नया रास्ता दिखाती हैं। उनकी भाषा में संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों के साथ-साथ बोलचाल की भाषा का अद्भुत मिश्रण है। वे लंबी, जटिल वाक्य संरचनाओं का प्रयोग करते हैं जो पाठक को एक विशेष मानसिक स्थिति में ले जाती हैं। उनकी कविताओं को पढ़ना एक चुनौतीपूर्ण अनुभव है क्योंकि वे पाठक से पूरी तरह से सक्रिय भागीदारी की माँग करती हैं।



चित्र 1.1 चाँद का मुँह टेढ़ा है: कविता 'अंधेरे में'

'चाँद का मुँह टेढ़ा है' संग्रह का महत्व

'चाँद का मुँह टेढ़ा है' काव्य संग्रह का शीर्षक ही अपने आप में एक प्रतीकात्मक वक्तव्य है। चाँद जो परंपरागत रूप से सौंदर्य, प्रेम और रोमांस का प्रतीक रहा है, उसका मुँह टेढ़ा है - यह बयान हमारी स्थापित सौंदर्य धारणाओं को चुनौती देता है।

मुक्तिबोध यह कहना चाहते हैं कि जिस दुनिया में हम रह रहे हैं, वहाँ सब कुछ विकृत हो चुका है। सुंदरता भी अपनी मासूमियत खो चुकी है। यह शीर्षक उस समाज की विडंबना को रेखांकित करता है जहाँ आदर्श और यथार्थ के बीच की खाई बहुत गहरी हो चुकी है।

इस संग्रह में संकलित कविताएँ स्वतंत्रता के बाद के भारत की सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों का गहरा विश्लेषण प्रस्तुत करती हैं। मुक्तिबोध ने उस मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी की पीड़ा को शब्द दिए जो एक ओर अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता को लेकर सचेत है और दूसरी ओर व्यवस्था के साथ समझौता करने को मजबूर है। यह आंतरिक द्वंद्व, यह अपराधबोध, और यह आत्मसंघर्ष मुक्तिबोध की कविताओं की केंद्रीय चिंता है। वे अपनी कविताओं में बार-बार इस सवाल से टकराते हैं कि एक संवेदनशील व्यक्ति इस असंवेदनशील व्यवस्था में कैसे जीए, कैसे अपनी ईमानदारी बरकरार रखे।

संग्रह की कविताएँ फैटेसी और यथार्थ के अद्भुत मिश्रण से बुनी गई हैं। मुक्तिबोध ने स्वप्न-दृश्यों का प्रयोग अपनी गहरी मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि व्यक्त करने के लिए किया है। उनके यहाँ स्वप्न केवल अवास्तविक कल्पनाएँ नहीं हैं, बल्कि वे हमारे अवचेतन में दबी हुई इच्छाओं, भयों और संघर्षों की अभिव्यक्ति हैं। यह तकनीक उन्हें अपने समकालीन कवियों से अलग करती है और उनकी कविता को एक नया आयाम देती है।

'अंधेरे में' कविता: एक महाकाव्यीय यात्रा

'अंधेरे में' मुक्तिबोध की सबसे प्रसिद्ध और सबसे जटिल रचना है। पाँच सौ इकानवे पंक्तियों में फैली यह लंबी प्रबंध शैली की कविता हिंदी साहित्य में अपने आप में एक अनूठा प्रयोग है। इस कविता को पढ़ना एक लंबी और थकाऊ यात्रा की तरह है, लेकिन यही इसकी शक्ति भी है। मुक्तिबोध ने जानबूझकर इस कविता को इतना लंबा और जटिल रखा है क्योंकि वे जिस आंतरिक संघर्ष को व्यक्त करना चाहते हैं, वह सरल और संक्षिप्त नहीं है। वह एक उलझी हुई, परतदार प्रक्रिया है जिसे समझने के लिए धैर्य और गहन मनोयोग की आवश्यकता है।



छायावादोत्तर
काव्य

कविता की शुरुआत एक रहस्यमय माहौल से होती है। कवि रात के अंधेरे में एक अजीब सी यात्रा पर निकलता है। यह यात्रा केवल भौतिक नहीं है, बल्कि यह एक मानसिक और आध्यात्मिक यात्रा भी है। कवि अपने अंतर्मन की गहराइयों में उतरता है और वहाँ उसे अपने डर, अपराधबोध, और दमित इच्छाओं का सामना करना पड़ता है। पूरी कविता में स्वप्न और जागृति, कल्पना और यथार्थ की सीमाएँ धुंधली हो जाती हैं। पाठक को कई बार यह समझ नहीं आता कि क्या वास्तविक है और क्या काल्पनिक, लेकिन यही मुक्तिबोध का उद्देश्य भी है - वे दिखाना चाहते हैं कि हमारी चेतना कैसे काम करती है, कैसे हमारे सपने और वास्तविकता आपस में गुँथे हुए होते हैं।

कविता में कई पात्र और प्रतीक उभरते हैं जो कवि के आंतरिक संसार के विभिन्न पहलुओं को प्रतिबिंबित करते हैं। एक खूनी हाथ वाला व्यक्ति बार-बार प्रकट होता है, जो कवि के अपराधबोध का प्रतीक है। यह वह व्यक्ति है जिसने व्यवस्था के साथ समझौता किया है, जिसने अपने आदर्शों को बेच दिया है। कवि इस आकृति से भागना चाहता है लेकिन वह उसका पीछा करती रहती है। यह दृश्य बहुत मार्मिक है क्योंकि यह दिखाता है कि हम अपने अपराधबोध से कैसे भाग नहीं सकते, वह हमारा पीछा करता रहता है।

कविता में एक शहर का चित्रण है जो आधुनिक समाज का प्रतीक है। यह शहर भ्रष्टाचार, शोषण और असमानता से भरा हुआ है। यहाँ अमीर और गरीब के बीच की खाई बहुत गहरी है। यहाँ सत्ता और धन के मालिक गरीबों का शोषण करते हैं। मुक्तिबोध ने इस शहर का बहुत विस्तृत और यथार्थवादी चित्रण किया है। उनके शब्द-चित्र इतने जीवंत हैं कि पाठक उस शहर को देख सकता है, उसकी गंदगी को महसूस कर सकता है, उसके शोर को सुन सकता है। यह शहर केवल एक भौगोलिक स्थान नहीं है, बल्कि यह हमारी सामाजिक व्यवस्था का रूपक है।

कविता की संरचना और शिल्प

'अंधेरे में' कविता सात खंडों में विभाजित है, और हर खंड कवि की आंतरिक यात्रा के एक नए चरण को दर्शाता है। पहले खंड में कवि की रात्रि-यात्रा की शुरुआत होती है, जहाँ वह अपने कमरे से बाहर निकलकर शहर की सड़कों पर भटकता है। यह

भटकाव केवल शारीरिक नहीं है, बल्कि मानसिक भी है। कवि अपने आप से सवाल करता है, अपनी भूमिका पर विचार करता है, अपने अस्तित्व के अर्थ को तलाशता है। दूसरे और तीसरे खंड में कवि को विभिन्न दृश्य दिखाई देते हैं जो समाज की विकृतियों को उजागर करते हैं। चौथे खंड में वह खूनी हाथ वाले व्यक्ति का सामना करता है, जो उसका अपना प्रतिरूप है।

पाँचवें और छठे खंड में कविता अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है। यहाँ कवि को 'रक्तालोक स्नात पुरुष' की दृष्टि मिलती है - एक आदर्श व्यक्तित्व जो सभी बुराइयों से मुक्त है, जो पूर्ण है, जो संपूर्ण है। यह पुरुष उस आदर्श का प्रतीक है जिसकी तलाश कवि कर रहा है। लेकिन यह आदर्श दूर है, अप्राप्य है। कवि उसे पाना चाहता है लेकिन बार-बार असफल होता है। सातवें और अंतिम खंड में कवि की यह यात्रा एक खुले अंत पर समाप्त होती है। कोई निश्चित समाधान नहीं है, कोई स्पष्ट उत्तर नहीं है। कवि अभी भी संघर्षरत है, अभी भी तलाश में है।

मुक्तिबोध की काव्य-भाषा अत्यंत जटिल और बहुस्तरीय है। वे लंबे-लंबे वाक्यों का प्रयोग करते हैं जो कई पंक्तियों तक चलते हैं। इन वाक्यों में कई उपवाक्य होते हैं, कई विशेषण और क्रिया-विशेषण होते हैं। यह शैली पाठक को थका सकती है, लेकिन यह कवि का जानबूझकर किया गया चुनाव है। मुक्तिबोध दिखाना चाहते हैं कि विचार की प्रक्रिया कैसे काम करती है - कैसे एक विचार से दूसरा विचार जन्म लेता है, कैसे हमारा मन एक विषय से दूसरे विषय पर कूदता रहता है। उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों की भरमार है, लेकिन साथ ही तद्भव और देशज शब्दों का भी सुंदर प्रयोग है।

कविता में विराम चिह्नों का प्रयोग भी बहुत महत्वपूर्ण है। मुक्तिबोध अक्सर अल्पविराम और अर्धविराम का प्रयोग करते हैं जो वाक्य को आगे बढ़ाते रहते हैं। पूर्णविराम बहुत कम आते हैं। इससे एक प्रवाह बनता है, एक गति बनती है जो पाठक को अपने साथ बहा ले जाती है। कविता की लय भी परंपरागत काव्य-लय से बहुत अलग है। यहाँ कोई निश्चित छंद नहीं है, कोई तुकांत नहीं है। यह मुक्त छंद है जो गद्य और पद्य के बीच की सीमा को धुंधला कर देता है। लेकिन इस मुक्त छंद में भी एक आंतरिक



छायावादोत्तर
काव्य

संगीत है, एक लयात्मकता है जो भाषा की ध्वनियों और शब्दों के दोहराव से उत्पन्न होती है।

प्रतीक विधान: अंधकार से प्रकाश की यात्रा

'अंधेरे में' कविता का सबसे महत्वपूर्ण प्रतीक है - अंधेरा। यह अंधेरा केवल रात के अंधेरे का संकेत नहीं है, बल्कि यह बहुआयामी प्रतीक है। एक स्तर पर यह अज्ञानता का अंधेरा है - वह अज्ञानता जो समाज में व्याप्त है, जो लोगों को सच्चाई देखने से रोकती है। दूसरे स्तर पर यह शोषण का अंधेरा है - वह व्यवस्था जो गरीबों और कमजोरों को अंधेरे में रखती है ताकि वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष न कर सकें। तीसरे स्तर पर यह आत्मा का अंधेरा है - वह आंतरिक संशय और द्वंद्व जो एक संवेदनशील व्यक्ति को घेरे रहता है।

मुक्तिबोध के यहाँ अंधेरा नकारात्मक ही नहीं है। यह एक ऐसा स्थान भी है जहाँ आत्म-अन्वेषण संभव है। अंधेरे में ही व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप से मिल सकता है क्योंकि दिन के उजाले में हम मुखौटे पहने रहते हैं। अंधेरा उन सभी सामाजिक बंधनों और दिखावों से मुक्ति देता है। इसलिए कवि की यात्रा रात में होती है, अंधेरे में होती है। यह गहरे आत्मबोध की यात्रा है जो केवल अंधेरे में ही संभव है।

खूनी हाथ एक और शक्तिशाली प्रतीक है जो पूरी कविता में बार-बार प्रकट होता है। यह खून अपराध का प्रतीक है - उस अपराध का जो एक बुद्धिजीवी अपनी निष्क्रियता से करता है। जब समाज में अन्याय हो रहा हो और एक जागरूक व्यक्ति चुप रहे, तो वह भी उतना ही दोषी है जितना अन्याय करने वाला। खूनी हाथ उस दमन का भी प्रतीक है जो व्यवस्था कमजोरों पर करती है। यह खून निर्दोष लोगों का खून है जो शोषण की चक्की में पिस गए। कवि इस खूनी हाथ को अपने हाथ में देखता है, जो दर्शाता है कि वह अपने आप को दोषी मानता है। यह आत्म-आलोचना की चरम स्थिति है जहाँ व्यक्ति अपनी हर कमजोरी को स्वीकार करता है।

शहर का प्रतीक भी बहुत महत्वपूर्ण है। मुक्तिबोध का शहर आधुनिक सभ्यता का प्रतिनिधि है - वह सभ्यता जो बाहर से चमकदार दिखती है लेकिन अंदर से सड़ी हुई है। शहर में ऊँची-ऊँची इमारतें हैं, चौड़ी सड़कें हैं, बिजली की रोशनी है, लेकिन यह

सब केवल ऊपरी चमक-दमक है। इसके नीचे गरीबी, भूख, बेरोजगारी और अपराध का अंधेरा संसार है। शहर में दो दुनियाएँ सह-अस्तित्व में हैं - एक अमीरों की दुनिया और दूसरी गरीबों की दुनिया। ये दोनों दुनियाएँ एक-दूसरे से बहुत दूर हैं, हालाँकि वे एक ही भौगोलिक स्थान पर हैं।

'रक्तालोक स्नात पुरुष' शायद कविता का सबसे जटिल और बहुअर्थी प्रतीक है। यह वह आदर्श व्यक्तित्व है जिसकी तलाश में कवि है। यह पुरुष रक्त के प्रकाश में नहाया हुआ है - रक्त जो बलिदान का प्रतीक है, जो क्रांति का प्रतीक है, जो नए जीवन का प्रतीक है। यह पुरुष सभी संघर्षों से गुजरकर एक नई चेतना को प्राप्त करता है। कुछ आलोचकों ने इसे समाजवादी आदर्श का प्रतीक माना है, कुछ ने इसे मनुष्य की पूर्णता का प्रतीक माना है। लेकिन मुक्तिबोध ने इसे जानबूझकर अस्पष्ट रखा है ताकि हर पाठक अपने अनुसार इसका अर्थ निकाल सके। यह आदर्श अप्राप्य है, दूर है, लेकिन इसी की तलाश जीवन को अर्थ देती है।

आत्मसंघर्ष और बौद्धिक अपराधबोध

'अंधेरे में' कविता का केंद्रीय विषय है - आत्मसंघर्ष। यह एक बुद्धिजीवी का संघर्ष है जो अपनी भूमिका को लेकर असमंजस में है। वह जानता है कि समाज में अन्याय हो रहा है, वह देखता है कि गरीबों का शोषण हो रहा है, लेकिन वह कुछ नहीं कर पाता। वह अपनी नौकरी में व्यस्त है, अपने परिवार के प्रति जिम्मेदार है, अपनी सुविधाओं का आदी हो चुका है। वह क्रांति की बात करता है लेकिन क्रांति में भाग नहीं ले सकता। यह विरोधाभास उसे अंदर से खोखला कर देता है। वह अपने आप से घृणा करने लगता है।

मुक्तिबोध ने इस बौद्धिक अपराधबोध को बहुत ईमानदारी से व्यक्त किया है। वे छिपाते नहीं, वे सफाई नहीं देते, वे अपनी कमजोरियों को खुलकर स्वीकार करते हैं। यह साहस मुक्तिबोध को अपने समकालीनों से अलग करता है। उस दौर में बहुत से प्रगतिशील कवि थे जो क्रांति की बातें करते थे, लेकिन मुक्तिबोध एकमात्र ऐसे कवि थे जिन्होंने यह पूछा कि क्या हम वाकई में क्रांतिकारी हैं या हम केवल शब्दों के क्रांतिकारी हैं। उन्होंने अपने वर्ग की आलोचना की, अपनी जाति की आलोचना की, और सबसे महत्वपूर्ण - अपनी आलोचना की।



छायावादोत्तर
काव्य

कविता में कवि बार-बार अपने आप से सवाल करता है। वह पूछता है कि मैं कौन हूँ, मेरी पहचान क्या है, मेरा उद्देश्य क्या है। ये अस्तित्ववादी प्रश्न हैं जो बीसवीं सदी के मध्य में पूरी दुनिया में उठ रहे थे। दो विश्व युद्धों के बाद, मनुष्य की अस्मिता पर गहरा संकट आ गया था। पुराने मूल्य टूट चुके थे, नए मूल्य अभी बने नहीं थे। मुक्तिबोध इसी संक्रमण काल के कवि हैं। वे एक ऐसी दुनिया में जी रहे हैं जहाँ कोई निश्चितता नहीं है, कोई सुरक्षा नहीं है। इसलिए उनकी कविता में इतना संशय है, इतनी बेचैनी है।

बौद्धिक अपराधबोध केवल व्यक्तिगत समस्या नहीं है, यह एक वर्गीय समस्या है। मध्यवर्ग अपनी प्रकृति से ही विरोधाभासी है। वह न तो पूंजीपति वर्ग का हिस्सा है और न ही मजदूर वर्ग का। वह बीच में लटका हुआ है। वह ऊपर जाना चाहता है लेकिन नीचे गिरने का डर भी रखता है। इस दोहरी चेतना के कारण मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी कभी भी पूरी तरह से क्रांतिकारी नहीं हो सकता। वह सहानुभूति रखता है गरीबों के प्रति, लेकिन उनके संघर्ष में शामिल नहीं हो सकता। यह विडंबना मुक्तिबोध की कविता का मूल है।

सामाजिक यथार्थ और राजनीतिक चेतना

हालाँकि 'अंधेरे में' मूलतः एक आत्म-अन्वेषण की कविता है, लेकिन इसमें सामाजिक यथार्थ का बहुत गहरा चित्रण है। मुक्तिबोध ने स्वतंत्रता के बाद के भारत की विसंगतियों को बहुत तीखेपन से उजागर किया है। वे दिखाते हैं कि आजादी के बाद भी शोषण खत्म नहीं हुआ, केवल शोषकों के चेहरे बदल गए। पहले अंग्रेज शोषण करते थे, अब अपने ही लोग शोषण कर रहे हैं। नई सरकार ने गरीबों के लिए बहुत से वादे किए थे लेकिन वे सब खोखले साबित हुए।

कविता में भ्रष्टाचार का बहुत सजीव चित्रण है। अधिकारी और नेता जो जनता की सेवा के लिए चुने या नियुक्त किए गए हैं, वे अपनी जेबें भर रहे हैं। वे गरीबों का हक मार रहे हैं, उनके लिए बने कानूनों को तोड़ रहे हैं। और सबसे दुखद बात यह है कि यह सब खुलेआम हो रहा है, लेकिन कोई कुछ नहीं बोलता। लोग डर गए हैं, या फिर उदासीन हो गए हैं। जिनके पास विरोध करने की शक्ति है, वे व्यवस्था का हिस्सा बन गए हैं। जिनके पास शक्ति नहीं है, वे लाचार हैं।

मुक्तिबोध मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित थे, और यह प्रभाव उनकी कविता में साफ दिखाई देता है। वे वर्ग-संघर्ष को समाज की मूल समस्या मानते हैं। उनके अनुसार जब तक वर्ग-विभाजन रहेगा, शोषण रहेगा। और शोषण को खत्म करने के लिए संघर्ष जरूरी है। लेकिन मुक्तिबोध केवल नारे नहीं देते। वे यह भी दिखाते हैं कि यह संघर्ष कितना कठिन है, कितना जटिल है। यह केवल बाहरी संघर्ष नहीं है, यह अंदर का संघर्ष भी है। पहले व्यक्ति को अपने अंदर के डर, अपने अंदर की लालच, अपने अंदर की कमजोरियों से लड़ना होगा, तभी वह बाहरी व्यवस्था से लड़ सकता है।

कविता में धर्म और संस्कृति के नाम पर हो रहे पाखंड की भी आलोचना है। मुक्तिबोध दिखाते हैं कि कैसे धर्म को जनता को बहलाने का एक औजार बना दिया गया है। गरीब लोगों को भगवान के नाम पर संतुष्ट रहना सिखाया जाता है, उन्हें कर्मफल के सिद्धांत से समझौता करना सिखाया जाता है। उन्हें कहा जाता है कि जो दुख आज भोग रहे हो, वह तुम्हारे पिछले जन्म के कर्मों का फल है। इस तरह की बातें गरीबों को निष्क्रिय बना देती हैं, उनमें विद्रोह की चेतना को कुंद कर देती हैं। मुक्तिबोध इस पाखंड के खिलाफ हैं। वे चाहते हैं कि लोग सवाल करें, विरोध करें, अपने हक के लिए लड़ें।

फैंटेसी और यथार्थ का अद्भुत संयोजन

मुक्तिबोध की सबसे बड़ी विशेषता है उनका फैंटेसी का प्रयोग। 'अंधेरे में' कविता में स्वप्न-दृश्यों और फैंटेसी तत्वों का बहुत प्रभावशाली उपयोग हुआ है। ये फैंटेसी दृश्य केवल मनोरंजन के लिए नहीं हैं, बल्कि ये गहरे मनोवैज्ञानिक सत्यों को व्यक्त करते हैं। फ्रायड और जुंग के मनोविश्लेषण के सिद्धांतों से प्रभावित होकर मुक्तिबोध ने अवचेतन मन की गहराइयों को खंगाला है। उनके स्वप्न केवल रात में आने वाले सपने नहीं हैं, बल्कि ये हमारे दमित इच्छाओं, भयों और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति हैं।

कविता में कई सुर-यथार्थवादी दृश्य हैं जो बहुत विचित्र और डरावने हैं। एक जगह खूनी हाथ वाला व्यक्ति प्रकट होता है, दूसरी जगह एक अजीब सी गुफा दिखाई देती है, तीसरी जगह रहस्यमय आकृतियाँ घूमती नजर आती हैं। ये सब दृश्य हमें असहज बनाते हैं, हमें डराते हैं, लेकिन साथ ही हमें सोचने पर मजबूर भी करते हैं। मुक्तिबोध



छायावादोत्तर
काव्य

जानते थे कि कुछ सच्चाइयाँ ऐसी होती हैं जिन्हें सामान्य यथार्थवादी भाषा में व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनके लिए फैंटेसी का प्रयोग जरूरी है।

फैंटेसी और यथार्थ के बीच की सीमाएँ कविता में लगातार टूटती और बनती रहती हैं। कभी-कभी पाठक को लगता है कि यह एक सपना है, फिर अचानक वास्तविक दुनिया के दृश्य सामने आ जाते हैं। यह तकनीक बहुत प्रभावशाली है क्योंकि यह दिखाती है कि हमारी चेतना कैसे काम करती है। हम जागते समय भी सपने देखते हैं, और सोते समय भी वास्तविकता हमारा पीछा करती है। मुक्तिबोध ने इस मनोवैज्ञानिक सत्य को बहुत खूबसूरती से काव्य में ढाला है।

फैंटेसी का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह कवि को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता देता है। सामान्य यथार्थवाद की अपनी सीमाएँ होती हैं - आप केवल वही लिख सकते हैं जो संभव है, जो तर्कसंगत है। लेकिन फैंटेसी में कोई सीमा नहीं है। आप कुछ भी कल्पना कर सकते हैं, कैसे भी प्रतीकों का निर्माण कर सकते हैं। यह स्वतंत्रता मुक्तिबोध को अपने गहरे विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने में मदद करती है। वे ऐसी बातें कह पाते हैं जो सामान्य भाषा में कहना असंभव होता।

काव्य-भाषा और शिल्प की जटिलता

मुक्तिबोध की भाषा अत्यंत जटिल और चुनौतीपूर्ण है। वे सरल और सीधी बात कहने में विश्वास नहीं करते क्योंकि उनके अनुसार जीवन की जटिलताओं को सरल भाषा में व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनके वाक्य बहुत लंबे होते हैं, कभी-कभी दस-पंद्रह पंक्तियों तक चलते हैं। इन वाक्यों में कई उपवाक्य होते हैं, कई विशेषण होते हैं, कई क्रिया-विशेषण होते हैं। यह शैली पहली बार में भ्रामक लग सकती है, लेकिन जब हम इसे ध्यान से पढ़ते हैं, तो इसकी सार्थकता समझ में आती है।

मुक्तिबोध की शब्दावली में संस्कृत के तत्सम शब्दों की प्रधानता है। वे 'चैतन्य', 'अनुभूति', 'आत्मसंघर्ष', 'परिवेश' जैसे गंभीर शब्दों का प्रयोग करते हैं। लेकिन इसके साथ ही वे रोजमर्रा की बोलचाल के शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। यह मिश्रण उनकी कविता को एक विशेष चरित्र देता है। कुछ आलोचकों ने उनकी भाषा को 'गद्यात्मक'

कहा है, लेकिन यह आलोचना सही नहीं है। मुक्तिबोध की भाषा में एक आंतरिक लय है, एक संगीत है जो गद्य में नहीं मिलता।

उनकी कविता में बिंब-विधान बहुत प्रभावशाली है। वे ऐसे शब्द-चित्र रचते हैं जो हमारे मन पर गहरा प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के लिए, खूनी हाथ का बिंब इतना जीवंत है कि पाठक उसे देख सकता है, उसकी गंध महसूस कर सकता है। रक्तालोक स्नात पुरुष का बिंब भी बहुत शक्तिशाली है - वह लाल रोशनी में नहाया हुआ व्यक्ति जो किसी दैवीय शक्ति का प्रतीक लगता है। ये बिंब केवल सजावटी नहीं हैं, बल्कि ये कविता के अर्थ को गहरा करते हैं।

मुक्तिबोध का शिल्प परंपरागत काव्य-शिल्प से बहुत अलग है। वे न तो छंदबद्ध कविता लिखते हैं और न ही तुकांत। उनकी कविताएँ मुक्त छंद में हैं, जहाँ कोई निश्चित लय या मात्रा नहीं होती। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि उनकी कविताएँ अनगढ़ हैं। उनमें एक आंतरिक अनुशासन है, एक संरचना है जो बहुत सोच-समझकर बनाई गई है। वे शब्दों के पुनरावर्तन, ध्वनियों की आवृत्ति, और वाक्य-संरचना के द्वारा एक लयात्मकता पैदा करते हैं जो पाठक को बाँधे रखती है।

समकालीन प्रासंगिकता और वर्तमान संदर्भ

हालाँकि 'अंधेरे में' कविता लगभग सत्तर साल पहले लिखी गई थी, लेकिन आज भी इसकी प्रासंगिकता कम नहीं हुई है। बल्कि कई मायनों में यह कविता आज और भी अधिक प्रासंगिक हो गई है। जिन समस्याओं को मुक्तिबोध ने उजागर किया था - भ्रष्टाचार, असमानता, शोषण, बुद्धिजीवियों की निष्क्रियता - ये सब आज भी हमारे समाज में मौजूद हैं। कुछ मामलों में तो ये समस्याएँ और भी गहरी हो गई हैं।

आज का बुद्धिजीवी वर्ग भी उसी तरह के अपराधबोध से ग्रस्त है जिसका चित्रण मुक्तिबोध ने किया था। आज भी हम देखते हैं, जानते हैं कि समाज में अन्याय हो रहा है, लेकिन हम कुछ नहीं करते। हम सोशल मीडिया पर पोस्ट लिखते हैं, बहस करते हैं, लेकिन वास्तविक धरातल पर कोई कदम नहीं उठाते। हमारी सक्रियता केवल ऑनलाइन तक सीमित रह गई है। यह वही द्वंद्व है जिसे मुक्तिबोध ने अपनी कविता में व्यक्त किया था।



छायावादोत्तर
काव्य

आज की दुनिया में भी अंधेरा बहुत गहरा है। यह अंधेरा केवल भौतिक गरीबी का नहीं है, बल्कि यह मूल्यों का अंधेरा है, सोच का अंधेरा है। आज समाज में असहिष्णुता बढ़ रही है, नफरत बढ़ रही है, हिंसा बढ़ रही है। लोग छोटी-छोटी बातों पर एक-दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं। मानवीय संवेदनाएँ मर रही हैं। ऐसे समय में मुक्तिबोध की कविता हमें आईना दिखाती है, हमें सोचने पर मजबूर करती है कि हम कहाँ जा रहे हैं।

मुक्तिबोध ने जिस 'रक्तालोक स्नात पुरुष' की कल्पना की थी, वह आदर्श व्यक्तित्व आज भी हमसे दूर है। हम अभी भी एक ऐसे समाज की तलाश में हैं जहाँ न्याय हो, समानता हो, भाईचारा हो। लेकिन यह तलाश जारी रहनी चाहिए। मुक्तिबोध हमें यही संदेश देते हैं - कि संघर्ष करना जरूरी है, भले ही सफलता दूर हो। जो व्यक्ति संघर्ष करना छोड़ देता है, वह मृत है। जीवित रहने के लिए, सार्थक जीवन जीने के लिए, संघर्ष अनिवार्य है।

निष्कर्ष: एक अनंत यात्रा

'अंधेरे में' कविता का कोई निश्चित अंत नहीं है, कोई स्पष्ट समाधान नहीं है। यह एक खुली हुई कविता है जो पाठक को सोचने के लिए मजबूर करती है। मुक्तिबोध जानते थे कि जीवन की जटिल समस्याओं का कोई आसान समाधान नहीं होता। इसलिए उन्होंने कविता में कोई उपदेश नहीं दिया, कोई मार्ग नहीं दिखाया। उन्होंने केवल समस्याओं को उजागर किया और पाठक को अपना रास्ता खुद खोजने के लिए छोड़ दिया।

यह कविता एक यात्रा है - अंधेरे से प्रकाश की यात्रा, अज्ञान से ज्ञान की यात्रा, निष्क्रियता से सक्रियता की यात्रा। लेकिन यह यात्रा कभी पूरी नहीं होती। हर पड़ाव पर नए सवाल उठते हैं, नई चुनौतियाँ सामने आती हैं। कवि इस यात्रा में अकेला नहीं है - हर संवेदनशील व्यक्ति इसी यात्रा पर है। मुक्तिबोध की कविता हमें यह आश्वासन देती है कि हम अपने संघर्षों में अकेले नहीं हैं, हमारे जैसे और भी बहुत से लोग हैं जो इन्हीं सवालों से जूझ रहे हैं।

मुक्तिबोध की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने हिंदी कविता को एक नया आयाम दिया। उनसे पहले की कविता या तो रोमांटिक थी या फिर सीधी-सादी प्रगतिवादी। मुक्तिबोध ने इन दोनों के बीच एक नया रास्ता बनाया - ऐसी कविता जो एक ओर गहरी मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि रखती है और दूसरी ओर सामाजिक सरोकारों से जुड़ी हुई है। उन्होंने दिखाया कि कविता केवल सुंदर शब्दों का खेल नहीं है, बल्कि यह जीवन को समझने और बदलने का एक औजार है।

'अंधेरे में' कविता हमें सिखाती है कि आत्म-आलोचना कितनी महत्वपूर्ण है। हम अक्सर दूसरों की आलोचना करने में माहिर होते हैं, लेकिन अपनी कमियों को देखने से कतराते हैं। मुक्तिबोध ने अपनी सभी कमजोरियों को सामने रखा, अपने सभी अपराधबोधों को स्वीकार किया। यह ईमानदारी उन्हें महान बनाती है। और यही ईमानदारी उनकी कविता को कालजयी बनाती है। आज भी जब हम इस कविता को पढ़ते हैं, तो हमें अपना प्रतिबिंब दिखाई देता है। हम भी उसी अंधेरे में भटक रहे हैं, हम भी उसी प्रकाश की तलाश में हैं।

अंततः 'अंधेरे में' केवल एक कविता नहीं है, यह एक अनुभव है - वह अनुभव जो हर उस व्यक्ति को होता है जो सोचता है, जो प्रश्न करता है, जो बेहतर दुनिया का सपना देखता है। मुक्तिबोध ने इस अनुभव को शब्द दिए, रूप दिया, और इस तरह हमें अपने आप को समझने का एक माध्यम दिया। यही किसी महान कवि की पहचान है - वह हमारे भीतर की उन भावनाओं को व्यक्त करता है जिन्हें हम खुद व्यक्त नहीं कर पाते। मुक्तिबोध ऐसे ही महान कवि हैं, और 'अंधेरे में' उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति।

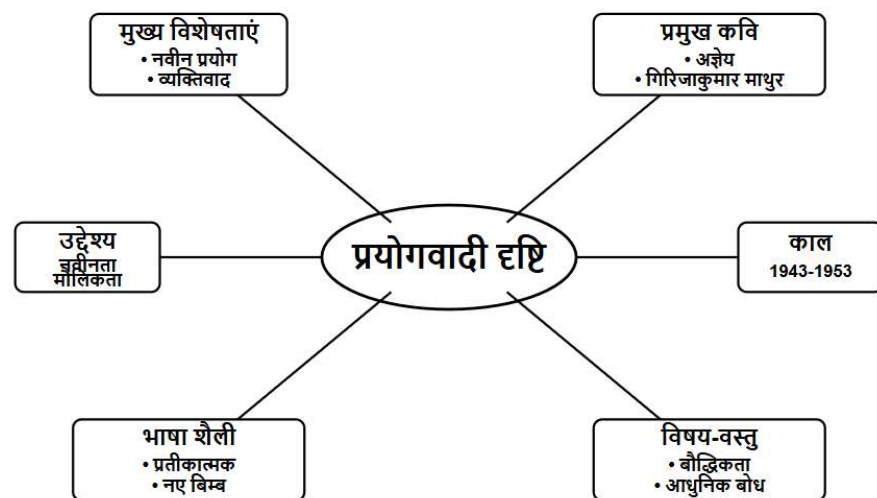
इकाई 1.2: प्रयोगवादी दृष्टि

1.2.1 प्रयोगवादी विशेषताएँ

नया शिल्प: लंबी फैंटेसी शैली

प्रयोगवाद हिंदी साहित्य में एक ऐसा आंदोलन था जो परंपरागत साहित्यिक मानदंडों से मुक्ति की घोषणा करता था। जब हम इस आंदोलन की शिल्पगत विशेषताओं का अध्ययन करते हैं, तो सबसे पहले हमारा ध्यान उसकी लंबी फैंटेसी शैली की ओर जाता है। यह शैली न केवल एक तकनीकी नवाचार थी, बल्कि यह प्रयोगवादी रचनाकारों की उस आंतरिक आवश्यकता की अभिव्यक्ति थी जो यथार्थ की सतही परतों को भेदकर मानवीय अनुभव की गहन परतों तक पहुँचना चाहती थी।

लंबी फैंटेसी शैली की स्थापना का अर्थ समझने के लिए हमें यह देखना होगा कि पारंपरिक कविता किस प्रकार संक्षिप्त, सुगठित और तार्किक रूप से व्यवस्थित होती थी। छायावादी कविता में भी यद्यपि कल्पना का विस्तार था, परंतु वह एक निश्चित ढाँचे और लय-छंद की परिधि में बंधी हुई थी। प्रयोगवादियों ने इस परिधि को तोड़ने का साहस दिखाया। उन्होंने ऐसी रचनाएँ लिखीं जो न तो परंपरागत अर्थों में कविताएँ थीं और न ही पूर्णतः गद्य। ये रचनाएँ एक विस्तृत फैंटेसी की यात्रा थीं जहाँ पाठक को रचनाकार की चेतना के विभिन्न स्तरों पर भ्रमण करना पड़ता था।



चित्र 1.2 प्रयोगवादी दृष्टि

अज्ञेय की कृति "असाध्य वीणा" इस शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस रचना में हम देखते हैं कि कथा एक सरल रेखा में नहीं चलती, बल्कि वह कल्पना के विभिन्न आयामों में विचरण करती है। रचना का नायक एक संगीतकार है जो एक ऐसी वीणा की खोज में है जो बजाई नहीं जा सकती, फिर भी जिसका संगीत सर्वत्र व्याप्त है। यह फैंटेसी केवल मनोरंजन के लिए नहीं है, बल्कि यह कला और कलाकार के बीच के जटिल संबंध, सृजन की असंभवता और फिर भी उसकी अनिवार्यता के दार्शनिक प्रश्न को उठाती है।

फैंटेसी की यह लंबी यात्रा पाठक से विशेष प्रकार की सहभागिता की माँग करती है। पारंपरिक कविता में पाठक एक दर्शक की भूमिका में होता है जो कवि के अनुभव को देखता और समझता है। परंतु प्रयोगवादी फैंटेसी में पाठक को स्वयं उस यात्रा में सम्मिलित होना पड़ता है। उसे रचनाकार के साथ उन अज्ञात प्रदेशों में जाना होता है जहाँ तर्क और यथार्थ के सामान्य नियम लागू नहीं होते। यह एक मानसिक साहस की माँग है जो हर पाठक में नहीं हो सकती।

मुक्तिबोध की कविताओं में भी यह फैंटेसी शैली अत्यंत प्रभावशाली रूप में उपस्थित है। उनकी प्रसिद्ध कविता "अँधेरे में" एक विस्तृत फैंटेसी है जो लगभग तेरह खंडों में फैली हुई है। इस कविता में कवि एक ऐसे स्वप्नलोक में प्रवेश करता है जहाँ वह अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक और नैतिक विकृतियों का सामना करता है। यह फैंटेसी केवल कल्पना का विलास नहीं है, बल्कि यह वास्तविकता के उन पहलुओं को उजागर करने का माध्यम है जो सामान्य यथार्थवादी वर्णन से संभव नहीं हो सकते।

फैंटेसी की लंबाई का एक विशेष उद्देश्य था। प्रयोगवादी रचनाकार मानते थे कि मनुष्य के आंतरिक अनुभव इतने जटिल और बहुस्तरीय हैं कि उन्हें संक्षिप्त कविताओं में व्यक्त नहीं किया जा सकता। उन्हें विस्तार की आवश्यकता है, उन्हें समय चाहिए अपने को खोलने और प्रकट करने के लिए। जैसे एक संगीतकार एक विस्तृत राग में ही अपनी कला का पूर्ण प्रदर्शन कर सकता है, वैसे ही कवि को भी अपनी चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए लंबी फैंटेसी की आवश्यकता थी।

इस शैली में समय और स्थान की सीमाएँ भी लचीली हो जाती हैं। एक ही रचना में अतीत, वर्तमान और भविष्य एक साथ उपस्थित हो सकते हैं। पात्र विभिन्न कालों और



छायावादोत्तर
काव्य

स्थानों में स्वतंत्र रूप से विचरण करते हैं। यह कोई तार्किक असंगति नहीं है, बल्कि यह मानवीय चेतना की उस वास्तविकता का प्रतिनिधित्व है जहाँ स्मृतियाँ, कल्पनाएँ और वर्तमान अनुभव एक साथ मिलकर हमारे अस्तित्व का निर्माण करते हैं।

चेतना प्रवाह तकनीक

चेतना प्रवाह तकनीक प्रयोगवाद की सबसे महत्वपूर्ण और क्रांतिकारी विशेषता थी। यह तकनीक पश्चिमी साहित्य से प्रभावित थी, विशेषकर जेम्स जॉयस और वर्जीनिया वुल्फ के लेखन से। परंतु हिंदी प्रयोगवादियों ने इसे अपनी सांस्कृतिक और भाषाई संदर्भ में ढालकर एक नया रूप प्रदान किया।

चेतना प्रवाह तकनीक का मूल सिद्धांत यह है कि मनुष्य की चेतना एक निरंतर प्रवाहमान धारा है जो कभी रुकती नहीं। हमारे विचार, भावनाएँ, संवेदनाएँ और स्मृतियाँ एक अटूट श्रृंखला में एक के बाद एक आती रहती हैं। ये तार्किक क्रम में नहीं आतीं, न ही इनमें कोई स्पष्ट कार्य-कारण संबंध होता है। कभी एक गंध किसी पुरानी स्मृति को जगा देती है, कभी एक शब्द मन में विचारों का तूफान उठा देता है, कभी एक दृश्य हमें अतीत में ले जाता है तो कभी भविष्य की कल्पना में। पारंपरिक साहित्य इस अव्यवस्थित प्रवाह को एक व्यवस्थित, तार्किक और सुसंगत रूप में प्रस्तुत करता था। प्रयोगवादियों ने इस व्यवस्था को तोड़ा और चेतना को उसके मूल, अव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

अज्ञेय की कविताओं में हम देखते हैं कि विचार एक से दूसरे में इस प्रकार प्रवाहित होते हैं कि उनके बीच की कड़ियाँ स्पष्ट नहीं होतीं। उनकी कविता "नदी के द्वीप" में नदी, द्वीप, अकेलापन, प्रेम और अस्तित्व के विषय एक दूसरे में इस प्रकार घुल-मिल जाते हैं कि उन्हें अलग करना कठिन हो जाता है। यह मिश्रण कृत्रिम नहीं है, बल्कि यह उस रीति का प्रतिनिधित्व करता है जिस प्रकार मानवीय मन में ये विषय वास्तव में उपस्थित होते हैं।

मुक्तिबोध की कविताओं में चेतना प्रवाह तकनीक और भी जटिल रूप में प्रकट होती है। उनकी कविताओं में हम देखते हैं कि कवि का मन कैसे अपने सामाजिक परिवेश, अपनी व्यक्तिगत दुविधाओं, अपने राजनीतिक विश्वासों और अपने कलात्मक संघर्षों

के बीच निरंतर डोलता रहता है। एक पंक्ति में वे समाज की विषमताओं पर टिप्पणी कर रहे हैं, अगली में वे अपनी आत्मा से प्रश्न कर रहे हैं, फिर अचानक वे किसी स्मृति में खो जाते हैं। यह सब इतनी तीव्र गति से होता है कि पाठक को लगता है कि वह किसी तीव्र भावनात्मक और बौद्धिक अनुभव से गुजर रहा है।

चेतना प्रवाह तकनीक में विराम चिह्नों का प्रयोग भी परंपरागत नियमों से भिन्न होता है। कभी-कभी लंबे वाक्य बिना किसी विराम के चलते रहते हैं, तो कभी अचानक छोटे-छोटे वाक्यांशों में विचार टूट जाते हैं। यह भी चेतना की उस गति का प्रतिनिधित्व है जो कभी तीव्र होती है, कभी धीमी, कभी बाधित होती है, कभी मुक्त प्रवाह में बहती है।

इस तकनीक का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह पाठक से सक्रिय भागीदारी की माँग करती है। पारंपरिक साहित्य में लेखक पाठक का हाथ पकड़कर उसे कथा के माध्यम से ले जाता है, हर मोड़ पर स्पष्टीकरण देता है, हर संक्रमण को सुगम बनाता है। परंतु चेतना प्रवाह तकनीक में पाठक को स्वयं उन कड़ियों को खोजना होता है जो विभिन्न विचारों और दृश्यों को जोड़ती हैं। यह एक चुनौतीपूर्ण पठन अनुभव है जो बौद्धिक रूप से सक्रिय और संवेदनशील पाठक की अपेक्षा रखता है।

गिरिजाकुमार माथुर और धर्मवीर भारती जैसे कवियों ने भी इस तकनीक का प्रयोग किया, यद्यपि उनके यहाँ यह कुछ भिन्न रूप में प्रकट होती है। माथुर की कविताओं में चेतना प्रवाह अधिक गीतात्मक है, जबकि भारती के यहाँ यह नाटकीय तत्वों के साथ मिश्रित है। यह विविधता दर्शाती है कि प्रयोगवादी कवियों ने इस तकनीक को यांत्रिक रूप से नहीं अपनाया, बल्कि उसे अपनी व्यक्तिगत दृष्टि और शैली के अनुसार ढाला।

चेतना प्रवाह तकनीक के माध्यम से प्रयोगवादी कवि मनुष्य के अंतर्मन की उन परतों तक पहुँचने में सफल हुए जो पहले साहित्य के लिए दुर्गम थीं। उन्होंने दिखाया कि मानवीय अनुभव केवल तर्क और व्यवस्था का विषय नहीं है, बल्कि वह एक जटिल, अव्यवस्थित और फिर भी सुंदर प्रवाह है जिसमें जीवन का वास्तविक स्वाद निहित है।



छायावादोत्तर
काव्य

स्वप्न और यथार्थ का घालमेल

प्रयोगवाद की तीसरी महत्वपूर्ण शिल्पगत विशेषता स्वप्न और यथार्थ के बीच की सीमा रेखा को धुंधला करना था। पारंपरिक साहित्य में स्वप्न और यथार्थ को स्पष्ट रूप से अलग रखा जाता था। यदि कोई स्वप्न दृश्य प्रस्तुत किया जाता था, तो उसे स्पष्ट रूप से स्वप्न के रूप में चिह्नित किया जाता था। परंतु प्रयोगवादियों ने इस विभाजन को अस्वीकार किया और एक ऐसी रचना संरचना विकसित की जहाँ पाठक को यह निश्चित करना कठिन हो जाता है कि कौन सा अंश स्वप्न है और कौन सा यथार्थ।

यह घालमेल केवल एक साहित्यिक चमत्कार नहीं था, बल्कि यह मानवीय अनुभव की एक गहरी सच्चाई को प्रतिबिंबित करता था। हमारे जीवन में स्वप्न और यथार्थ वास्तव में इतने घुले-मिले होते हैं कि उन्हें अलग करना असंभव है। हमारे स्वप्न हमारे यथार्थ को प्रभावित करते हैं और हमारा यथार्थ हमारे स्वप्नों को आकार देता है। हम जो देखते हैं, वह केवल बाहरी वास्तविकता नहीं है, बल्कि वह हमारी आशाओं, भयों, कल्पनाओं और स्मृतियों से रंगी हुई होती है।

मुक्तिबोध की कविता "अँधेरे में" इस घालमेल का सबसे प्रभावशाली उदाहरण है। इस कविता में कवि एक ऐसी यात्रा पर निकलता है जहाँ वह नहीं जानता कि वह सो रहा है या जाग रहा है। वह अपने समकालीन समाज के भ्रष्टाचार, पाखंड और हिंसा के दृश्य देखता है, परंतु ये दृश्य इतने विचित्र और अतिरंजित हैं कि वे स्वप्न प्रतीत होते हैं। फिर भी उनमें यथार्थ का वह तीखापन है जो उन्हें केवल काल्पनिक नहीं रहने देता। रक्तालोक में नहाई हुई प्रजा, फाँसी के तख्ते पर लटकते हुए बुद्धिजीवी, और सत्ता के क्रूर खेल - ये सब स्वप्न और यथार्थ की उस सीमा पर स्थित हैं जहाँ दोनों एक हो जाते हैं।

अज्ञेय ने भी अपनी रचनाओं में इस तकनीक का प्रयोग किया, परंतु एक भिन्न उद्देश्य के लिए। उनके यहाँ स्वप्न और यथार्थ का घालमेल मुख्यतः व्यक्ति के आंतरिक संसार को प्रकट करने के लिए था। उनकी कविताओं में हम देखते हैं कि कैसे एक व्यक्ति का एकांत, उसकी स्मृतियाँ और उसकी कल्पनाएँ मिलकर एक ऐसा संसार रचती हैं जो न पूर्णतः काल्पनिक है, न पूर्णतः वास्तविक। यह वह संसार है जिसमें संवेदनशील

व्यक्ति वास्तव में जीता है - एक ऐसा संसार जो बाहरी घटनाओं और आंतरिक प्रतिक्रियाओं का संयोजन है।

यह घालमेल कई स्तरों पर कार्य करता है। पहले स्तर पर, यह यथार्थवाद की सीमाओं को चुनौती देता है। यथार्थवाद मानता है कि बाहरी वास्तविकता का एक निश्चित, वस्तुगत रूप है जिसे साहित्य में प्रतिबिंबित किया जा सकता है। परंतु प्रयोगवादी इस धारणा को अस्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि वास्तविकता सदैव व्यक्तिपरक होती है, वह सदैव हमारी चेतना से फ़िल्टर होकर आती है। इसलिए शुद्ध यथार्थवाद एक भ्रम है।

दूसरे स्तर पर, यह घालमेल पाठक को एक नए प्रकार की सतर्कता सिखाता है। जब स्वप्न और यथार्थ स्पष्ट रूप से अलग नहीं होते, तो पाठक को हर दृश्य, हर कथन को सावधानी से परखना होता है। उसे यह सोचना होता है कि यह किस स्तर की सच्चाई है - मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, दार्शनिक या सांकेतिक। यह सक्रिय पठन एक नई प्रकार की साहित्यिक साक्षरता का निर्माण करता है।

तीसरे स्तर पर, यह घालमेल आधुनिक मनुष्य की उस दशा को प्रतिबिंबित करता है जहाँ वह अनिश्चितता में जीता है। आधुनिक युग में पुरानी सत्यताएँ, पुराने मूल्य और पुरानी निश्चितताएँ टूट गई हैं। मनुष्य एक ऐसे संसार में जी रहा है जहाँ वह नहीं जानता कि क्या सच है और क्या झूठ, क्या वास्तविक है और क्या भ्रम। प्रयोगवादी साहित्य इस अनिश्चितता को केवल वर्णित नहीं करता, बल्कि पाठक को उसका अनुभव कराता है।

स्वप्न और यथार्थ के इस घालमेल में एक और महत्वपूर्ण आयाम है - सामाजिक आलोचना का। मुक्तिबोध जैसे कवियों ने इस तकनीक का प्रयोग समाज की विकृतियों को उजागर करने के लिए किया। जब सामाजिक यथार्थ स्वप्न जैसा विचित्र हो जाए, तो यह उसकी विद्रूपता को और अधिक प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करता है। मुक्तिबोध की कविताओं में भ्रष्टाचार, शोषण और हिंसा के दृश्य इतने अतिरंजित और विचित्र हैं कि वे दुःस्वप्न प्रतीत होते हैं, परंतु फिर भी हम जानते हैं कि वे वास्तविकता के ही विकृत प्रतिबिंब हैं।



1.2.2 भाषा का प्रयोग

जटिल और बौद्धिक भाषा

प्रयोगवाद की सबसे विवादास्पद और चर्चित विशेषता उसकी जटिल और बौद्धिक भाषा थी। यह जटिलता केवल शब्दों के कठिन होने से नहीं उपजती थी, बल्कि यह विचार की जटिलता, संवेदना की सूक्ष्मता और अभिव्यक्ति के नए प्रयोगों का परिणाम थी। प्रयोगवादी कवि मानते थे कि आधुनिक मनुष्य का अनुभव इतना जटिल हो गया है कि उसे व्यक्त करने के लिए सरल, सपाट भाषा अपर्याप्त है।

पहले यह समझना आवश्यक है कि प्रयोगवादी कवि किस प्रकार की जटिलता की बात कर रहे थे। यह केवल शाब्दिक जटिलता नहीं थी, बल्कि यह वाक्य संरचना, विचार की बुनावट और अर्थ के विभिन्न स्तरों की जटिलता थी। उनके वाक्य लंबे होते थे, उनमें कई उपवाक्य होते थे, विचार एक से दूसरे में इस प्रकार प्रवाहित होते थे कि उन्हें एकबार में समझना कठिन होता था। परंतु यह जटिलता उद्देश्यविहीन नहीं थी - यह उस जटिल मानसिक प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करती थी जो रचनाकार के मन में चल रही थी।

अज्ञेय की भाषा इस जटिलता का उत्कृष्ट उदाहरण है। उनकी पंक्तियों में हम देखते हैं कि एक ही वाक्य में कई विचार, कई संकेत और कई अर्थ समाहित होते हैं। उदाहरण के लिए, जब वे लिखते हैं कि "मैं नदी का द्वीप हूँ / मुझे धार ने चारों ओर से घेर लिया है / फिर भी मैं अकेला हूँ", तो यहाँ केवल एक भौगोलिक दृश्य नहीं है, बल्कि अस्तित्व के अकेलेपन, स्वतंत्रता और परिसीमा के गहन दार्शनिक प्रश्न हैं। यह भाषा बौद्धिक है क्योंकि यह पाठक से विचार करने, विश्लेषण करने और गहराई में उतरने की माँग करती है।

मुक्तिबोध की भाषा एक भिन्न प्रकार की जटिलता प्रस्तुत करती है। उनके यहाँ शब्द केवल अर्थ के वाहक नहीं हैं, बल्कि वे संघर्ष, तनाव और द्वंद्व के चिह्न हैं। उनकी लंबी, टेढ़ी-मेढ़ी पंक्तियाँ उस आंतरिक उथल-पुथल को प्रकट करती हैं जो एक संवेदनशील बुद्धिजीवी के मन में चलती है जब वह अपने समय की विसंगतियों से टकराता है। उनकी भाषा में तत्सम शब्दों, देशज शब्दों, अंग्रेजी के शब्दों और नवनिर्मित शब्दों का

अद्भुत मिश्रण है। यह मिश्रण कृत्रिम नहीं है, बल्कि यह आधुनिक भारतीय बुद्धिजीवी की उस मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है जो विभिन्न संस्कृतियों, विचारधाराओं और परंपराओं के संगम पर खड़ी है।

अकेलापन, अस्तित्व, मृत्यु, समय - ये सभी अमूर्त विचार हैं जिन्हें प्रयोगवादी कवि ठोस बिंबों और प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। परंतु ये बिंब और प्रतीक सरल नहीं होते - वे स्वयं जटिल होते हैं और बहुआयामी अर्थों को वहन करते हैं।

इस जटिल और बौद्धिक भाषा के पीछे एक दार्शनिक आधार था। प्रयोगवादी कवि मानते थे कि भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं है, बल्कि यह ज्ञान और अनुभव का सृजन करती है। जब हम एक नए प्रकार की भाषा का प्रयोग करते हैं, तो हम एक नए प्रकार की चेतना का निर्माण करते हैं। इसलिए पारंपरिक, सुगम भाषा का प्रयोग पारंपरिक चेतना को ही दोहराएगा। नई चेतना के लिए नई भाषा आवश्यक है, भले ही वह प्रारंभ में जटिल और दुर्गम प्रतीत हो।

जटिलता के इस समर्थन में एक और तर्क यह था कि सरल भाषा अक्सर सरलीकरण की ओर ले जाती है। जीवन की जटिलताओं को यदि सरल भाषा में व्यक्त किया जाए, तो उनका गहराई और बहुआयामिता नष्ट हो जाती है। प्रयोगवादी कवि ऐसे सरलीकरण के विरुद्ध थे। वे चाहते थे कि पाठक जीवन की जटिलता को उसकी संपूर्णता में अनुभव करे, और इसके लिए जटिल भाषा अनिवार्य थी।

धर्मवीर भारती की "अंधा युग" में हम देखते हैं कि कैसे जटिल भाषा का प्रयोग महाभारत की कथा को एक नया, समकालीन अर्थ प्रदान करता है। भारती की भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग है, परंतु वे आधुनिक दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं के साथ मिश्रित हैं। यह मिश्रण पौराणिक कथा को समकालीन संदर्भ में रखता है और उसे नए अर्थों से भर देता है।

बौद्धिक भाषा का एक और आयाम है - विडंबना और व्यंग्य का प्रयोग। प्रयोगवादी कवि सीधे-सीधे कुछ नहीं कहते। वे व्यंग्य, विडंबना और वक्रोक्ति के माध्यम से अपनी बात कहते हैं। यह तकनीक पाठक को सतर्क बनाए रखती है और उसे शब्दों के पीछे छिपे अर्थों को खोजने के लिए प्रेरित करती है। मुक्तिबोध की कविताओं में हम देखते



छायावादोत्तर
काव्य

हैं कि वे समाज की विकृतियों का वर्णन करते समय एक तीखे व्यंग्य का प्रयोग करते हैं जो उनकी भाषा को और अधिक जटिल बना देता है।

हालांकि, यह स्वीकार करना होगा कि प्रयोगवादी भाषा की यह जटिलता एक समस्या भी थी। आलोचकों ने इसे अभिजात्यवाद का प्रतीक माना। उन्होंने कहा कि यह भाषा केवल शिक्षित, बौद्धिक वर्ग के लिए है और सामान्य पाठक इसे समझ नहीं सकता। यह आरोप पूर्णतः निराधार नहीं था। प्रयोगवादी कविता वास्तव में सामान्य पाठक के लिए दुर्गम थी। परंतु प्रयोगवादी कवियों का तर्क था कि उनका उद्देश्य तत्काल लोकप्रियता नहीं है। वे एक नई काव्य-संवेदना का निर्माण कर रहे हैं जो समय के साथ स्वीकृत होगी।

आज, जब हम इतिहास के परिप्रेक्ष्य से देखते हैं, तो हम पाते हैं कि प्रयोगवादी भाषा ने हिंदी कविता की अभिव्यक्ति क्षमता को विस्तार दिया। उन्होंने दिखाया कि हिंदी भाषा में वह लचीलापन और शक्ति है जो जटिलतम विचारों और सूक्ष्मतम संवेदनाओं को व्यक्त कर सकती है। उनके बाद की कविता ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया, यद्यपि कुछ भिन्न दिशाओं में।

नए बिंब और प्रतीक

प्रयोगवादी काव्य की सबसे मौलिक योगदान नए बिंबों और प्रतीकों का सृजन था। पारंपरिक हिंदी कविता में बिंब और प्रतीक एक निश्चित परंपरा से लिए जाते थे - चाँद, सूरज, फूल, बादल, नदी - ये सभी सदियों से काव्य में प्रयुक्त होते आए थे और उनके अर्थ स्थापित हो चुके थे। छायावाद ने इन परंपरागत बिंबों को कुछ नया अर्थ अवश्य दिया, परंतु मूलतः वे उसी परंपरा के अंग थे। प्रयोगवाद ने इस परंपरा से मुक्त होने का साहस दिखाया।

प्रयोगवादी कवियों ने अपने बिंब और प्रतीक आधुनिक शहरी जीवन से, तकनीकी विकास से, राजनीतिक यथार्थ से और मनोविज्ञान के क्षेत्र से लिए। उनकी कविताओं में हमें मशीनें, कारखाने, सड़कें, बिजली के खंभे, अस्पताल, कार्यालय मिलते हैं। ये सभी उस नए यथार्थ के प्रतीक हैं जिसमें आधुनिक मनुष्य जी रहा है। पारंपरिक कविता का

रोमानी ग्रामीण परिवेश इन कवियों के लिए अप्रासंगिक हो गया था। वे शहरी, औद्योगिक सभ्यता के कवि थे और उनके बिंब इसी सभ्यता से उठाए गए थे।

अज्ञेय की कविताओं में हमें एक विशेष प्रकार के बिंब मिलते हैं जो प्रकृति और संस्कृति, जैविक और यांत्रिक के बीच की सीमा पर स्थित हैं। उनकी प्रसिद्ध कविता "कलगी बाजरे की" में बाजरे की कलगी एक साधारण ग्रामीण बिंब लगती है, परंतु जिस संदर्भ में और जिस भाषा में इसे प्रस्तुत किया गया है, वह इसे एक नया, आधुनिक अर्थ प्रदान करता है। यह कलगी स्वतंत्रता, गौरव और प्रकृति के साथ मनुष्य के संबंध का प्रतीक बन जाती है।

मुक्तिबोध के बिंब और अधिक जटिल और बहुस्तरीय हैं। उनकी कविताओं में हमें ऐसे बिंब मिलते हैं जो यथार्थ और स्वप्न, ठोस और अमूर्त के बीच घूमते रहते हैं। उनका प्रसिद्ध "ब्रह्मराक्षस" केवल एक पौराणिक प्रतीक नहीं है, बल्कि यह आधुनिक बुद्धिजीवी के उस अंतर्द्वंद्व का प्रतीक है जो अपनी प्रतिबद्धताओं और अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं के बीच फंसा हुआ है। यह ब्रह्मराक्षस एक पारंपरिक प्रतीक को लेकर उसे पूर्णतः नया अर्थ प्रदान करता है।

प्रयोगवादी बिंबों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे स्थिर नहीं हैं। पारंपरिक काव्य में बिंब और प्रतीक स्थिर अर्थों के साथ आते थे - चाँद का अर्थ सौंदर्य, शीतलता और प्रेम था; सूरज का अर्थ तेज, शक्ति और प्रकाश था। परंतु प्रयोगवादी बिंबों के अर्थ लचीले हैं, वे संदर्भ के अनुसार बदलते हैं। एक ही बिंब एक कविता में एक अर्थ रख सकता है और दूसरी कविता में भिन्न अर्थ। यह लचीलापन भाषा की शक्ति को बढ़ाता है और पाठक को सक्रिय व्याख्याकार बनाता है।

गिरिजाकुमार माथुर जैसे कवियों ने ऐतिहासिक और सांस्कृतिक बिंबों का नया प्रयोग किया। उनकी कविताओं में भारतीय इतिहास के प्रतीक - किले, स्मारक, युद्ध - नए संदर्भों में प्रस्तुत किए गए हैं। वे अतीत को केवल नॉस्टैल्जिया के रूप में नहीं देखते, बल्कि वर्तमान को समझने के लिए अतीत का प्रयोग करते हैं। उनके बिंब ऐतिहासिक चेतना और समकालीन संवेदना के संगम पर खड़े हैं।



छायावादोत्तर काव्य

प्रयोगवादी कवियों ने मनोवैज्ञानिक बिंबों का भी व्यापक प्रयोग किया। अचेतन मन के प्रतीक, दमित इच्छाओं के बिंब, मानसिक संघर्षों के चित्र - ये सभी प्रयोगवादी काव्य में प्रमुखता से उपस्थित हैं। ये बिंब फ्रायड और युंग के मनोविश्लेषण से प्रभावित थे, परंतु भारतीय संदर्भ में उन्हें नया रूप दिया गया था।

नए बिंबों के सृजन में एक महत्वपूर्ण भूमिका संयोजन की तकनीक की थी। प्रयोगवादी कवि असंगत प्रतीत होने वाले बिंबों को एक साथ रखते थे और इस संयोजन से नए अर्थ उत्पन्न होते थे। उदाहरण के लिए, मशीन और मनुष्य, नगर और प्रकृति, अतीत और भविष्य - इन विरोधी तत्वों को एक साथ रखकर वे एक तनाव पैदा करते थे जो पाठक को सोचने के लिए विवश करता था।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि प्रयोगवादी बिंब केवल दृश्य नहीं होते थे। वे श्रव्य, स्पर्श, गंध और स्वाद से संबंधित भी होते थे। यह बहुइंद्रिय अनुभव की प्रस्तुति काव्य को अधिक समग्र और प्रभावशाली बनाती थी। मुक्तिबोध की कविताओं में हमें ध्वनियों के जटिल बिंब मिलते हैं - चीखें, कराहें, फुसफुसाहटें - जो मिलकर एक भयावह या तनावपूर्ण वातावरण का निर्माण करती हैं।

प्रतीकों के क्षेत्र में प्रयोगवादियों ने निजी प्रतीकों का विकास किया। ये वे प्रतीक थे जिनका अर्थ परंपरा से नहीं, बल्कि कवि की व्यक्तिगत दृष्टि से निर्धारित होता था। इन प्रतीकों को समझने के लिए पाठक को कवि की संपूर्ण रचना परंपरा से परिचित होना आवश्यक था। उदाहरण के लिए, अज्ञेय का "नदी का द्वीप" एक निजी प्रतीक है जो उनकी अस्तित्ववादी चिंताओं को व्यक्त करता है।

नए बिंबों और प्रतीकों के इस सृजन में एक जोखिम भी था। कभी-कभी ये इतने व्यक्तिगत और अस्पष्ट हो जाते थे कि पाठक के लिए उन्हें समझना असंभव हो जाता था। आलोचकों ने इसे अस्पष्टता और दुरुहता का नाम दिया। परंतु प्रयोगवादी कवियों का मानना था कि कविता का उद्देश्य सरल संप्रेषण नहीं है, बल्कि पाठक को एक नए अनुभव से गुजारना है। यदि यह अनुभव प्रारंभ में कठिन प्रतीत होता है, तो यह स्वाभाविक है।

गद्य और पद्य का मिश्रण

गजानन माधव
मुक्तिबोध

प्रयोगवाद की एक अत्यंत महत्वपूर्ण और क्रांतिकारी विशेषता गद्य और पद्य की परंपरागत सीमाओं को तोड़ना था। संस्कृत काव्यशास्त्र से लेकर आधुनिक काल तक, गद्य और पद्य को दो अलग-अलग विधाएँ माना जाता था। पद्य में लय, छंद और संगीतात्मकता होती थी, जबकि गद्य तर्क, विवरण और कथन का माध्यम था। प्रयोगवादियों ने इस विभाजन को चुनौती दी और एक ऐसी भाषा का विकास किया जो गद्य और पद्य के बीच की सीमा पर स्थित थी।

इस मिश्रण के पीछे कई कारण थे। पहला कारण यह था कि प्रयोगवादी कवि मानते थे कि आधुनिक अनुभव इतना जटिल है कि उसे केवल पारंपरिक पद्य में व्यक्त नहीं किया जा सकता। पद्य की लय और छंद कई बार विचार को बाधित करते हैं। जब विचार की प्राथमिकता हो, तो लय को गौण करना पड़ता है। इसलिए प्रयोगवादी कवियों ने मुक्त छंद का प्रयोग किया और कई बार तो ऐसी रचनाएँ लिखीं जो गद्य के अधिक निकट थीं।

दूसरा कारण यह था कि वे काव्य को संगीत की अधीनता से मुक्त करना चाहते थे। पारंपरिक काव्य में संगीतात्मकता को बहुत महत्व दिया जाता था। परंतु प्रयोगवादी मानते थे कि यह संगीतात्मकता कई बार अर्थ की गहराई को कम कर देती है। वे चाहते थे कि कविता विचार का, दर्शन का, बौद्धिक चिंतन का माध्यम बने, न कि केवल कर्णप्रिय ध्वनियों का संयोजन।

अज्ञेय की कविताओं में हम देखते हैं कि वे मुक्त छंद का प्रयोग करते हैं, परंतु उनकी कविता में एक सूक्ष्म लय है जो गद्य से उसे अलग करती है। यह लय बाहरी नहीं है, बल्कि यह विचार की आंतरिक गति से उत्पन्न होती है। उनकी पंक्तियों में विराम और प्रवाह इस प्रकार व्यवस्थित हैं कि वे विचार के उतार-चढ़ाव को प्रतिबिंबित करते हैं।

मुक्तिबोध की कविताएँ इस मिश्रण का और भी स्पष्ट उदाहरण हैं। उनकी लंबी कविताओं में कई अनुच्छेद ऐसे हैं जो गद्य की तरह दिखते हैं। वाक्य लंबे हैं, विचार विस्तृत हैं, और छंद की कोई स्पष्ट योजना नहीं है। परंतु फिर भी इन्हें गद्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनमें एक काव्यात्मक तीव्रता है, एक संघनन है जो गद्य में नहीं



छायावादोत्तर
काव्य

होता। मुक्तिबोध की भाषा में बिंब इतने घने हैं, विचार इतने संकुचित हैं कि प्रत्येक पंक्ति अर्थ से भरी हुई है।

धर्मवीर भारती की "अंधा युग" इस मिश्रण का एक विशिष्ट उदाहरण है। यह एक काव्य नाटक है जहाँ संवाद कभी पद्य में हैं, कभी गद्य में, और कभी दोनों के मिश्रण में। यह मिश्रण यांत्रिक नहीं है, बल्कि यह नाटक की मांग के अनुसार है। जब भावनात्मक तीव्रता चरम पर होती है, तो भाषा पद्य की ओर झुकती है। जब बौद्धिक विवेचन की आवश्यकता होती है, तो भाषा गद्य के निकट आती है।

इस मिश्रण का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि कविता की परिभाषा ही बदल गई। अब कविता को छंद, लय या तुकांत से पहचाना नहीं जा सकता था। कविता वह बन गई जिसमें भाषा का एक विशेष प्रकार का संघनन हो, जिसमें बिंबों का सौंदर्य हो, जिसमें अर्थ की गहराई हो। यह परिभाषा अधिक व्यापक और लचीली थी।

गद्य-पद्य के इस मिश्रण ने एक नई विधा को भी जन्म दिया - गद्य कविता। यह विधा पूर्णतः गद्य में लिखी जाती है, परंतु इसमें कविता के सभी गुण होते हैं - बिंब, प्रतीक, संघनन, और काव्यात्मक सौंदर्य। अज्ञेय ने कई गद्य कविताएँ लिखीं जो इस विधा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन रचनाओं में हम देखते हैं कि गद्य का सरल प्रवाह और पद्य की संघनता एक साथ उपस्थित हैं।

यह मिश्रण पाठक के लिए एक नई चुनौती था। पारंपरिक पाठक जो कविता को उसकी लय और संगीतात्मकता से पहचानता था, उसे अब एक नई संवेदना विकसित करनी पड़ी। उसे यह समझना पड़ा कि कविता केवल कानों के लिए नहीं, बल्कि मन और बुद्धि के लिए भी है। यह परिवर्तन आसान नहीं था और इसीलिए प्रयोगवादी कविता को प्रारंभ में व्यापक स्वीकृति नहीं मिली।

परंतु समय के साथ यह मिश्रण हिंदी कविता की एक स्थापित परंपरा बन गया। आज की अधिकांश हिंदी कविता मुक्त छंद में है और गद्य-पद्य की सीमाओं को बहुत लचीले रूप में देखती है। यह प्रयोगवाद की एक महत्वपूर्ण विरासत है।

1.2.3 विषयगत नवीनता

मध्यवर्गीय बौद्धिक का संघर्ष

प्रयोगवाद ने हिंदी साहित्य में पहली बार मध्यवर्गीय बौद्धिक को केंद्रीय पात्र के रूप में प्रस्तुत किया। यह एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था क्योंकि पारंपरिक हिंदी साहित्य में या तो उच्च वर्ग के पात्र होते थे या फिर सामान्य जन। मध्यवर्ग, विशेषकर शिक्षित, बौद्धिक मध्यवर्ग, साहित्य के केंद्र में नहीं था। प्रयोगवादियों ने इस वर्ग को और उसके विशिष्ट संघर्षों को साहित्य का विषय बनाया।

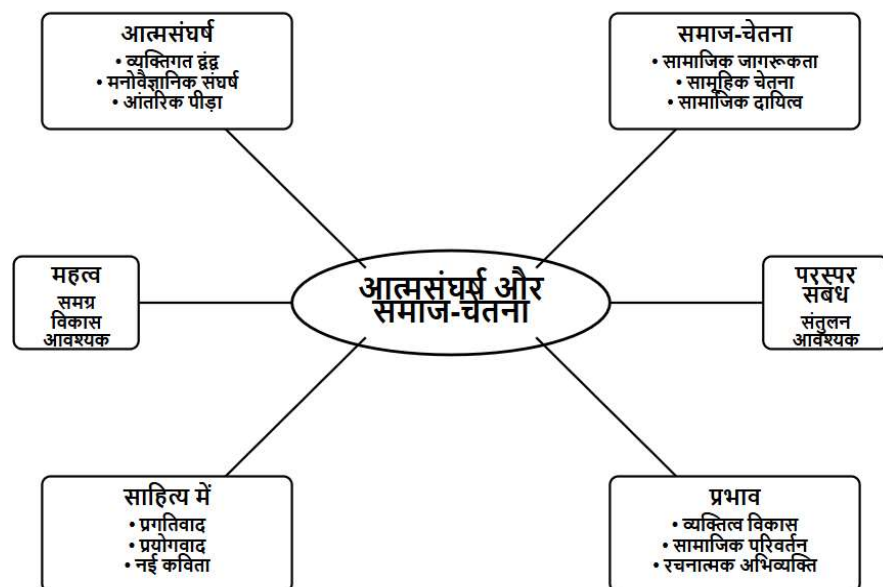
मध्यवर्गीय बौद्धिक की पहचान क्या है? यह वह व्यक्ति है जो शिक्षित है, जो विचारों की दुनिया में जीता है, जो सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों के प्रति सचेत है, परंतु जो आर्थिक रूप से सुरक्षित नहीं है। वह न तो संपन्न वर्ग का हिस्सा है जो विलासिता में जी सकता है, और न ही वह श्रमिक वर्ग का हिस्सा है जिसके संघर्ष सरल और स्पष्ट हैं। वह बीच में है - विचारों की ऊँचाइयों पर उड़ने की इच्छा रखता है, परंतु आर्थिक और सामाजिक यथार्थ उसे नीचे खींचता है।

यह वर्ग स्वतंत्रता के बाद के भारत में तेजी से बढ़ा। शिक्षा का विस्तार हुआ, विश्वविद्यालय खुले, पत्रकारिता और प्रकाशन का क्षेत्र विकसित हुआ। एक बड़ा वर्ग ऐसे लोगों का उभरा जो शिक्षित थे, जो साहित्य, कला, राजनीति और दर्शन में रुचि रखते थे, परंतु जो आर्थिक संघर्ष से भी जूझ रहे थे। प्रयोगवादी कवि स्वयं इसी वर्ग से आते थे और इसलिए वे इसके संघर्षों को गहराई से समझते थे।

अज्ञेय की कविताओं में हम देखते हैं कि नायक एक संवेदनशील व्यक्ति है जो अपने अकेलेपन, अपनी अलगाव की भावना और अपनी अस्तित्वगत चिंताओं से जूझ रहा है। वह समाज का हिस्सा है, परंतु समाज से कटा हुआ भी है। वह प्रेम चाहता है, परंतु प्रेम में पूर्ण विलय से भयभीत भी है। वह सृजन करना चाहता है, परंतु सृजन की प्रक्रिया उसे पीड़ा भी देती है। यह वह संघर्ष है जो शारीरिक नहीं है, बल्कि मानसिक और भावनात्मक है।

इकाई 1.3: आत्मसंघर्ष और समाज-चेतना

गजानन माधव मुक्तिबोध का साहित्य हिंदी आलोचना तथा वैचारिकी के लिए एक केंद्रीय चुनौती रहा है, उनकी रचनाओं में स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज के आत्मिक पतन, राजनीतिक भ्रष्टाचार और वर्ग-संघर्ष की एक मर्मभेदी गाथा निहित है, जिसका केंद्रीय स्वर आत्मसंघर्ष की भयावह तीव्रता, समाज-चेतना की तीक्ष्णता और मार्क्सवादी दृष्टिकोण की रचनात्मक स्वीकृति है। मुक्तिबोध की कविताएँ केवल व्यक्तिगत अनुभव नहीं हैं, बल्कि वे एक ऐतिहासिक चेतना का परिणाम हैं, जहाँ एक संवेदनशील व्यक्ति सत्ता और पूंजी के विराट जाल में अपनी मानवीय अस्मिता को बचाने के लिए छटपटाता है। मुक्तिबोध के काव्य का आरंभिक और सबसे गहन आयाम उनका आत्मसंघर्ष है, जो केवल व्यक्तिगत निराशा या अवसाद तक सीमित नहीं है, बल्कि एक वैश्विक और ऐतिहासिक चेतना का परिणाम है। यह संघर्ष वस्तुतः तीन प्रमुख धरातलों पर फूटता है: बौद्धिक और कलाकार का द्वंद्व, नैतिक संकट और अपराधबोध, और आत्मान्वेषण की यात्रा। यह द्वंद्व उनके काव्य-शिल्प को भी प्रभावित करता है, जिससे उनकी कविताएँ लंबी, जटिल, और फैंटेसी से भरी हुई दिखाई देती हैं, क्योंकि बाहर की अराजकता भीतर के मन में भी उसी तीव्रता से प्रतिबिंबित होती है, और कवि के लिए यह संघर्ष केवल एक विषय नहीं, बल्कि जीने की एक विवशता है, जिसका सामना वह अपनी रचनाओं के अँधेरे गलियारों में करता है।



चित्र 1.3 आत्मसंघर्ष और समाज-चेतना

बौद्धिक और कलाकार का द्वंद्व मुक्तिबोध के आत्मसंघर्ष का सबसे बुनियादी केंद्र है; मुक्तिबोध एक तरफ तीक्ष्ण बुद्धि वाले विचारक हैं, जो मार्क्सवादी दर्शन और दर्शनशास्त्र के औजारों से समाज के शोषणकारी ढाँचे का विश्लेषण करते हैं। यह बौद्धिक पक्ष उनसे माँग करता है कि वे सत्य को यथार्थ की कठोरता में देखें, उसका विच्छेदन करें और वैज्ञानिक चेतना के साथ क्रांति का मार्ग प्रशस्त करें। दूसरी ओर, उनके भीतर एक संवेदनशील कलाकार निवास करता है, जो सौंदर्य, प्रेम, मानवीय भावनाओं और कलात्मक पूर्णता की खोज करता है। यह कलाकार चाहता है कि कविता में जीवन की मधुरिमा हो, राग-रंग हो, और एक कल्पनाशील उड़ान हो। यह द्वंद्व तब चरम पर पहुँच जाता है जब बौद्धिक उन्हें बताता है कि मौजूदा समाज में सौंदर्य एक धोखा है, एक मास्क है, और पूंजीवादी व्यवस्था की क्रूरता के सामने कला की मधुरिमा बेमानी है। कवि का मन सुंदरता की तलाश और सत्य की कुरूपता के बीच पिस जाता है। "अँधेरे में" जैसी कविताओं में यह द्वंद्व उस पहचान की तलाश में बदल जाता है, जहाँ कवि पूछता है कि क्या मेरा 'मैं' केवल बौद्धिक विश्लेषण तक सीमित है, या वह कार्रवाई करने में भी सक्षम है। यह द्वंद्व कवि को "फँसा हुआ" महसूस कराता है, जहाँ वह जानता सब कुछ है, परंतु कार्रवाई करने की ताकत नहीं जुटा पाता। यह द्वंद्व उनके शिल्प में असंगति, टूटे हुए बिंबों और विचार के अतिरेक के रूप में प्रकट होता है, जो उनकी रचनाओं को एक विशिष्ट अंदरूनी बेचैनी प्रदान करता है।

इस द्वंद्व से ही नैतिक संकट और अपराधबोध का जन्म होता है। मुक्तिबोध की केंद्रीय चिंता यह है कि ज्ञान और कर्म के बीच की खाई को कैसे पाटा जाए, कवि जानता है कि समाज शोषण पर आधारित है, वह यह भी जानता है कि सत्य क्या है और न्याय क्या है, लेकिन इस ज्ञान के बावजूद, वह स्वयं को उस व्यवस्था का हिस्सा पाता है जिसका वह विरोध करता है। यह निष्क्रियता एक गहरा अपराधबोध पैदा करती है। कवि का 'मैं' खुद को 'सभ्य' और 'चिंतनशील' कहकर संतुष्ट नहीं हो पाता, बल्कि वह खुद को पलायनवादी या कायराना महसूस करता है। इस अपराधबोध का एक और आयाम वर्ग-चेतना से जुड़ा है: कवि खुद को मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी मानता है, जिसके पास चिंतन का समय और सुविधा है, जबकि शोषित जनता के पास केवल अथक श्रम और पीड़ा है। वह महसूस करता है कि उसका अस्तित्व ही उस शोषण पर टिका है



छायावादोत्तर काव्य

जिसका वह सैद्धांतिक विरोध कर रहा है। इसी कारण, कवि की कविताएँ अक्सर खुद पर कटाक्ष करती हैं, खुद को निंदित करती हैं, और अपने भीतर छिपे भयानक दरिंदे या भ्रष्ट आत्मा को उजागर करती हैं। यह नैतिक संकट उन्हें चैन से बैठने नहीं देता और उनकी कविता को आत्म-शुद्धि का एक सतत प्रयास बना देता है, जहाँ कविता लिखना ही निष्क्रियता के पाप से मुक्ति का एकमात्र साधन बन जाता है। यह गहन आत्मसंघर्ष अंततः आत्मान्वेषण की यात्रा में परिणत होता है। मुक्तिबोध के लिए आत्म कोई स्थिर, शांत इकाई नहीं है, बल्कि एक संघर्षशील, गतिशील और अँधेरे से भरा प्रदेश है, और उनकी कविताओं में यह यात्रा अक्सर सुरंगों, अँधेरे गलियारों, तहखानों और भूतिया कमरों में होती है। कवि इन अँधेरे रास्तों पर चलकर अपने भीतर की सत्य-पिपासा को खोजने निकलता है। यह आत्मान्वेषण आत्म-समीक्षा का सबसे क्रूर रूप है, जहाँ कवि अपने अचेतन मन में दबी हुई ईर्ष्या, महत्वाकांक्षा, डर और पाखंड का सामना करता है। कवि को लगता है कि अगर क्रांति बाहर लाई जानी है, तो पहले भीतर की गंदगी साफ करनी होगी। इसीलिए, आत्मान्वेषण की यह यात्रा एक आवश्यक पूर्व-शर्त बन जाती है। वह अपने 'वास्तविक मैं' की तलाश करता है, जो 'मुखौटों' के नीचे छिपा हुआ है। इस यात्रा का लक्ष्य व्यक्तिगत मुक्ति नहीं, बल्कि व्यक्तिगत सच्चाई को खोजकर उसे सामाजिक क्रांति की चेतना से जोड़ना है। कवि का आत्मान्वेषण इसीलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि वह 'व्यक्ति और समाज' के बीच के द्वंद्व को 'भीतर और बाहर' के द्वंद्व में बदल देता है, यह साबित करते हुए कि सामाजिक यथार्थ ही व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक यथार्थ को जन्म देता है। यह आत्मान्वेषण उसे अंततः जन-संघर्ष के उस बड़े मैदान तक ले जाता है, जहाँ उसे लगता है कि उसकी अस्मिता का सच्चा अर्थ केवल जन-पक्षधरता में ही निहित है।

मुक्तिबोध की आत्म-पीड़ा का दूसरा और अनिवार्य पक्ष उनकी समाज-चेतना है, जो उनके मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर एक क्रांतिकारी रूप लेती है। मुक्तिबोध के लिए समाज-चेतना केवल समस्याओं को देखना नहीं, बल्कि उनकी जड़ों तक पहुँचना, उनके ऐतिहासिक विकास को समझना और उनके समाधान के लिए एक ठोस वैचारिक आधार तैयार करना है, और यह समाज-चेतना उनके आत्मसंघर्ष से सीधे जुड़ी हुई है, क्योंकि वे मानते हैं कि व्यक्ति की निजी वेदना समाज की सार्वजनिक वेदना का ही प्रतिबिंब है। इस समाज-चेतना का सबसे पहला और तीक्ष्ण रूप शोषण

और अन्याय के प्रति जागरूकता में प्रकट होता है। स्वतंत्रता के बाद भारत में पनपे पूंजीवादी-सत्तावादी गठजोड़ को मुक्तिबोध ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से पहचाना। उन्होंने देखा कि आजादी के नाम पर केवल सत्ता हस्तांतरण हुआ है, व्यवस्था नहीं बदली। "चाँद का मुँह टेढ़ा है" संग्रह की अधिकांश कविताएँ राजनीतिक और आर्थिक शोषण की इस नई क्रूरता को दर्शाती हैं। कवि ने मध्यम वर्ग के पाखंड और सत्ता में बैठे व्यक्तियों के मुखौटों को उजागर किया। वे जानते थे कि शोषण अब केवल जमींदारी या अंग्रेजी राज तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सांस्कृतिक, बौद्धिक और राजनीतिक स्तर पर भी गहरा गया है। उनकी कविताओं में भ्रष्टाचार, पूंजीपतियों की मनमानी और आम आदमी की बढ़ती हुई गरीबी का यथार्थ चित्रण मिलता है। वे बुद्धिजीवी वर्ग की उस निष्क्रियता और आलस्य के प्रति भी जागरूक थे, जो शोषण का विरोध करने के बजाय उससे समझौता कर लेता है। यह जागरूकता एक सत्य-दर्शन है, जो सुंदरता के भ्रम को चीरकर यथार्थ की कुरूपता को सामने लाता है।

शोषण की इस जागरूकता से ही सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा जन्म लेती है। मुक्तिबोध की कविताएँ केवल विषाद या निराशा की अभिव्यक्ति नहीं हैं, वे एक उजले भविष्य की तीव्र प्यास को दर्शाती हैं। उनकी आकांक्षा है कि यह शोषणकारी व्यवस्था पूरी तरह से ध्वस्त हो जाए और उसकी जगह मानव-मुक्ति पर आधारित एक समानतावादी समाज स्थापित हो। यह आकांक्षा किसी काल्पनिक स्वर्ग की नहीं, बल्कि मेहनतकश जनता के श्रम और संघर्ष पर आधारित एक यथार्थवादी क्रांति की है। "मुझे कदम-कदम पर" और "अँधेरे में" जैसी कविताएँ परिवर्तन की संभावना को तलाशती हैं। परिवर्तन की यह आकांक्षा कवि को आलोचनात्मक चिंतन के लिए प्रेरित करती है, जहाँ वह केवल वर्तमान की निंदा नहीं करता, बल्कि भविष्य की रूपरेखा भी देखता है। उनके लिए क्रांति केवल एक राजनीतिक घटना नहीं, बल्कि मानव-चेतना के स्तर पर एक मूलभूत रूपांतरण है। यह रूपांतरण तभी संभव है जब बुद्धिजीवी अपने अपराधबोध से मुक्त होकर जनता के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़ा हो। यह आकांक्षा अंततः जनपक्षधरता में अपनी चरम अभिव्यक्ति पाती है। मुक्तिबोध की कविता का केंद्रीय हीरो कोई अकेला, उदास बुद्धिजीवी नहीं, बल्कि शोषित, मेहनतकश, और संघर्षशील जनता है। उनकी जनपक्षधरता किसी भावनात्मक दया पर आधारित नहीं है, बल्कि ऐतिहासिक और वैचारिक प्रतिबद्धता पर आधारित है। वे



छायावादोत्तर काव्य

जानते हैं कि इतिहास की असली ताकत और सच्चाई केवल जन-शक्ति में निहित है। उनकी कविताओं में, जनता एक अंधेरे कुएँ की तरह है, जिसके भीतर अमृत छिपा हुआ है - यानी अपार शक्ति और रचनात्मकता। कवि का काम है इस शक्ति को पहचानना और उसे जागृत करना। मुक्तिबोध की कविता "जन-गण का चेहरा एक" की तलाश करती है, जो विभिन्न जाति, धर्म और क्षेत्रीय सीमाओं से ऊपर उठकर वर्ग-हित की एकता पर आधारित हो। उनकी जनपक्षधरता इस बात की मांग करती है कि बुद्धिजीवी अपनी एकांतवास की सुविधा को छोड़कर जन-संघर्ष के मैदान में उतरें और अपनी आत्मिक मुक्ति को सामाजिक मुक्ति से जोड़ें। यह जनपक्षधरता ही उनके मार्क्सवादी दृष्टिकोण का व्यवहारिक आधार बनती है, जो उन्हें केवल चिंतक नहीं, बल्कि क्रांति का सहयात्री बनाती है।

मुक्तिबोध की वैचारिकी का मूल आधार उनका मार्क्सवाद है, उनका मार्क्सवाद रूढ़िवादी या यांत्रिक नहीं है; यह एक रचनात्मक, मनोवैज्ञानिक और आत्म-आलोचनात्मक मार्क्सवाद है, जिसे भारतीय यथार्थ और कवि के व्यक्तिगत अनुभव की कसौटी पर परखा गया है। मुक्तिबोध ने मार्क्सवाद को केवल एक राजनीतिक सिद्धांत के रूप में नहीं, बल्कि जीवन के दर्शन और कला की पद्धति के रूप में अपनाया। मुक्तिबोध का मार्क्सवाद प्रगतिशील विचारधारा का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। वे प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़े थे, लेकिन उनका चिंतन केवल संगठन की सीमाओं तक सीमित नहीं रहा। उनके लिए प्रगति का अर्थ था मानव-मुक्ति की दिशा में सतत आगे बढ़ना, रूढ़ियों का खंडन करना और विज्ञानसम्मत सोच को अपनाना। उनकी विचारधारा अतीत की महिमा या अंध-विश्वास पर नहीं, बल्कि तर्क, इतिहास और द्वंद्वत्मक भौतिकवाद पर आधारित थी। उनका मार्क्सवाद उन्हें यह समझने में मदद करता है कि व्यक्तिगत दुख का कारण दैवीय विधान या भाग्य नहीं, बल्कि आर्थिक ढाँचे और उत्पादन संबंधों में निहित है। वे कविता को "ज्ञान-कर्म" का माध्यम मानते थे, जिसका उद्देश्य सामाजिक सत्य को उजागर करना और जनता को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करना था। यह प्रगतिशील दृष्टिकोण ही उन्हें नई कविता के अन्य कवियों से अलग करता है, जो अक्सर व्यक्तिगत हताशा में डूब जाते थे; मुक्तिबोध की हताशा भी क्रांति की ओर उन्मुख होती है।

मुक्तिबोध के मार्क्सवाद की सबसे बड़ी पहचान वर्ग संघर्ष की चेतना है। वे भारतीय समाज को वर्गों में विभाजित देखते थे, जहाँ पूंजीपति, नौकरशाही और राजनीतिक सत्ता का एक त्रिकोण मेहनतकश जनता का शोषण कर रहा है। उनकी कविता "पूँजीवादी समाज की तरफ़" स्पष्ट रूप से शोषणकारी वर्ग की पहचान करती है और उसके मुखौटों को उतार फेंकती है। वे शोषण को केवल आर्थिक रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और वैचारिक रूप में भी देखते थे। उनका मानना था कि सत्ता हमेशा भ्रम, मिथ्या प्रचार और पाखंड के माध्यम से अपनी वैधता स्थापित करती है, और बुद्धिजीवी अक्सर इस भ्रम-जाल में फँस जाते हैं। मुक्तिबोध की फैंटेसी इसी वर्ग संघर्ष की चेतना का परिणाम है, जहाँ वे सत्ता के अमूर्त और अदृश्य रूप को भयावह बिंबों के माध्यम से मूर्त रूप देते हैं। उनका वर्ग-संघर्ष का सिद्धांत उन्हें यह समझने में मदद करता है कि व्यक्तिगत आत्मसंघर्ष भी अंततः वर्ग-हितों के टकराव से उत्पन्न हुआ एक मनोवैज्ञानिक द्वंद्व है, और आत्म-मुक्ति तभी संभव है जब वर्ग-शोषण का अंत हो।

अंत में, मुक्तिबोध का मार्क्सवाद क्रांतिकारी आदर्शों से ओत-प्रोत है। उनके लिए क्रांति एक अपरिहार्य ऐतिहासिक आवश्यकता है, न कि केवल एक रोमांटिक सपना। उनका क्रांतिकारी आदर्श पूर्ण मानव-मुक्ति पर आधारित है, जहाँ व्यक्ति आर्थिक, राजनीतिक और वैचारिक गुलामी से मुक्त हो। वे क्रांतिकारी जन-शक्ति पर अखंड विश्वास रखते थे। उनकी कविताएँ अक्सर एक अज्ञात, भविष्यगामी नेता की तलाश में रहती हैं, जो जनता की छिपी हुई शक्ति को संगठित कर सके। यह क्रांतिकारी आदर्श मुक्तिबोध के आत्म-समीक्षा के पहलू को भी वैचारिक बल प्रदान करता है: वे मानते हैं कि क्रांति के लिए व्यक्ति को पहले अपने भीतर के अँधेरे से लड़ना होगा, अपने स्वार्थ और मध्यमवर्गीय सुविधाभोग को त्यागना होगा। यह आदर्श उन्हें केवल मार्क्सवादी आलोचक नहीं, बल्कि मार्क्सवादी कवि बनाता है, जो अपनी कला को हथियार बनाकर सामाजिक परिवर्तन की राह में खड़ा हो जाता है। उनका क्रांतिकारी आदर्श हिंदी साहित्य में जनवादी और प्रगतिशील चेतना को एक नई ऊँचाई और एक नया आवेग प्रदान करता है, जिसका प्रभाव आज भी हिंदी आलोचना और रचनात्मकता पर गहरा है। मुक्तिबोध का काव्य एक अविभाज्य त्रिकोण है, जिसके तीन कोण हैं आत्मसंघर्ष, समाज-चेतना और मार्क्सवाद। उनका आत्मसंघर्ष उन्हें मनोवैज्ञानिक सत्य का गहरा गोताखोर बनाता है, उनकी समाज-चेतना उन्हें समकालीन यथार्थ का



छायावादोत्तर
काव्य

निर्भीक आलोचक बनाती है, और उनका मार्क्सवाद उन्हें क्रांति और परिवर्तन का सच्चा पक्षधर बनाता है। उनकी लंबी, जटिल और बिंबात्मक कविताएँ वास्तव में भारतीय चेतना की उस पीड़ा और संभावना का नक्शा हैं, जो स्वतंत्रता के बाद भ्रम और आशा के बीच फँसी हुई थी। मुक्तिबोध की प्रासंगिकता इस बात में निहित है कि वे आज भी हमें अपने भीतर की गंदगी और बाहर की व्यवस्था दोनों से एक साथ लड़ने का साहस और वैचारिक औजार प्रदान करते हैं।

1.4 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

1.4.1 बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs – 10)

1. “अंधेरे में” कविता के रचयिता कौन हैं?
 - a) सुमित्रानंदन पंत
 - b) गजानन माधव मुक्तिबोध
 - c) नागार्जुन
 - d) अज्ञेय

✓ **उत्तर:** b) गजानन माधव मुक्तिबोध
2. मुक्तिबोध किस काव्यधारा से सर्वाधिक संबंधित हैं?
 - a) छायावाद
 - b) प्रयोगवाद
 - c) प्रगतिवाद
 - d) नई कविता

✓ **उत्तर:** b) प्रयोगवाद
3. “चाँद का मुँह टेढ़ा है” किसकी रचना है?
 - a) गजानन माधव मुक्तिबोध
 - b) अज्ञेय
 - c) हरिवंश राय बच्चन
 - d) सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन

✓ **उत्तर:** a) गजानन माधव मुक्तिबोध
4. मुक्तिबोध की कविताओं में मुख्यतः कौन-सा भाव प्रमुख है?
 - a) रूमानी भाव
 - b) आत्मसंघर्ष और समाज चेतना
 - c) प्राकृतिक सौंदर्य
 - d) अध्यात्मवाद

✓ **उत्तर:** b) आत्मसंघर्ष और समाज चेतना
5. प्रयोगवादी काव्यधारा का प्रमुख उद्देश्य क्या था?
 - a) परंपरा का निर्वाह
 - b) समाज सुधार



छायावादोत्तर
काव्य

- c) अभिव्यक्ति में नवीनता और आत्मानुभूति
d) धार्मिक प्रचार
✓ **उत्तर:** c) अभिव्यक्ति में नवीनता और आत्मानुभूति
6. "अंधरे में" कविता का स्वरूप कैसा है?
a) लघु गीतात्मक कविता
b) दीर्घ आत्ममंथनात्मक कविता
c) हास्य कविता
d) व्यंग्य कविता
✓ **उत्तर:** b) दीर्घ आत्ममंथनात्मक कविता
7. मुक्तिबोध के अनुसार सच्ची कविता क्या है?
a) केवल सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति
b) सामाजिक सत्य का उद्घाटन
c) कल्पना की उड़ान
d) भक्ति का प्रदर्शन
✓ **उत्तर:** b) सामाजिक सत्य का उद्घाटन
8. "प्रयोगवाद" की प्रमुख विशेषता क्या है?
a) भाषा की शुद्धता
b) प्रतीक, बिंब और नए रूपक का प्रयोग
c) छंद और अलंकार का पालन
d) पुराणकथाओं का उपयोग
✓ **उत्तर:** b) प्रतीक, बिंब और नए रूपक का प्रयोग
9. मुक्तिबोध का साहित्य किस युग से संबंधित है?
a) छायावाद
b) प्रयोगवाद और नई कविता युग
c) प्राचीन युग
d) भक्ति युग
✓ **उत्तर:** b) प्रयोगवाद और नई कविता युग
10. "अंधरे में" कविता में कवि का संघर्ष किससे है?
a) प्रकृति से

b) अपने भीतर के अंधकार और समाज से

c) राजनीति से

d) प्रेम से

✓ **उत्तर:** b) अपने भीतर के अंधकार और समाज से

1.4.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न (Short Answer)

1. मुक्तिबोध की रचनाशैली की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
2. “अंधरे में” कविता में ‘अंधकार’ का प्रतीकात्मक अर्थ क्या है?
3. प्रयोगवादी कविता की दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।
4. “चाँद का मुँह टेढ़ा है” शीर्षक का क्या अर्थ है?
5. मुक्तिबोध की कविताओं में आत्मसंघर्ष किस रूप में दिखाई देता है?
6. समाज-चेतना का मुक्तिबोध की कविता में क्या स्थान है?
7. मुक्तिबोध की भाषा शैली की विशिष्टता क्या है?
8. प्रयोगवाद में ‘व्यक्तिवाद’ का क्या अर्थ है?
9. मुक्तिबोध की रचनाओं में कौन-सा यथार्थ प्रतिबिंबित होता है?
10. “अंधरे में” कविता में कवि किस प्रकार समाज का आकलन करता है?

1.4.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type)

1. “अंधरे में” कविता का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।
2. गजानन माधव मुक्तिबोध की कविताओं में आत्मसंघर्ष और समाज-चेतना के संबंध पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
3. प्रयोगवादी काव्यधारा के विकास में मुक्तिबोध का योगदान स्पष्ट कीजिए।
4. “चाँद का मुँह टेढ़ा है” कविता-संग्रह की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
5. मुक्तिबोध की काव्य-दृष्टि को ‘आदर्शवाद और यथार्थवाद’ के संदर्भ में समझाइए।
6. प्रयोगवाद और प्रगतिवाद के बीच मुक्तिबोध की स्थिति स्पष्ट कीजिए।
7. मुक्तिबोध की कविताओं में आत्मसंघर्ष के प्रतीकों का विश्लेषण कीजिए।
8. “अंधरे में” कविता आधुनिक समाज के अंतर्विरोधों को किस प्रकार उजागर करती है



छायावादोत्तर
काव्य

9. मुक्तिबोध की रचनाओं में व्यक्ति और समाज का द्वंद्व किस रूप में व्यक्त हुआ है?
10. प्रयोगवादी दृष्टि और मुक्तिबोध की काव्य चेतना में क्या सामंजस्य है – विस्तार से बताइए।

मॉड्यूल 2

अज्ञेय

संरचना

इकाई 2.1: आँगन के पार द्वार: कविता 'असाध्य वीणा'

इकाई 2.2 नई कविता की प्रतीकात्मकता

इकाई 2.3 रहस्यबोध और सौंदर्य चेतना

2.0 उद्देश्य:

- विद्यार्थियों को अज्ञेय की कविताओं में निहित प्रतीकात्मकता और रहस्यबोध की समझ प्रदान करना।
- “असाध्य वीणा” कविता के माध्यम से अज्ञेय की सौंदर्य चेतना और मानव संघर्ष को पहचानना।
- नई कविता आंदोलन के मूल तत्वों और अज्ञेय की भूमिका का विश्लेषण करना।
- अज्ञेय की रचनाओं में व्यक्त आत्मानुभूति, बौद्धिकता और कलात्मक प्रयोग को समझना।
- विद्यार्थियों में आधुनिक हिंदी कविता के दार्शनिक, प्रतीकात्मक और सौंदर्यात्मक पक्षों की समग्र समझ विकसित करना।

इकाई 2.1: आँगन के पार द्वार: कविता 'असाध्य वीणा'

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के प्रयोगवादी आंदोलन के प्रवर्तक सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' की कविता 'असाध्य वीणा' आधुनिक हिंदी काव्य की एक अत्यंत महत्वपूर्ण और चर्चित रचना है। यह कविता न केवल एक काव्य-कृति है, बल्कि कला के प्रति समर्पण, साधना की पराकाष्ठा और मानवीय मूल्यों की गहन व्याख्या का एक अद्भुत दस्तावेज भी है। इस कविता में अज्ञेय ने प्रतीकों और बिंबों के माध्यम से जीवन के उन गूढ़ सत्यों को उजागर किया है जो सामान्य दृष्टि से परे हैं।

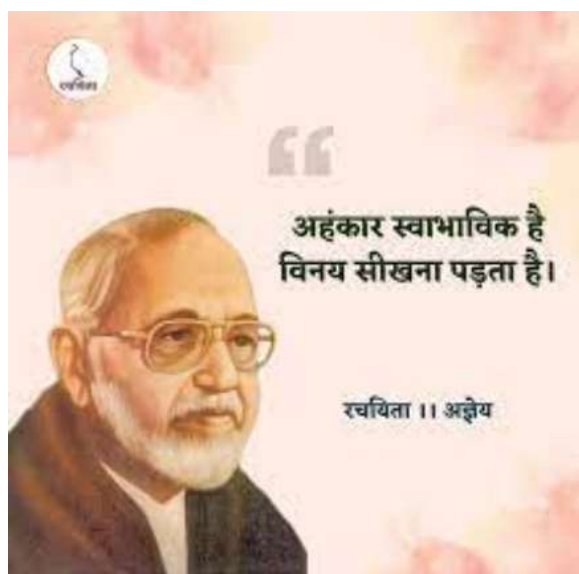
'असाध्य वीणा' अज्ञेय के काव्य-संग्रह 'आँगन के पार द्वार' में संकलित है। इस कविता में एक ऐसी कथा है जो पाठक को सोचने पर विवश करती है कि कला का वास्तविक

स्वरूप क्या है, कलाकार का जीवन-लक्ष्य क्या होना चाहिए, और सच्ची साधना किसे कहते हैं। यह कविता हमें बताती है कि कला केवल मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि यह जीवन का एक अभिन्न अंग है, जो साधक के संपूर्ण व्यक्तित्व को समाहित कर लेती है।

2.1.1 अज्ञेय: जीवन और साहित्य

जीवन परिचय

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जन्म सात मार्च 1911 को उत्तर प्रदेश के कुशीनगर जिले के लाहौरपुर-कसया गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम हीरानंद शास्त्री था, जो पुरातत्व विभाग में कार्यरत थे। अज्ञेय का बचपन विभिन्न स्थानों पर बीता, जिसके कारण उन्हें विविध संस्कृतियों और परिवेशों को समझने का अवसर मिला। उनकी शिक्षा मद्रास, लाहौर और इलाहाबाद जैसे विभिन्न शहरों में हुई। अज्ञेय ने प्रारंभिक शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से प्राप्त की, लेकिन हिंदी साहित्य के प्रति उनका लगाव बचपन से ही था। उन्होंने लाहौर के फॉरमन क्रिश्चियन कॉलेज से बी.एस.सी. की डिग्री प्राप्त की। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अज्ञेय क्रांतिकारी गतिविधियों में सक्रिय रूप से जुड़े और इस कारण उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। जेल में बिताए गए समय ने उनके व्यक्तित्व और साहित्यिक दृष्टि को गहराई से प्रभावित किया।



चित्र 2.1 अज्ञेय

साहित्यिक योगदान

अज्ञेय हिंदी साहित्य में प्रयोगवाद और नई कविता आंदोलन के प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं। उन्होंने न केवल कविता के क्षेत्र में बल्कि उपन्यास, कहानी, निबंध, यात्रा-वृत्तांत और संपादन के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। अज्ञेय की रचनाओं में व्यक्तिवाद, अस्तित्ववाद और आधुनिक मनुष्य की जटिल मनोदशाओं का गहन चित्रण मिलता है।

उनके प्रमुख काव्य संग्रहों में 'भग्नदूत' (1933), 'चिंता' (1942), 'इत्यलम्' (1946), 'हरी घास पर क्षण भर' (1949), 'बावरा अहेरी' (1954), 'इंद्रधनुष रौंदे हुए ये' (1957), 'अरी ओ करुणा प्रभामय' (1959), 'आँगन के पार द्वार' (1961), 'कितनी नावों में कितनी बार' (1967), 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ' (1970), 'सागर मुद्रा' (1970), और 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' (1974) शामिल हैं।

उपन्यासों में 'शेखर: एक जीवनी' (दो भागों में), 'नदी के द्वीप', और 'अपने-अपने अजनबी' उल्लेखनीय हैं। कहानी संग्रहों में 'विपथगा', 'परंपरा', 'कोठरी की बात', और 'ये तेरे प्रतिरूप' प्रसिद्ध हैं। अज्ञेय ने 'तार सप्तक' (1943), 'दूसरा सप्तक' (1951), 'तीसरा सप्तक' (1959), और 'चौथा सप्तक' (1979) का संपादन भी किया, जिसने हिंदी कविता को नई दिशा प्रदान की।

साहित्यिक विशेषताएँ

अज्ञेय की कविताओं में बौद्धिकता, प्रयोगशीलता और भाषा के प्रति सजग दृष्टि का अद्भुत समन्वय देखा जा सकता है। वे परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु बनाने में सफल रहे। उनकी रचनाओं में प्रतीक और बिंब-विधान का कुशल प्रयोग मिलता है। वे अपनी कविताओं में दार्शनिकता और सौंदर्यबोध को एक साथ प्रस्तुत करते हैं। अज्ञेय की कविता में व्यक्ति की आंतरिक यात्रा, प्रकृति के साथ तादात्म्य, और जीवन के गहन अनुभवों की अभिव्यक्ति प्रमुखता से मिलती है।

अज्ञेय ने हिंदी भाषा को नए शब्द, नए मुहावरे और नए प्रयोग दिए। उन्होंने शब्दों का चयन अत्यंत सावधानी से किया और भाषा को एक नया सौंदर्य प्रदान किया। उनकी



छायावादोत्तर
काव्य

कविताओं में छायावादी प्रभाव के साथ-साथ पश्चिमी काव्य परंपरा की झलक भी दिखाई देती है, लेकिन उन्होंने अपनी मौलिक शैली विकसित की जो पूर्णतः भारतीय संवेदना से जुड़ी है।

सम्मान और पुरस्कार

अज्ञेय को उनके साहित्यिक योगदान के लिए अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। 1964 में 'आँगन के पार द्वार' के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। 1978 में 'कितनी नावों में कितनी बार' के लिए उन्हें भारत के सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान ज्ञानपीठ पुरस्कार से नवाजा गया। इसके अलावा उन्हें पद्म भूषण सहित कई अन्य सम्मान भी प्राप्त हुए। चार अप्रैल 1987 को अज्ञेय का निधन हो गया, लेकिन उनकी रचनाएँ आज भी हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं।

2.1.2 'असाध्य वीणा' कविता: परिचय

'असाध्य वीणा' अज्ञेय की एक लंबी कथात्मक कविता है जो 'आँगन के पार द्वार' काव्य-संग्रह में संकलित है। यह कविता 1961 में प्रकाशित हुई थी। इस कविता की विशेषता यह है कि यह एक कथा के माध्यम से अपने दार्शनिक और सौंदर्यात्मक विचारों को प्रस्तुत करती है। कथा-तत्व इस कविता को सामान्य पाठक के लिए भी सुलभ बनाता है, जबकि इसकी गहराई और प्रतीकात्मकता विद्वानों और समीक्षकों के लिए विचार-मंथन का विषय बनती है।

कविता का केंद्रीय विषय

'असाध्य वीणा' कविता का केंद्रीय विषय कला के प्रति समर्पण और साधना की पराकाष्ठा है। यह कविता हमें बताती है कि सच्ची कला किसी व्यक्ति-विशेष की संपत्ति नहीं हो सकती, बल्कि यह एक सार्वभौमिक अनुभव है जो साधक के पूर्ण समर्पण की माँग करती है। कविता में यह दिखाया गया है कि कला का वास्तविक स्वरूप तभी प्रकट होता है जब कलाकार अपने अहं को पूर्णतः विसर्जित कर देता है।

यह कविता कला और सत्ता के बीच के संघर्ष को भी प्रस्तुत करती है। राजा भौतिक सत्ता का प्रतीक है जो वीणा को अपने अधिकार में रखना चाहता है, जबकि गोपी

आध्यात्मिक और कलात्मक समर्पण का प्रतीक है जो जानता है कि कला का स्वामित्व किसी का नहीं हो सकता। इस संघर्ष के माध्यम से अज्ञेय यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या कला को भौतिक संसाधनों और सत्ता द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है, या यह एक स्वतंत्र और पवित्र क्षेत्र है जिसे केवल समर्पण से ही प्राप्त किया जा सकता है।

प्रतीकात्मकता

'असाध्य वीणा' अपनी प्रतीकात्मकता के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस कविता में प्रत्येक पात्र और वस्तु एक गहरे अर्थ को व्यक्त करती है। वीणा केवल एक वाद्य यंत्र नहीं है, बल्कि यह संपूर्ण कला और सौंदर्य का प्रतीक है। गोपी केवल एक वीणावादक नहीं है, बल्कि वह उस समर्पित कलाकार का प्रतीक है जो अपनी कला के लिए सब कुछ न्योछावर कर सकता है। राजा भौतिक संसार, सत्ता और अहंकार का प्रतीक है।

कविता में वीणा का 'असाध्य' होना अत्यंत महत्वपूर्ण है। असाध्य का अर्थ है जिसे साधा न जा सके, जो वश में न आए। यह प्रतीक हमें बताता है कि सच्ची कला को बलपूर्वक या अधिकार से प्राप्त नहीं किया जा सकता। कला स्वयं को केवल उसी के सामने प्रकट करती है जो पूर्ण समर्पण और त्याग के साथ उसके पास आता है।

दार्शनिक आयाम

'असाध्य वीणा' में अज्ञेय ने भारतीय दर्शन के कई तत्वों को समाहित किया है। कविता में त्याग, समर्पण, और आत्म-बलिदान की जो अवधारणा प्रस्तुत की गई है, वह भारतीय आध्यात्मिक परंपरा का मूल तत्व है। गीता में कहा गया है कि कर्म में आसक्ति और फल की इच्छा के बिना कर्म करना ही सच्चा कर्म है। इसी प्रकार, गोपी बिना किसी स्वार्थ या अपेक्षा के केवल कला की साधना में लीन है।

कविता में निहित दर्शन यह भी है कि मृत्यु अंत नहीं है, बल्कि एक परिवर्तन है, एक उच्चतर अवस्था की प्राप्ति है। गोपी की मृत्यु वास्तव में उसके शरीर का अंत है, लेकिन उसकी कला और संगीत अमर हो जाते हैं। यह उपनिषदों की उस शिक्षा की



याद दिलाता है जहाँ कहा गया है कि शरीर नश्वर है, लेकिन आत्मा अमर है। इस संदर्भ में, गोपी की कला उसकी आत्मा का विस्तार है जो अमरत्व प्राप्त करती है।

2.1.3 कथा-सार

'असाध्य वीणा' की कथा अत्यंत सरल लेकिन गहरे अर्थों से भरी हुई है। कविता की शुरुआत एक राजा के दरबार से होती है जहाँ एक प्रसिद्ध वीणावादक गोपी को बुलाया जाता है। राजा ने गोपी की वीणा-वादन कला के बारे में बहुत सुना है और वह गोपी से संगीत सुनना चाहता है। राजा यह भी चाहता है कि गोपी उसे वीणा बजाना सिखाए।

गोपी का आगमन

गोपी एक साधारण दिखने वाला व्यक्ति है, लेकिन उसकी आँखों में एक अद्भुत तेज और गहराई है। वह अपनी वीणा को बहुत प्रेम से संभालता है, मानो वह कोई जीवित प्राणी हो। जब राजा गोपी से उसकी वीणा के बारे में पूछता है, तो गोपी बताता है कि यह कोई साधारण वीणा नहीं है। यह असाध्य वीणा है, जिसे साधना अत्यंत कठिन है। गोपी के अनुसार, इस वीणा को केवल पूर्ण समर्पण और त्याग से ही बजाया जा सकता है।

राजा प्रभावित होता है लेकिन उसे लगता है कि यह केवल एक अतिशयोक्ति है। वह सोचता है कि पर्याप्त अभ्यास और प्रयास से किसी भी वीणा को बजाया जा सकता है। राजा गोपी से कहता है कि वह उसे वीणा बजाना सिखाए। गोपी मुस्कुराता है और कहता है कि वह राजा को वीणा बजाना नहीं सिखा सकता, क्योंकि इस वीणा को बजाने के लिए जो त्याग चाहिए, वह किसी राजा के लिए संभव नहीं है।

राजा की जिज्ञासा

राजा की जिज्ञासा और बढ़ जाती है। वह गोपी से पूछता है कि आखिर इस वीणा की क्या विशेषता है जो इसे असाध्य बनाती है। गोपी बताता है कि इस वीणा के तारों को बनाने के लिए विशेष प्रकार के तंतु चाहिए। ये तंतु किसी साधारण स्रोत से नहीं

मिलते। इन तारों को बनाने के लिए एक विशेष प्रकार की साधना और समर्पण की आवश्यकता होती है।

राजा और भी उत्सुक हो जाता है। वह गोपी से कहता है कि चाहे कितना भी धन लगे, वह इस वीणा को अपने लिए बनवाना चाहता है। गोपी उदास हो जाता है। वह जानता है कि राजा उसकी बात को नहीं समझ रहा। वह समझाने की कोशिश करता है कि यह वीणा किसी को भी नहीं दी जा सकती, क्योंकि इसे बजाने के लिए जो चाहिए, वह केवल भौतिक चीजों से नहीं मिलता।

वीणा का रहस्य

जब राजा हठ करता है, तो गोपी अंततः वीणा का रहस्य बताता है। वह कहता है कि इस वीणा के तार किसी साधारण धातु या रेशम से नहीं बने हैं। ये तार वीणावादक की अपनी नसों से बने हैं। यह सुनकर राजा स्तब्ध रह जाता है। गोपी बताता है कि उसने अपनी ही नसों को निकालकर इस वीणा के तार बनाए हैं। यही कारण है कि यह वीणा असाध्य है। इसे बजाने के लिए वीणावादक को अपना सब कुछ, यहाँ तक कि अपना शरीर भी, समर्पित करना पड़ता है।

यह रहस्योद्घाटन कविता का सबसे महत्वपूर्ण भाग है। यह प्रतीकात्मक रूप से यह दर्शाता है कि सच्ची कला साधक के जीवन का एक अभिन्न अंग होती है। कलाकार और कला में कोई भेद नहीं रह जाता। कलाकार अपने पूरे अस्तित्व को कला में विलीन कर देता है। यह समर्पण केवल बाहरी नहीं है, बल्कि यह कलाकार की आत्मा का समर्पण है।

गोपी का अंतिम प्रदर्शन

राजा गोपी से अनुरोध करता है कि वह अंतिम बार उस वीणा को बजाए। गोपी स्वीकार करता है। वह अपनी वीणा को हाथ में लेता है और बजाना शुरू करता है। जैसे ही उसकी उंगलियाँ वीणा के तारों को छूती हैं, एक अद्भुत संगीत फैल जाता है। यह संगीत इतना मधुर, इतना हृदयस्पर्शी है कि पूरा दरबार मंत्रमुग्ध हो जाता है। ऐसा लगता है मानो स्वर्ग का संगीत पृथ्वी पर उतर आया हो।



छायावादोत्तर
काव्य

लेकिन जैसे-जैसे गोपी वीणा बजाता है, उसका शरीर कमजोर होता जाता है। उसका चेहरा पीला पड़ने लगता है। यह स्पष्ट हो जाता है कि वीणा बजाना उसके जीवन का मूल्य चुका रहा है। लेकिन गोपी रुकता नहीं। वह जानता है कि यह उसका अंतिम प्रदर्शन है और वह अपनी पूरी आत्मा को इस संगीत में उड़ेल देना चाहता है।

गोपी का बलिदान

अंत में, जब संगीत अपने चरम पर पहुँचता है, गोपी की वीणा उसके हाथों से छूट जाती है और वह भूमि पर गिर जाता है। उसकी आँखें बंद हो जाती हैं। गोपी का निधन हो जाता है, लेकिन उसके चेहरे पर एक अद्भुत शांति और संतोष का भाव है। ऐसा लगता है मानो वह अपने जीवन के उद्देश्य को पूर्ण कर चुका है।

राजा और दरबार के सभी लोग स्तब्ध हैं। उन्हें एहसास होता है कि उन्होंने केवल एक संगीत-प्रदर्शन नहीं देखा, बल्कि एक महान आत्मा के समर्पण और बलिदान के साक्षी बने हैं। वीणा अब भी वहाँ पड़ी है, लेकिन अब कोई उसे छू नहीं सकता। वह एक पवित्र अवशेष बन गई है, जो एक महान कलाकार के समर्पण की गवाही देती है।

कथा का संदेश

इस कथा के माध्यम से अज्ञेय यह संदेश देते हैं कि सच्ची कला और साधना में कलाकार का पूर्ण समर्पण आवश्यक है। कला कोई बाहरी वस्तु नहीं है जिसे खरीदा या हथियाया जा सके। यह कलाकार के अस्तित्व का विस्तार है। गोपी का बलिदान यह दर्शाता है कि जब कलाकार अपने अहं को पूरी तरह से त्याग देता है और अपनी कला के साथ एकाकार हो जाता है, तभी वास्तविक कला का जन्म होता है।

यह कथा यह भी बताती है कि सत्ता और कला दो अलग क्षेत्र हैं। राजा के पास सारी भौतिक सुविधाएँ हैं, लेकिन वह उस आध्यात्मिक ऊँचाई को नहीं छू सकता जहाँ गोपी है। कला को सत्ता द्वारा नियंत्रित नहीं किया जा सकता। कला स्वतंत्र है और वह केवल उन्हीं के सामने प्रकट होती है जो इसके योग्य हैं।

2.1.4 प्रमुख प्रतीक

'असाध्य वीणा' में प्रयुक्त प्रतीक बहुस्तरीय अर्थों को व्यक्त करते हैं। इन प्रतीकों को समझने से कविता की गहराई का पता चलता है।

वीणा

वीणा इस कविता का केंद्रीय प्रतीक है। यह केवल एक वाद्य यंत्र नहीं है, बल्कि यह कई अर्थों को व्यक्त करती है। सबसे प्रत्यक्ष रूप से, वीणा कला का प्रतीक है। यह संगीत, सौंदर्य, और सृजनात्मकता का प्रतिनिधित्व करती है। लेकिन वीणा का अर्थ इससे भी गहरा है।

वीणा साधना का प्रतीक भी है। जिस प्रकार वीणा को बजाने के लिए वर्षों के अभ्यास और समर्पण की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार किसी भी क्षेत्र में महारत हासिल करने के लिए निरंतर साधना की आवश्यकता होती है। वीणा का असाध्य होना यह दर्शाता है कि श्रेष्ठ कला और ज्ञान को प्राप्त करना सरल नहीं है। इसके लिए कठोर तपस्या और पूर्ण समर्पण चाहिए।

भारतीय परंपरा में, वीणा देवी सरस्वती का वाद्य है, जो ज्ञान और कला की देवी हैं। इस प्रकार, वीणा ज्ञान और आध्यात्मिकता का भी प्रतीक बन जाती है। गोपी की वीणा के तारों का उसकी नसों से बना होना यह दर्शाता है कि कला और साधना कलाकार के जीवन से अविभाज्य हैं। कलाकार और उसकी कला एक हो जाते हैं।

वीणा का एक और अर्थ मनुष्य के शरीर का प्रतीक भी हो सकता है। जिस प्रकार वीणा के तारों से संगीत निकलता है, उसी प्रकार मनुष्य के शरीर की नसों और नाड़ियों से जीवन-ऊर्जा प्रवाहित होती है। योग और तंत्र परंपरा में शरीर को एक वाद्य यंत्र के रूप में देखा जाता है जिसे साधना द्वारा परिष्कृत किया जा सकता है। इस दृष्टि से, गोपी की वीणा उसके अपने शरीर और आत्मा का विस्तार है।

गोपी

गोपी इस कविता का नायक और सबसे महत्वपूर्ण प्रतीक है। गोपी केवल एक वीणावादक नहीं है, बल्कि वह उस आदर्श कलाकार का प्रतीक है जो अपनी कला के



छायावादोत्तर काव्य

लिए सब कुछ न्योछावर कर सकता है। गोपी का नाम भी सार्थक है। भारतीय संस्कृति में 'गोपी' शब्द उन स्त्रियों के लिए प्रयुक्त होता है जो कृष्ण के प्रति पूर्ण समर्पण भाव रखती थीं। उनका प्रेम निस्वार्थ और पूर्ण था। इसी प्रकार, इस कविता में गोपी का अपनी कला के प्रति समर्पण पूर्ण और निस्वार्थ है।

गोपी समर्पित साधक का प्रतीक है। वह केवल कला के लिए जीता है। उसके जीवन में कोई अन्य महत्वाकांक्षा नहीं है। वह धन, यश, या सत्ता की परवाह नहीं करता। उसका एकमात्र उद्देश्य अपनी कला में पूर्णता प्राप्त करना है। गोपी का यह समर्पण उसे एक आध्यात्मिक व्यक्तित्व बना देता है। वह भौतिक संसार से परे है।

गोपी का बलिदान यह दर्शाता है कि सच्ची साधना में त्याग अनिवार्य है। यह त्याग केवल बाहरी वस्तुओं का नहीं है, बल्कि अपने अहं, अपनी देह और अंततः अपने जीवन का भी है। गोपी के माध्यम से अज्ञेय यह संदेश देते हैं कि जब साधक पूर्ण रूप से अपनी साधना में विलीन हो जाता है, तो उसका जीवन और मृत्यु, दोनों ही अर्थपूर्ण हो जाते हैं।

गोपी के चरित्र में भारतीय संत परंपरा की झलक भी मिलती है। कबीर, मीरा, तुलसीदास जैसे संतों ने भी अपने जीवन को अपनी आराध्य साधना में समर्पित कर दिया था। गोपी भी इसी परंपरा का वाहक है, जहाँ साधना ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य बन जाती है।

राजा

राजा इस कविता में भौतिक सत्ता और सांसारिक शक्ति का प्रतीक है। वह उस व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है जो सोचता है कि धन और शक्ति से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। राजा के पास राज्य, धन, सैनिक, और सभी प्रकार की भौतिक सुविधाएँ हैं, लेकिन उसके पास वह आध्यात्मिक गहराई नहीं है जो गोपी के पास है।

राजा अहंकार का भी प्रतीक है। वह सोचता है कि वह जो चाहे, वह प्राप्त कर सकता है। जब वह गोपी की वीणा के बारे में सुनता है, तो वह उसे अपने लिए चाहता है। लेकिन वह यह नहीं समझ पाता कि कला और साधना को खरीदा या अधिकार में नहीं

लिया जा सकता। राजा की इच्छा उस भौतिकवादी मानसिकता को दर्शाती है जो हर चीज को एक वस्तु के रूप में देखती है जिसे स्वामित्व में लिया जा सकता है।

लेकिन राजा पूरी तरह से नकारात्मक चरित्र नहीं है। उसमें जिज्ञासा है, कला के प्रति आकर्षण है। जब गोपी अपना अंतिम प्रदर्शन करता है, तो राजा भी उससे प्रभावित होता है। वह गोपी के बलिदान को समझता है। इस प्रकार, राजा उस मानव मन का प्रतीक भी है जो भौतिकता में उलझा हुआ है, लेकिन आध्यात्मिकता की ओर आकर्षित भी होता है।

राजा और गोपी के बीच का संवाद वास्तव में भौतिक और आध्यात्मिक, बाहरी और आंतरिक, सत्ता और कला के बीच का संवाद है। यह द्वंद्व मानव जीवन का शाश्वत द्वंद्व है।

वीणा के तार

वीणा के तार जो गोपी की नसों से बने हैं, एक अत्यंत शक्तिशाली प्रतीक हैं। ये तार कलाकार और कला के बीच की अविभाज्यता को दर्शाते हैं। जब वीणा के तार गोपी के शरीर का हिस्सा हैं, तो यह दर्शाता है कि कला कलाकार के अस्तित्व से अलग नहीं है। कलाकार अपने जीवन-रस से, अपनी जीवन-ऊर्जा से कला का सृजन करता है।

ये तार त्याग और बलिदान के भी प्रतीक हैं। गोपी ने अपनी नसों को निकालकर वीणा के तार बनाए हैं, जो दर्शाता है कि उसने अपने शरीर की, अपने जीवन की परवाह किए बिना अपनी कला को पूर्णता प्रदान की है। यह प्रतीक यह भी बताता है कि महान कला का सृजन सरल नहीं है। इसके लिए कलाकार को अपनी सुख-सुविधा, और कभी-कभी अपने जीवन तक का त्याग करना पड़ता है।

तारों का एक और अर्थ यह भी है कि कला व्यक्तिगत है। प्रत्येक कलाकार की कला उसके अपने अनुभवों, उसकी अपनी पीड़ा और आनंद से निर्मित होती है। गोपी की वीणा के तार उसकी अपनी नसों से बने हैं, इसलिए उस वीणा से निकलने वाला संगीत भी विशिष्ट और अद्वितीय है। कोई दूसरा व्यक्ति उसी प्रकार का संगीत नहीं बना सकता।



छायावादोत्तर
काव्य

संगीत

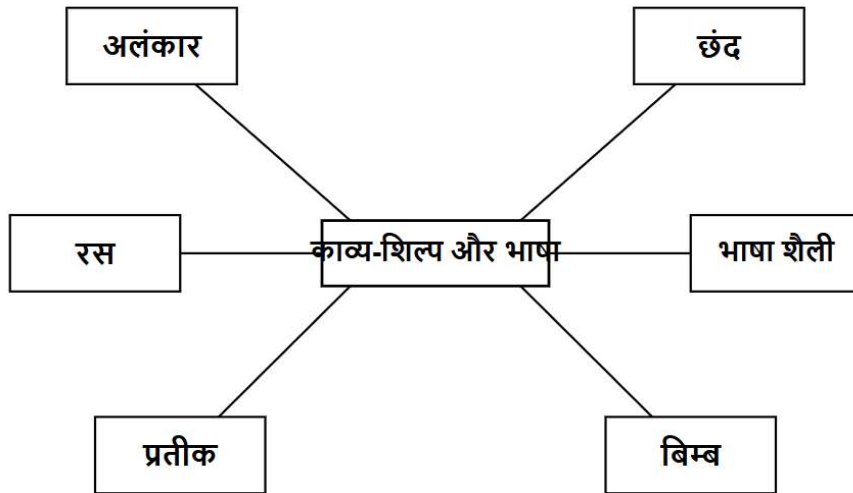
कविता में संगीत भी एक महत्वपूर्ण प्रतीक है। संगीत केवल ध्वनियों का संयोजन नहीं है, बल्कि यह आत्मा की अभिव्यक्ति है। जब गोपी वीणा बजाता है, तो जो संगीत निकलता है, वह इतना मधुर और हृदयस्पर्शी है कि सभी मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। यह संगीत दिव्य है, यह आध्यात्मिक है।

भारतीय दर्शन में, संगीत को नाद ब्रह्म कहा गया है। यह माना जाता है कि सृष्टि की उत्पत्ति एक दिव्य ध्वनि 'ओम' से हुई है। संगीत उस परम सत्य का, उस दिव्यता का प्रतीक है। गोपी का संगीत केवल कानों को सुनाई देने वाली ध्वनि नहीं है, बल्कि यह आत्मा को छूने वाला अनुभव है।

संगीत का यह प्रतीक यह भी दर्शाता है कि कला अमर है। गोपी का शरीर नश्वर है, वह मर जाता है, लेकिन उसका संगीत अमर हो जाता है। जो लोग उस संगीत को सुनते हैं, वे उसे जीवन भर नहीं भूल सकते। इस प्रकार, संगीत अमरत्व का भी प्रतीक है। कलाकार मर जाता है, लेकिन उसकी कला जीवित रहती है।

2.1.5 काव्य-शिल्प और भाषा

'असाध्य वीणा' की काव्य-शिल्प और भाषा अज्ञेय की काव्य-प्रतिभा का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस कविता में अज्ञेय ने कथा-तत्व, वर्णनात्मकता, संवाद, और गीतात्मकता का अद्भुत समन्वय किया है।



चित्र 2.2 काव्य-शिल्प और भाषा

कथा-शैली

'असाध्य वीणा' एक कथात्मक कविता है। इसमें एक स्पष्ट कथा है जो शुरू से अंत तक एक क्रम में आगे बढ़ती है। कथा-शैली का प्रयोग कविता को सुग्राह्य और रोचक बनाता है। पाठक कथा के साथ जुड़ता है और पात्रों के साथ सहानुभूति महसूस करता है। यह शैली गहन दार्शनिक विचारों को सरल और प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने में सहायक होती है।

अज्ञेय ने कथा को इस प्रकार बुना है कि प्रत्येक घटना अगली घटना की ओर स्वाभाविक रूप से ले जाती है। कथा में रहस्य और जिज्ञासा का तत्व है जो पाठक को बांधे रखता है। वीणा के असाध्य होने का रहस्य धीरे-धीरे खुलता है, जो कथा में नाटकीयता लाता है।

वर्णनात्मकता

कविता में वर्णनात्मक अंश भी हैं जो दृश्यों को जीवंत बना देते हैं। राजा के दरबार का वर्णन, गोपी की शारीरिक उपस्थिति, वीणा-वादन के दौरान के दृश्य, सभी इतने सजीव हैं कि पाठक स्वयं को उस परिवेश में महसूस करता है। अज्ञेय की वर्णनात्मक शैली सूक्ष्म है लेकिन प्रभावशाली है। वे अनावश्यक विवरणों में नहीं उलझते, बल्कि केवल उन्हीं तत्वों का वर्णन करते हैं जो कथा और भाव के लिए आवश्यक हैं।



छायावादोत्तर काव्य

संवाद

राजा और गोपी के बीच के संवाद कविता के महत्वपूर्ण अंश हैं। ये संवाद न केवल कथा को आगे बढ़ाते हैं, बल्कि दोनों पात्रों के व्यक्तित्व और विचारधारा को भी प्रकट करते हैं। राजा के संवादों में जिज्ञासा, आकांक्षा और कहीं-कहीं अहंकार भी झलकता है। गोपी के संवाद शांत, गंभीर और दार्शनिक हैं। उनमें एक आध्यात्मिक गहराई है।

संवादों की भाषा सरल और स्वाभाविक है। वे जटिल नहीं हैं, फिर भी गहरे अर्थ रखते हैं। अज्ञेय ने संवादों के माध्यम से बहुत कुछ कहा है जो सीधे वर्णन से संभव नहीं होता।

बिंब-विधान

'असाध्य वीणा' में बिंब-विधान अत्यंत प्रभावशाली है। अज्ञेय ने ऐसे बिंब रचे हैं जो मन पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं। वीणा के तारों पर गोपी की उंगलियों का स्पर्श, संगीत की लहरें जो दरबार में फैलती हैं, गोपी का मुरझाता हुआ शरीर, और उसके चेहरे पर शांति का भाव - ये सभी बिंब पाठक के मानस-पटल पर अंकित हो जाते हैं।

अज्ञेय के बिंब केवल दृश्यात्मक नहीं हैं, बल्कि वे श्रव्य और स्पर्श-बिंब भी हैं। संगीत का वर्णन इतना जीवंत है कि पाठक उसे सुन सकता है। वीणा के तारों का कंपन, गोपी की उंगलियों का स्पर्श, ये सभी स्पर्श-संवेदना को जागृत करते हैं।

प्रतीक-योजना

जैसा कि पहले चर्चा की गई है, कविता में प्रतीकों का व्यापक प्रयोग है। अज्ञेय की प्रतीक-योजना बहुस्तरीय है। एक प्रतीक कई अर्थ रखता है और विभिन्न संदर्भों में विभिन्न व्याख्याओं को जन्म देता है। यह प्रतीक-योजना कविता को समृद्ध और गहन बनाती है।

भाषा

अज्ञेय की भाषा इस कविता में संस्कृतनिष्ठ लेकिन सुबोध है। उन्होंने तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है, लेकिन वे इतने स्वाभाविक और प्रवाहपूर्ण हैं कि पाठक को किसी

प्रकार की कठिनाई नहीं होती। भाषा में लालित्य और माधुर्य है जो कविता के विषय के अनुकूल है।

अज्ञेय ने शब्दों का चयन बहुत सावधानी से किया है। प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर सटीक बैठता है। भाषा में कोई अतिरेक नहीं है। यह संयम अज्ञेय की भाषिक कुशलता का प्रमाण है।

छंद और लय

'असाध्य वीणा' मुक्त छंद में लिखी गई है, लेकिन इसमें एक आंतरिक लय है जो कविता को संगीतमयता प्रदान करती है। यह लय कहीं तीव्र है, कहीं मंद, कहीं विषादमय है तो कहीं उत्साहपूर्ण। यह लय कथा के भावों के अनुरूप बदलती रहती है और कविता को एक संगीतात्मक गुणवत्ता प्रदान करती है।

2.1.6 दार्शनिक और सौंदर्यात्मक आयाम

'असाध्य वीणा' केवल एक कथात्मक कविता नहीं है, बल्कि इसमें गहरे दार्शनिक और सौंदर्यात्मक विचार निहित हैं। इन विचारों को समझने से कविता का वास्तविक महत्व प्रकट होता है।

कला का स्वरूप

कविता में कला के स्वरूप पर गहन चिंतन है। अज्ञेय यह प्रश्न उठाते हैं कि कला क्या है और कलाकार की क्या भूमिका है। कविता के माध्यम से वे यह स्थापित करते हैं कि कला केवल तकनीक या कौशल नहीं है। कला आत्मा की अभिव्यक्ति है। यह कलाकार के अस्तित्व का विस्तार है।

कला को किसी से सीखा नहीं जा सकता, इसे अनुभव किया जाता है। राजा सोचता है कि वह गोपी से वीणा बजाना सीख सकता है, लेकिन गोपी जानता है कि कला कोई बाहरी ज्ञान नहीं है जिसे हस्तांतरित किया जा सके। कला भीतर से उपजती है, यह साधना और समर्पण से प्राप्त होती है।



छायावादोत्तर
काव्य

कविता यह भी बताती है कि महान कला सामान्य नहीं होती। असाध्य वीणा असाधारण है क्योंकि उसके पीछे असाधारण समर्पण है। साधारण प्रयास से साधारण परिणाम मिलते हैं, लेकिन असाधारण उपलब्धि के लिए असाधारण समर्पण आवश्यक है।

समर्पण और त्याग

'असाध्य वीणा' समर्पण और त्याग की महागाथा है। गोपी का चरित्र यह दर्शाता है कि सच्ची साधना में पूर्ण समर्पण आवश्यक है। यह समर्पण केवल समय और प्रयास का नहीं है, बल्कि अपने संपूर्ण अस्तित्व का है। गोपी ने अपनी नसों को वीणा के तार बनाया, जो प्रतीकात्मक रूप से दर्शाता है कि उसने अपना सब कुछ अपनी कला को समर्पित कर दिया।

यह त्याग स्वेच्छा से किया गया है। गोपी को किसी ने बाध्य नहीं किया। वह जानता था कि वीणा बजाने का अर्थ अपने जीवन को खतरे में डालना है, फिर भी उसने यह चुना। यह स्वैच्छिक त्याग ही उसे महान बनाता है। यह त्याग प्रेम से प्रेरित है, कर्तव्य से या भय से नहीं।

भारतीय दर्शन में त्याग को सर्वोच्च मूल्य माना गया है। गीता में निष्काम कर्म की अवधारणा है - बिना फल की इच्छा के कर्म करना। गोपी का त्याग भी इसी प्रकार का है। वह कोई पुरस्कार या प्रशंसा की अपेक्षा नहीं रखता। उसका एकमात्र उद्देश्य अपनी कला में पूर्णता प्राप्त करना है।

मृत्यु और अमरत्व

कविता में मृत्यु और अमरत्व का भी गहन दर्शन है। गोपी की मृत्यु दुखद प्रतीत हो सकती है, लेकिन वास्तव में यह एक उच्च अवस्था की प्राप्ति है। उसकी मृत्यु उसके जीवन के उद्देश्य की पूर्णता है। वह अपने जीवन-लक्ष्य को प्राप्त करके मरा है, इसलिए उसके चेहरे पर संतोष और शांति है।

गोपी की मृत्यु यह भी दर्शाती है कि शरीर नश्वर है लेकिन कला अमर है। गोपी का शरीर मर जाता है, लेकिन उसका संगीत, उसकी कला, और उसका समर्पण अमर हो

जाते हैं। जो लोग उसके अंतिम प्रदर्शन को देखते और सुनते हैं, वे उसे कभी नहीं भूल सकते। इस प्रकार, गोपी अपनी कला के माध्यम से अमरत्व प्राप्त करता है।

यह दर्शन भारतीय अध्यात्म की मूल अवधारणा से मेल खाता है कि आत्मा अमर है और शरीर केवल एक वस्त्र है जिसे आत्मा बदल लेती है। गोपी की कला उसकी आत्मा का प्रकटीकरण है, इसलिए वह अमर है।

भौतिकता और आध्यात्मिकता

राजा और गोपी के बीच का संघर्ष वास्तव में भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच का संघर्ष है। राजा भौतिक संसार का प्रतिनिधि है जहाँ सब कुछ स्वामित्व, नियंत्रण और शक्ति के आधार पर तय होता है। गोपी आध्यात्मिक संसार का प्रतिनिधि है जहाँ समर्पण, त्याग और प्रेम महत्वपूर्ण हैं।

कविता दर्शाती है कि भौतिक शक्ति की अपनी सीमाएँ हैं। राजा के पास सब कुछ है, लेकिन वह गोपी की वीणा को नहीं बजा सकता। कला, सौंदर्य, और आध्यात्मिकता को धन और शक्ति से नहीं खरीदा जा सकता। इन्हें केवल समर्पण और साधना से प्राप्त किया जा सकता है।

यह दर्शन आधुनिक समाज के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक है जहाँ भौतिकवाद हावी है और हर चीज को उसके बाजार-मूल्य से आंका जाता है। 'असाध्य वीणा' हमें याद दिलाती है कि जीवन में कुछ मूल्य ऐसे हैं जो भौतिक नहीं हैं और जो किसी कीमत पर नहीं मिल सकते।

सौंदर्य का दर्शन

कविता में सौंदर्य के दर्शन पर भी विचार है। गोपी का संगीत अत्यंत सुंदर है, लेकिन यह सौंदर्य किस चीज से उत्पन्न होता है? क्या यह केवल तकनीकी कुशलता से या वीणा की गुणवत्ता से? कविता बताती है कि नहीं। यह सौंदर्य गोपी के समर्पण से, उसकी साधना से, और उसके पूर्ण आत्म-विसर्जन से उत्पन्न होता है।



छायावादोत्तर
काव्य

सौंदर्य केवल बाहरी नहीं है, यह आंतरिक भी है। गोपी का संगीत इसलिए सुंदर है क्योंकि उसमें उसकी आत्मा का स्पंदन है। यह मशीनी या नकली नहीं है, बल्कि प्राणवान और सच्चा है।

भारतीय सौंदर्यशास्त्र में 'रस' की अवधारणा है - वह आनंद जो कला के अनुभव से प्राप्त होता है। गोपी का संगीत रस से परिपूर्ण है क्योंकि वह केवल कानों को नहीं, बल्कि आत्मा को छूता है। यह सौंदर्य अलौकिक है, दिव्य है।

2.1.7 समकालीन प्रासंगिकता

'असाध्य वीणा' की रचना 1961 में हुई थी, लेकिन यह आज भी उतनी ही प्रासंगिक है। इस कविता में जो प्रश्न उठाए गए हैं और जो मूल्य प्रस्तुत किए गए हैं, वे शाश्वत हैं।

कला और व्यावसायीकरण

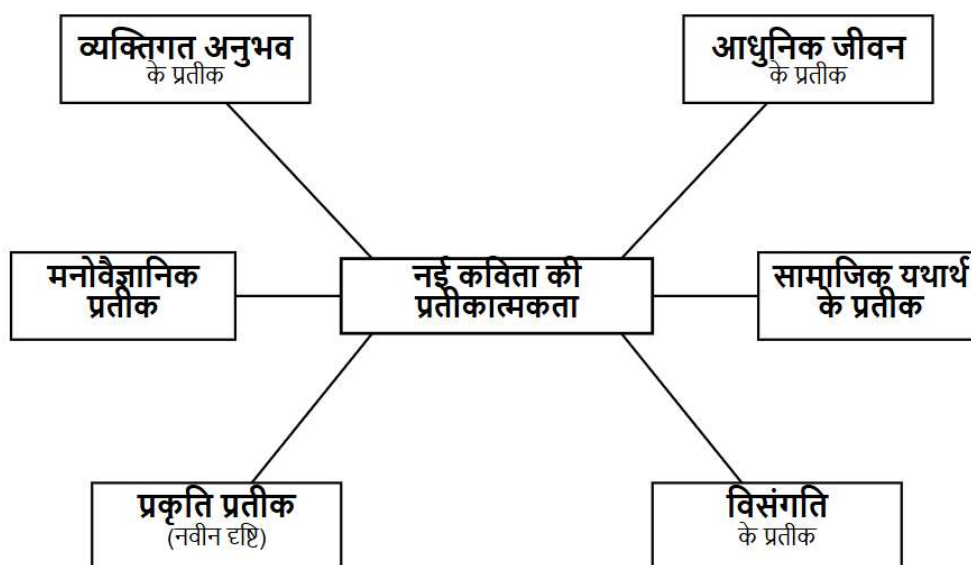
आज के युग में कला का व्यावसायीकरण हो गया है। कला को एक उत्पाद के रूप में देखा जाता है जिसे बाजार में बेचा जा सकता है। कलाकारों पर दबाव है कि वे ऐसी कला का सृजन करें जो बिक सके, जो लोकप्रिय हो। इस परिदृश्य में 'असाध्य वीणा' हमें याद दिलाती है कि कला का मूल उद्देश्य व्यावसायिक सफलता नहीं है।

इकाई 2.2: नई कविता की प्रतीकात्मकता

2.2.1 नई कविता की प्रतीकात्मकता: अज्ञेय और 'असाध्य वीणा' का विस्तृत अध्ययन

नई कविता आंदोलन और प्रतीकात्मकता का उदय

हिंदी साहित्य के इतिहास में नई कविता आंदोलन एक महत्वपूर्ण मोड़ है जिसने कविता को एक नया रूप, नई भाषा और नई दृष्टि दी। सन् 1950 के दशक में जब भारत स्वतंत्र हो चुका था और समाज नए सपनों और नई चुनौतियों के बीच अपना रास्ता तलाश रहा था, तब हिंदी कविता भी एक नए दौर में प्रवेश कर रही थी। छायावाद की रोमानी भावुकता और प्रगतिवाद की सीधी वैचारिक अभिव्यक्ति से आगे बढ़कर, कवियों ने एक ऐसी काव्य-भाषा विकसित करने का प्रयास किया जो अधिक सूक्ष्म, अधिक गहन और अधिक बौद्धिक हो। इस नई काव्य-भाषा का सबसे महत्वपूर्ण तत्व था - प्रतीकात्मकता। प्रतीक केवल अलंकार या सजावट नहीं थे, बल्कि वे कविता की आत्मा बन गए। प्रतीकों के माध्यम से कवि उन अनुभवों और अनुभूतियों को व्यक्त कर सकते थे जो सीधी भाषा में अव्यक्त रह जाती थीं।



चित्र 2.3 नई कविता की प्रतीकात्मकता

नई कविता के कवियों ने यह समझा कि जीवन के कुछ अनुभव इतने जटिल, इतने सूक्ष्म और इतने व्यक्तिगत होते हैं कि उन्हें सामान्य शब्दों में पकड़ना असंभव है।



छायावादोत्तर काव्य

उदाहरण के लिए, एकाकीपन की अनुभूति को हम कैसे व्यक्त करें? हम कह सकते हैं कि हमें अकेलापन महसूस हो रहा है, लेकिन यह सीधा कथन उस अनुभूति की गहराई को नहीं छू सकता। लेकिन यदि कवि एक सूनी गली में अकेले खड़े दीपक का प्रतीक प्रयोग करे, या फिर समुद्र के किनारे अकेली चट्टान का बिंब रचे, तो एकाकीपन की वह अनुभूति बहुत अधिक संवेदनशील और प्रभावशाली तरीके से व्यक्त हो जाती है। यही प्रतीकात्मकता की शक्ति है - यह अमूर्त भावों को मूर्त रूप देती है, अदृश्य को दृश्य बनाती है, और कहे हुए से अधिक अनकहे को व्यक्त करती है।

नई कविता में प्रतीकात्मकता का विकास पश्चिमी साहित्य में हुए प्रतीकवाद आंदोलन से प्रभावित था। फ्रांसीसी कवियों जैसे बोदलेयर, वेर्लेन और रिम्बो ने जिस तरह प्रतीकों का प्रयोग किया था, उसने विश्व-साहित्य को प्रभावित किया। भारतीय कवियों ने इस पश्चिमी प्रभाव को अपनी भारतीय संवेदना और परंपरा के साथ मिलाकर एक नया संश्लेषण किया। वे संस्कृत काव्यशास्त्र की ध्वनि और व्यंजना की अवधारणा से भी परिचित थे, जो यह मानती है कि कविता का सबसे गहरा अर्थ वह है जो सीधे नहीं कहा गया, बल्कि संकेतित किया गया है। इस प्रकार नई कविता की प्रतीकात्मकता भारतीय और पश्चिमी दोनों परंपराओं का सुंदर मिश्रण बनी।

अज्ञेय: नई कविता के प्रतिनिधि कवि

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' नई कविता आंदोलन के सबसे महत्वपूर्ण और प्रभावशाली कवि थे। वे केवल एक कवि ही नहीं थे, बल्कि एक दार्शनिक, विचारक, कहानीकार, उपन्यासकार और संपादक भी थे। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था और उनका रचना-संसार अत्यंत विस्तृत। अज्ञेय ने 'तार सप्तक' नामक काव्य-संकलन का संपादन किया जिसने नई कविता आंदोलन को एक ठोस आकार दिया। इस संकलन में सात कवि थे जो पुरानी काव्य-परंपराओं से हटकर कुछ नया करने का साहस रखते थे। अज्ञेय इन सातों में सबसे वरिष्ठ और सबसे परिपक्व थे, इसलिए वे स्वाभाविक रूप से इस आंदोलन के नेता बन गए।

अज्ञेय का जीवन बहुत विविधतापूर्ण था। वे स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के कारण जेल भी गए, उन्होंने अलग-अलग भाषाओं और संस्कृतियों का गहन अध्ययन किया, और देश-विदेश में व्यापक यात्राएँ कीं। इन अनुभवों ने उनकी काव्य-दृष्टि को समृद्ध और

विस्तृत बनाया। उनकी कविताओं में एक गहन दार्शनिक चिंतन है जो जीवन के मूलभूत प्रश्नों से टकराता है। वे अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित थे और मानते थे कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने अस्तित्व का अर्थ स्वयं खोजना होता है। यह दार्शनिक गहराई उनकी कविताओं को एक विशेष आयाम देती है। उनकी कविताएँ केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं हैं, बल्कि वे विचार की कविताएँ हैं, चिंतन की कविताएँ हैं।

अज्ञेय की काव्य-भाषा अत्यंत संयत और अनुशासित है। वे शब्दों का बहुत सावधानी से चुनाव करते हैं और हर शब्द को उसके पूरे अर्थ-भार के साथ प्रयोग करते हैं। उनकी कविताओं में कोई अतिरिक्त शब्द नहीं होता, कोई भावुकता की अतिशयता नहीं होती। वे भावनाओं को प्रकट नहीं करते, बल्कि संकेतित करते हैं। उनकी इस संयत शैली में प्रतीकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रतीक उन्हें वह साधन देते हैं जिससे वे बहुत कुछ कहे बिना बहुत कुछ कह सकें। एक अच्छा प्रतीक कई स्तरों पर अर्थ देता है - एक सतही अर्थ जो तुरंत समझ में आ जाता है, और कई गहरे अर्थ जो धीरे-धीरे, विचार करने पर खुलते हैं। अज्ञेय के प्रतीक इसी तरह के बहुस्तरीय प्रतीक हैं।

अज्ञेय की प्रमुख काव्य-कृतियों में 'भग्नदूत', 'चिंता', 'इत्यलम्', 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी', 'कितनी नावों में कितनी बार' और 'असाध्य वीणा' शामिल हैं। इन सभी कृतियों में प्रतीकात्मकता एक प्रमुख विशेषता है, लेकिन 'असाध्य वीणा' में यह सबसे परिपक्व और सबसे प्रभावशाली रूप में प्रकट हुई है। यह लंबी कविता प्रतीकात्मकता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है जहाँ पूरी कथा ही एक विस्तृत रूपक बन जाती है। इस कविता को समझने के लिए हमें प्रतीकात्मकता की प्रकृति और उसके विभिन्न आयामों को गहराई से समझना होगा।

प्रतीकात्मकता: अवधारणा और स्वरूप

प्रतीकात्मकता को समझने के लिए पहले हमें यह जानना चाहिए कि प्रतीक क्या है। सरल शब्दों में, प्रतीक एक ऐसी वस्तु, व्यक्ति या स्थिति है जो अपने शाब्दिक अर्थ से अधिक किसी व्यापक और गहरे अर्थ को इंगित करती है। उदाहरण के लिए, दीपक केवल एक भौतिक वस्तु है जो प्रकाश देती है, लेकिन प्रतीक के रूप में यह ज्ञान का, आशा का, जीवन का और चेतना का प्रतिनिधित्व कर सकती है। इसी तरह, अंधकार केवल प्रकाश की अनुपस्थिति नहीं है, बल्कि यह अज्ञान का, निराशा का, मृत्यु का



छायावादोत्तर
काव्य

और अवचेतन का प्रतीक बन सकता है। प्रतीक में यह क्षमता होती है कि वह एक साथ कई स्तरों पर संवाद करे और हर पाठक को अपने अनुभव और समझ के अनुसार अर्थ ग्रहण करने की स्वतंत्रता दे।

प्रतीक और उपमा या रूपक में महत्वपूर्ण अंतर है। उपमा में हम स्पष्ट रूप से कहते हैं कि एक वस्तु दूसरी वस्तु के समान है - जैसे "उसका मुख चंद्रमा के समान सुंदर है"। रूपक में हम एक वस्तु को दूसरी वस्तु कह देते हैं - जैसे "वह चंद्रमुखी है"। लेकिन प्रतीक में यह संबंध इतना प्रत्यक्ष नहीं होता। प्रतीक संकेत करता है, सीधे नहीं कहता। प्रतीक में एक रहस्यात्मकता होती है, एक अस्पष्टता होती है जो पाठक को सोचने और अर्थ खोजने के लिए प्रेरित करती है। यह अस्पष्टता कोई कमजोरी नहीं है, बल्कि प्रतीक की शक्ति है। क्योंकि जीवन के कुछ अनुभव ऐसे होते हैं जो स्पष्ट और निश्चित नहीं होते, बल्कि अस्पष्ट और बहुआयामी होते हैं। ऐसे अनुभवों को व्यक्त करने के लिए प्रतीक सबसे उपयुक्त माध्यम है।

नई कविता में प्रतीकात्मकता कई कारणों से महत्वपूर्ण हो गई। पहला कारण था - आधुनिक जीवन की जटिलता। बीसवीं सदी में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास ने, विश्वयुद्धों ने, शहरीकरण ने, और सामाजिक मूल्यों के टूटने ने जीवन को बहुत जटिल बना दिया था। पुराने सरल सत्य अब काम नहीं करते थे। हर चीज सापेक्ष हो गई थी, हर चीज में संदेह था। ऐसे जटिल समय में सरल और सीधी काव्य-भाषा अपर्याप्त थी। प्रतीकात्मकता ने कवियों को एक ऐसी भाषा दी जो जीवन की इस जटिलता को समेट सके। दूसरा कारण था - बौद्धिक और कलात्मक परिपक्वता की खोज। नई कविता के कवि नहीं चाहते थे कि कविता केवल भावनाओं का उच्छ्वास हो। वे चाहते थे कि कविता एक बौद्धिक कला हो, जो पाठक को सोचने पर मजबूर करे, जो आसानी से समझ में न आए, जिसे बार-बार पढ़ना पड़े। प्रतीकात्मकता ने कविता को यह बौद्धिक गहराई दी।

2.2.2 प्रतीकात्मकता की विशेषताएँ: बहुस्तरीयता और गहनता

नई कविता की प्रतीकात्मकता की पहली और सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है - बहुस्तरीय अर्थ। एक अच्छा प्रतीक एक ही अर्थ तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह कई अर्थों को समेटे रहता है। जब हम पहली बार किसी प्रतीक को पढ़ते हैं, तो हमें

एक सतही अर्थ मिलता है। लेकिन जब हम दोबारा पढ़ते हैं, ध्यान से विचार करते हैं, तो दूसरा अर्थ-स्तर खुलता है। और फिर तीसरा, और फिर चौथा। एक समृद्ध प्रतीक अनंत अर्थों की संभावना रखता है। उदाहरण के लिए, अज्ञेय की कविता में नदी का प्रतीक आता है। सतह पर यह केवल एक भौगोलिक नदी है, लेकिन गहरे स्तर पर यह समय का प्रवाह है, जीवन की गति है, परिवर्तन का प्रतीक है, और और भी गहरे स्तर पर यह चेतना के प्रवाह का प्रतीक हो सकती है। यह बहुस्तरीयता प्रतीक को समृद्ध और जीवंत बनाती है।

दूसरी विशेषता है - सूक्ष्म और गहन संकेत। नई कविता के प्रतीक स्थूल और प्रत्यक्ष नहीं होते। वे बहुत सूक्ष्म और संकेतात्मक होते हैं। कवि सीधे नहीं बताता कि यह प्रतीक किस बात का प्रतीक है। पाठक को स्वयं खोजना पड़ता है। यह खोज की प्रक्रिया ही कविता-पाठ के आनंद का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। जब पाठक स्वयं प्रतीक के अर्थ को खोजता है, तो वह कविता के साथ एक गहरा संबंध स्थापित कर लेता है। वह कविता का सह-रचयिता बन जाता है। यह सक्रिय पाठन है जिसमें पाठक केवल ग्रहण नहीं करता, बल्कि सृजन में भागीदार बनता है। अज्ञेय के प्रतीक इसी तरह के सूक्ष्म संकेत देने वाले प्रतीक हैं। वे स्पष्ट नहीं हैं, लेकिन अस्पष्ट भी नहीं। वे एक संतुलन बनाए रखते हैं जहाँ पाठक को दिशा मिलती है लेकिन पूरा रास्ता नहीं दिखाया जाता।

तीसरी महत्वपूर्ण विशेषता है - दार्शनिक गहराई। नई कविता के प्रतीक केवल सजावटी तत्व नहीं हैं। वे गहन दार्शनिक अर्थ को समेटे रहते हैं। वे जीवन के मूलभूत प्रश्नों से जुड़े होते हैं - अस्तित्व का प्रश्न, अर्थ का प्रश्न, सत्य का प्रश्न, मृत्यु का प्रश्न, प्रेम का प्रश्न। ये वे प्रश्न हैं जिनसे मनुष्य सदियों से जूझ रहा है और जिनका कोई अंतिम उत्तर नहीं है। प्रतीक इन प्रश्नों को उठाने और उन पर विचार करने का एक माध्यम बनते हैं। वे उत्तर नहीं देते, बल्कि सोचने के लिए प्रेरित करते हैं। उदाहरण के लिए, मृत्यु का प्रतीक सीधे मृत्यु की बात नहीं करता, बल्कि वह अस्तित्व की क्षणभंगुरता के बारे में सोचने को प्रेरित करता है, जीवन के अर्थ के बारे में प्रश्न उठाता है।

नई कविता के प्रतीक व्यक्तिगत होते हैं लेकिन साथ ही सार्वभौमिक भी। वे कवि के व्यक्तिगत अनुभव से उपजते हैं, इसलिए उनमें एक प्रामाणिकता होती है, एक



छायावादोत्तर
काव्य

जीवंतता होती है। लेकिन वे केवल व्यक्तिगत तक सीमित नहीं रहते। वे ऐसे अनुभवों को व्यक्त करते हैं जो मानवीय अनुभव के मूल में हैं, इसलिए हर पाठक उनसे जुड़ सकता है। एक अच्छे प्रतीक में यह द्वैत होता है - वह व्यक्तिगत होते हुए भी सार्वभौमिक होता है, विशिष्ट होते हुए भी सामान्य होता है। यही उसकी शक्ति है। पाठक उसमें अपनी निजी अनुभूतियों को देख सकता है, लेकिन साथ ही वह उसके माध्यम से मानव-अनुभव की व्यापकता को भी छू सकता है।

2.2.3 'असाध्य वीणा': एक प्रतीकात्मक काव्य-कथा का परिचय

'असाध्य वीणा' अज्ञेय की एक लंबी कविता है जो पूरी तरह से प्रतीकात्मक है। यह एक कथा कविता है जिसमें एक संगीतकार गोपी और उसकी वीणा की कहानी कही गई है। सतह पर यह एक सरल कथा है - एक कलाकार अपनी कला के प्रति इतना समर्पित है कि वह अपना सब कुछ उसके लिए त्याग देता है। लेकिन इस सरल कथा के भीतर कई गहरे अर्थ-स्तर छिपे हुए हैं। पूरी कविता एक विस्तृत रूपक है जहाँ हर पात्र, हर घटना, और हर वस्तु प्रतीकात्मक अर्थ रखती है। यह कविता कला और कलाकार के संबंध के बारे में है, सृजन की प्रक्रिया के बारे में है, पूर्णता की खोज के बारे में है, और अंततः मनुष्य की नियति के बारे में है।

कविता की कथा कुछ इस प्रकार है - गोपी एक महान वीणा-वादक है। उसकी वीणा असाधारण है और उसका संगीत अद्भुत है। लेकिन गोपी संतुष्ट नहीं है। वह पूर्ण संगीत की खोज में है, वह उस संगीत को पाना चाहता है जो अभी तक नहीं बजाया गया, जो केवल उसकी कल्पना में है। इस खोज में वह सब कुछ छोड़ देता है - अपना घर, अपना परिवार, अपनी सुख-सुविधाएँ। वह पहाड़ों में चला जाता है, एकांत में रहता है, और लगातार अपनी वीणा पर उस पूर्ण स्वर को खोजता रहता है। लेकिन जितना वह खोजता है, उतना ही वह स्वर दूर होता जाता है। अंत में, थक-हारकर, वह समझ जाता है कि पूर्णता अप्राप्य है। लेकिन यह समझ ही उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। यह कथा सरल लगती है, लेकिन इसके प्रतीकात्मक अर्थ बहुत गहरे और जटिल हैं।

कविता की भाषा अत्यंत संयत और काव्यात्मक है। अज्ञेय ने शब्दों का बहुत सावधानीपूर्वक चुनाव किया है। हर शब्द अपने अर्थ के साथ-साथ अपनी ध्वनि के लिए भी चुना गया है। कविता में एक संगीतात्मकता है जो उसके विषय - संगीत - के साथ

पूरी तरह मेल खाती है। वाक्य-संरचना सरल है लेकिन प्रभावशाली। छोटे-छोटे वाक्यों में गहरी बातें कही गई हैं। कविता में प्रकृति के बिंब बहुत सुंदर हैं - पहाड़, नदियाँ, जंगल, आकाश, तारे - ये सब प्रतीकात्मक अर्थ रखते हुए भी अपने आप में सुंदर हैं। अज्ञेय ने कविता को इस तरह रचा है कि वह एक साथ कई स्तरों पर काम करती है - ध्वनि के स्तर पर, बिंब के स्तर पर, कथा के स्तर पर, और प्रतीक के स्तर पर।

'असाध्य वीणा' शीर्षक ही बहुत महत्वपूर्ण है। 'असाध्य' शब्द का अर्थ है - जिसे साधा न जा सके, जो वश में न हो, जो नियंत्रण से बाहर हो। यह शीर्षक पहले से ही संकेत देता है कि कविता किसी ऐसी चीज के बारे में है जो मनुष्य के नियंत्रण से परे है। वीणा केवल एक वाद्य यंत्र नहीं है, बल्कि यह कला का प्रतीक है, सृजन का प्रतीक है, और व्यापक अर्थ में जीवन का भी प्रतीक है। जीवन भी तो असाध्य है - हम उसे पूरी तरह से नियंत्रित नहीं कर सकते, हम नहीं जानते कि अगले पल क्या होगा, हम अपनी सभी योजनाएँ बनाते हैं लेकिन जीवन अपनी मर्जी से चलता है। इस तरह शीर्षक में ही कविता का केंद्रीय विषय छिपा हुआ है।

वीणा का प्रतीकार्थ: कला, सृजन और पूर्णता की खोज

वीणा इस कविता का केंद्रीय प्रतीक है और इसके कई अर्थ-स्तर हैं। पहले और सबसे स्पष्ट स्तर पर, वीणा कला का प्रतीक है। गोपी एक कलाकार है और वीणा उसकी कला का माध्यम है। लेकिन यह कोई भी कला हो सकती है - संगीत, काव्य, चित्रकला, मूर्तिकला, या कोई अन्य सृजनात्मक कार्य। वीणा उस माध्यम का प्रतिनिधित्व करती है जिसके द्वारा कलाकार अपनी अभिव्यक्ति करता है। हर कलाकार की अपनी वीणा होती है - कवि के लिए भाषा उसकी वीणा है, चित्रकार के लिए रंग और कैनवास उसकी वीणा है। यह वीणा केवल एक यंत्र नहीं है, बल्कि कलाकार के व्यक्तित्व का विस्तार है। कलाकार और उसकी कला के माध्यम के बीच एक गहरा, अटूट संबंध होता है।

दूसरे स्तर पर, वीणा सृजन की प्रक्रिया का प्रतीक है। जब गोपी वीणा बजाता है, तो वह केवल पूर्व-निर्धारित धुनों को दोहरा नहीं रहा होता, बल्कि वह कुछ नया सृजित कर रहा होता है। हर बार वीणा से नया संगीत निकलता है। यह सृजन की प्रकृति है - यह कभी स्थिर नहीं है, कभी दोहराव नहीं है। हर सृजनात्मक क्षण एक नया क्षण है।



छायावादोत्तर
काव्य

वीणा इस निरंतर सृजन का प्रतीक बनती है। लेकिन सृजन आसान नहीं है। वीणा को साधना पड़ता है, उसके तारों को मिलाना पड़ता है, लगातार अभ्यास करना पड़ता है। इसी तरह, कोई भी सृजनात्मक कार्य कठिन तपस्या माँगता है। बिना साधना के, बिना समर्पण के, महान कला संभव नहीं है। वीणा यह भी दिखाती है कि सृजन में कितनी कठिनाइयाँ हैं।

तीसरे और सबसे गहरे स्तर पर, वीणा पूर्णता की खोज का प्रतीक है। गोपी संतुष्ट नहीं है अपने वर्तमान संगीत से। वह जानता है कि कहीं एक ऐसा संगीत है जो पूर्ण है, जो परम है। वह उस संगीत को पाना चाहता है। यह केवल संगीत की बात नहीं है, यह मनुष्य की उस शाश्वत खोज की बात है जो उसे सदा पूर्णता की ओर ले जाती है। मनुष्य कभी संतुष्ट नहीं होता। जो उसके पास है, वह अपूर्ण लगता है। वह सदा कुछ और बेहतर की तलाश में रहता है। यह विडंबना है कि यही असंतोष मनुष्य को महान बनाता है, लेकिन यही उसे दुखी भी करता है। वीणा इस द्वंद्व का प्रतीक है। गोपी की वीणा असाध्य है क्योंकि पूर्णता असाध्य है। वह जितना उसके करीब जाता है, उतना ही वह दूर होती जाती है। यह एक अनंत यात्रा है जिसका कोई अंत नहीं है।

वीणा स्त्री का भी प्रतीक हो सकती है। भारतीय परंपरा में वीणा को सरस्वती के हाथ में दिखाया जाता है, और सरस्वती ज्ञान और कला की देवी हैं। इस तरह वीणा में एक स्त्रैण गुण है। गोपी और वीणा का संबंध कलाकार और उसकी कला का संबंध होते हुए भी, एक प्रेमी और उसकी प्रेमिका का संबंध भी है। गोपी वीणा से प्रेम करता है उसी तरह जैसे एक प्रेमी अपनी प्रेमिका से करता है। वह उसकी देखभाल करता है, उसे संभालता है, उससे बातें करता है। लेकिन वीणा रहस्यमय है, अपने रहस्यों को आसानी से नहीं खोलती। यह प्रेम-संबंध भी एक प्रतीक है - कला के साथ कलाकार का संबंध प्रेम-संबंध की तरह ही जटिल, गहरा और रहस्यमय होता है। वीणा के इस बहुस्तरीय प्रतीकार्थ से कविता की गहराई कई गुना बढ़ जाती है।

गोपी का प्रतीकार्थ: कलाकार, साधक और मनुष्य

गोपी केवल एक पात्र नहीं है, बल्कि वह एक प्रतीक है - कलाकार का प्रतीक, साधक का प्रतीक, और व्यापक अर्थ में हर उस मनुष्य का प्रतीक जो किसी आदर्श की खोज में है। गोपी का नाम भी महत्वपूर्ण है। 'गोपी' शब्द हमें कृष्ण की गोपियों की याद

दिलाता है, जो अपने प्रेम और समर्पण के लिए प्रसिद्ध हैं। कृष्ण की गोपियाँ भौतिक सुख-सुविधाओं को त्यागकर कृष्ण के प्रेम में लीन रहती थीं। ठीक उसी तरह, अज्ञेय का गोपी भी अपनी कला के प्रति पूर्ण समर्पित है। वह सब कुछ त्याग देता है - अपना घर, परिवार, सामाजिक प्रतिष्ठा - केवल अपनी कला के लिए। यह समर्पण एक भक्त के समर्पण की तरह है। गोपी अपनी कला का भक्त है।

गोपी असंतुष्ट कलाकार का प्रतीक है। वह जानता है कि उसका वर्तमान संगीत अच्छा है, लोग उसकी प्रशंसा करते हैं, लेकिन वह स्वयं संतुष्ट नहीं है। वह जानता है कि कहीं एक ऐसा संगीत है जो उससे भी श्रेष्ठ है, जो परम है। यह असंतोष ही सच्चे कलाकार की पहचान है। जो कलाकार अपनी उपलब्धियों से संतुष्ट हो जाता है, वह विकास करना बंद कर देता है। लेकिन जो कलाकार सदा असंतुष्ट रहता है, सदा कुछ बेहतर की तलाश में रहता है, वही आगे बढ़ता रहता है, वही नई ऊँचाइयों को छूता है। गोपी इसी तरह का कलाकार है। उसकी असंतुष्टि उसकी कमजोरी नहीं है, बल्कि उसकी शक्ति है। यह उसे गतिशील रखती है, यह उसे प्रयोग करने के लिए प्रेरित करती है।

गोपी त्यागी साधक का भी प्रतीक है। जिस तरह एक आध्यात्मिक साधक भौतिक संसार को छोड़कर हिमालय की गुफाओं में जाता है और परम सत्य की खोज करता है, उसी तरह गोपी भी सामान्य जीवन को छोड़कर एकांत में चला जाता है और परम संगीत की खोज करता है। यह समानता संयोग नहीं है। अज्ञेय यह दिखाना चाहते हैं कि कला-साधना और आध्यात्मिक साधना में कोई मूलभूत अंतर नहीं है। दोनों में समान समर्पण चाहिए, समान त्याग चाहिए, और समान तीव्रता चाहिए। गोपी एक कलाकार है, लेकिन वह एक योगी भी है। उसकी वीणा उसका ध्यान है, उसका संगीत उसकी साधना है। वह भौतिक संगीत के माध्यम से एक आध्यात्मिक अनुभव की खोज कर रहा है।

गोपी आधुनिक मनुष्य का भी प्रतीक है जो अर्थ की तलाश में है। आधुनिक युग में, जब पुराने धार्मिक विश्वास टूट गए हैं, जब परंपरागत मूल्य प्रासंगिक नहीं रह गए हैं, तब मनुष्य अपने जीवन का अर्थ खोज रहा है। वह पूछ रहा है - मैं कौन हूँ, मैं यहाँ क्यों हूँ, मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है। गोपी भी यही खोज रहा है। उसकी परम संगीत की खोज दरअसल जीवन के अर्थ की खोज है, अस्तित्व के उद्देश्य की खोज है। वह



छायावादोत्तर
काव्य

जानना चाहता है कि क्या है वह चीज जो जीवन को सार्थक बनाती है। यह अस्तित्ववादी प्रश्न है जो बीसवीं सदी के मनुष्य को बेचैन किए हुए है। गोपी इस बेचैनी का मूर्त रूप है। उसकी यात्रा हर आधुनिक मनुष्य की यात्रा है।

अंत में, गोपी मनुष्य की सीमाओं का भी प्रतीक है। वह चाहे कितना भी प्रयास करे, पूर्णता उससे दूर ही रहती है। यह मनुष्य की नियति है। हम सीमित प्राणी हैं, हमारी क्षमताएँ सीमित हैं। हम असीम की कल्पना कर सकते हैं, लेकिन उसे प्राप्त नहीं कर सकते। यह मनुष्य की त्रासदी है। लेकिन यही उसकी महानता भी है। यह जानते हुए कि पूर्णता अप्राप्य है, गोपी फिर भी प्रयास करता रहता है। वह हार नहीं मानता। यह मनुष्य की अदम्य जिजीविषा का प्रतीक है। गोपी हमें सिखाता है कि महत्वपूर्ण यह नहीं है कि हम अपने लक्ष्य तक पहुँच पाते हैं या नहीं, महत्वपूर्ण यह है कि हम यात्रा जारी रखते हैं। यात्रा ही गंतव्य है।

कथा का प्रतीकात्मक अर्थ: खोज, संघर्ष और आत्म-बोध

'असाध्य वीणा' की पूरी कथा एक विस्तृत रूपक है। यह केवल एक संगीतकार की कहानी नहीं है, बल्कि यह मनुष्य की शाश्वत यात्रा की कहानी है। कथा तीन प्रमुख चरणों में विभाजित की जा सकती है - पहला चरण है गोपी का सामान्य जीवन, दूसरा चरण है उसकी खोज और संघर्ष, और तीसरा चरण है उसका आत्म-बोध। हर चरण गहरे प्रतीकात्मक अर्थ रखता है। पहले चरण में गोपी एक सफल संगीतकार है। उसके पास सब कुछ है - प्रसिद्धि, धन, सम्मान। लेकिन वह खाली महसूस करता है। यह आधुनिक मनुष्य की स्थिति है। हमारे पास भौतिक सुख-सुविधाएँ हैं, लेकिन आंतरिक संतुष्टि नहीं है। बाहर से हम सफल दिखते हैं, लेकिन अंदर से हम खोखले हैं। गोपी इस खोखलेपन को महसूस करता है और निर्णय लेता है कि उसे कुछ अधिक सार्थक की तलाश करनी है।

दूसरा चरण है खोज और संघर्ष का चरण। गोपी सब कुछ छोड़कर एकांत में चला जाता है। यह बाहरी यात्रा है, लेकिन यह आंतरिक यात्रा का प्रतीक भी है। जब हम अपने असली स्व की खोज करते हैं, तो हमें बाहरी संसार से दूर जाना पड़ता है। हमें शोर से दूर, भीड़ से दूर, अपने अंदर गहरे उतरना पड़ता है। गोपी की पहाड़ों में जाने की यात्रा इसी आंतरिक यात्रा का प्रतीक है। वहाँ वह अकेला है, केवल अपनी वीणा के

साथ। यह एकांत आवश्यक है। सृजन के लिए एकांत चाहिए, आत्म-खोज के लिए एकांत चाहिए। भीड़ में हम अपना असली चेहरा खो देते हैं, हम वह बन जाते हैं जो दूसरे हमसे अपेक्षा करते हैं। एकांत में ही हम अपने असली स्व से मिल सकते हैं। लेकिन यह खोज आसान नहीं है। गोपी को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ठंड है, भूख है, अकेलापन है। और सबसे बड़ी कठिनाई यह कि वह स्वर जिसे वह खोज रहा है, मिलता नहीं। वह कितना भी प्रयास करे, वह स्वर उसकी पकड़ से बाहर रहता है। यह निराशाजनक है, यह हताशाजनक है। कई बार वह सोचता है कि छोड़ दे, वापस लौट जाए। लेकिन वह जारी रखता है। यह मनुष्य के संघर्ष का प्रतीक है। जीवन में हर महत्वपूर्ण चीज के लिए संघर्ष करना पड़ता है। कोई भी मूल्यवान चीज आसानी से नहीं मिलती। परीक्षाएँ होती हैं, असफलताएँ होती हैं, निराशा होती है। लेकिन जो हार नहीं मानता, जो लगा रहता है, वही अंततः कुछ पा लेता है - भले ही वह वो न हो जो वह खोज रहा था। तीसरा और अंतिम चरण है आत्म-बोध का चरण। एक दिन, पूरी तरह थक-हारकर, गोपी को एक अनुभूति होती है। वह समझ जाता है कि जो वह खोज रहा था, वह कभी नहीं मिलेगा क्योंकि वह है ही नहीं। पूर्ण संगीत एक कल्पना है, एक आदर्श है जो केवल हमारे मन में होता है, वास्तविकता में नहीं। लेकिन यह समझ कोई निराशाजनक समझ नहीं है। यह एक मुक्तिदायक समझ है। जब गोपी यह समझ जाता है कि पूर्णता अप्राप्य है, तो वह पूर्णता पाने की चिंता से मुक्त हो जाता है। अब वह संगीत को संगीत के लिए बजा सकता है, किसी लक्ष्य के लिए नहीं। यह एक गहरा दार्शनिक सत्य है - जब हम परिणाम की चिंता छोड़ देते हैं, तभी हम वास्तव में मुक्त होते हैं। यह गीता का कर्मयोग का सिद्धांत है - कर्म करो लेकिन फल की इच्छा मत करो। गोपी इसी सिद्धांत को खोज लेता है।

परोक्ष अभिव्यक्ति: प्रतीकों की अनिवार्यता

नई कविता में प्रतीकात्मकता का एक महत्वपूर्ण कारण है - परोक्ष अभिव्यक्ति की आवश्यकता। कुछ अनुभव और अनुभूतियाँ ऐसी होती हैं जिन्हें सीधे-सीधे कहा नहीं जा सकता। यदि हम उन्हें सीधी भाषा में कहने का प्रयास करें, तो उनका सार खो जाता है, उनकी गहराई नष्ट हो जाती है। उदाहरण के लिए, प्रेम की अनुभूति को लें। यदि कोई कवि सीधे कहे कि "मुझे तुमसे बहुत प्रेम है", तो यह कथन बहुत सपाट और



छायावादोत्तर काव्य

सतही लग सकता है। लेकिन यदि वह कहे कि "तुम मेरी श्वास में बसे हो", या "तुम्हारे बिना मेरा अस्तित्व अधूरा है", तो यह अधिक प्रभावशाली है क्योंकि यह परोक्ष रूप से, प्रतीकों के माध्यम से, प्रेम की गहराई को व्यक्त करता है। प्रतीक हमें यह सुविधा देते हैं कि हम बिना सीधे कहे, कह सकें। वे हमें एक घुमावदार रास्ता देते हैं जो अधिक प्रभावशाली है। जब हम किसी बात को सीधे कहते हैं, तो वह बुद्धि तक पहुँचती है। लेकिन जब हम उसे प्रतीकों के माध्यम से कहते हैं, तो वह हृदय तक पहुँचती है। यह अंतर महत्वपूर्ण है। कविता केवल बौद्धिक व्यायाम नहीं है, यह एक भावनात्मक और आध्यात्मिक अनुभव है। प्रतीक इस अनुभव को संभव बनाते हैं। 'असाध्य वीणा' में अज्ञेय यदि सीधे कहते कि कलाकार को पूर्णता की खोज में संघर्ष करना पड़ता है, तो यह एक साधारण कथन होता। लेकिन गोपी और उसकी वीणा की कथा के माध्यम से यह सत्य बहुत अधिक शक्तिशाली तरीके से व्यक्त होता है। परोक्ष अभिव्यक्ति पाठक को भी सक्रिय बनाती है। जब कवि सीधे सब कुछ कह देता है, तो पाठक केवल ग्रहण करता है। उसे सोचने की जरूरत नहीं पड़ती। लेकिन जब कवि प्रतीकों के माध्यम से संकेत करता है, तो पाठक को खुद अर्थ निकालना पड़ता है। वह कविता के साथ संवाद करता है, वह कविता में अपने अर्थ जोड़ता है। इस प्रक्रिया में कविता और भी समृद्ध हो जाती है। हर पाठक अपने अनुभव के अनुसार कविता को अलग तरह से समझता है। यह विविधता प्रतीकात्मक कविता की शक्ति है। सीधी कविता का केवल एक ही अर्थ होता है, लेकिन प्रतीकात्मक कविता के अनेक अर्थ हो सकते हैं। यह बहुलता उसे कालजयी बनाती है।

बौद्धिक आयाम: विचार की कविता

नई कविता ने कविता को एक बौद्धिक कला बनाया। पहले की कविताएँ मुख्यतः भावनाओं की अभिव्यक्ति थीं। छायावाद में प्रकृति-चित्रण और भावुकता थी, रीतिकाल में श्रृंगार था, भक्तिकाल में भक्ति थी। लेकिन नई कविता में विचार केंद्र में आ गया। यह कविता सोचने को प्रेरित करती है, प्रश्न उठाती है, जीवन के गहरे सत्यों की पड़ताल करती है। प्रतीकात्मकता इस बौद्धिक आयाम को संभव बनाती है। प्रतीक केवल भावनात्मक नहीं होते, वे दार्शनिक भी होते हैं। वे जटिल विचारों को सरल रूप में प्रस्तुत करने का माध्यम हैं। 'असाध्य वीणा' में गोपी की यात्रा केवल एक

भावनात्मक यात्रा नहीं है, यह एक दार्शनिक यात्रा भी है। यह अस्तित्ववाद के प्रश्नों को उठाती है - मनुष्य का अर्थ क्या है, जीवन का उद्देश्य क्या है, पूर्णता क्या है। नई कविता के कवि मानते थे कि कविता को केवल मनोरंजन का साधन नहीं होना चाहिए। यह एक गंभीर कला है जो पाठक को बौद्धिक रूप से चुनौती दे। यह कविता आसानी से समझ में नहीं आती, इसे बार-बार पढ़ना पड़ता है, इस पर विचार करना पड़ता है। कुछ आलोचकों ने इसे कविता की कमजोरी माना और कहा कि कविता सरल और सुबोध होनी चाहिए। लेकिन नई कविता के कवियों का तर्क था कि जीवन जटिल है, इसलिए उसे व्यक्त करने वाली कविता भी जटिल होगी। वे नहीं चाहते थे कि कविता केवल सतह को छुए, वे चाहते थे कि वह गहराई में उतरे। प्रतीकात्मकता उन्हें यह गहराई प्रदान करती थी। प्रतीकों के माध्यम से कवि अमूर्त विचारों को मूर्त रूप दे सकते थे। उदाहरण के लिए, "समय" एक अमूर्त अवधारणा है। इसे सीधे कविता में कैसे लाएँ? लेकिन यदि कवि नदी को समय का प्रतीक बना दे, तो यह अमूर्त अवधारणा मूर्त हो जाती है। नदी का निरंतर प्रवाह समय के निरंतर प्रवाह का प्रतीक बनता है। इसी तरह, "मृत्यु" एक अमूर्त विचार है, लेकिन "पतझड़" या "झूबता हुआ सूरज" उसे मूर्त बना देते हैं। प्रतीक हमें दार्शनिक विचारों को काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत करने का माध्यम देते हैं। यही कारण है कि नई कविता में प्रतीकात्मकता इतनी महत्वपूर्ण हो गई। बिना प्रतीकों के, गहन दार्शनिक विचारों को काव्य में व्यक्त करना लगभग असंभव था।

सौंदर्यबोध: कलात्मक पूर्णता की तलाश

प्रतीकात्मकता का एक और महत्वपूर्ण पहलू है - सौंदर्यबोध। नई कविता के कवि न केवल विचारकों के रूप में, बल्कि कलाकारों के रूप में भी स्वयं को देखते थे। उनके लिए कविता एक शिल्प थी, और हर शिल्प में कलात्मक सौंदर्य होना चाहिए। प्रतीक कविता को सौंदर्य प्रदान करते हैं। जब हम "चाँद" को केवल एक खगोलीय पिंड के रूप में नहीं, बल्कि सौंदर्य, शीतलता या एकाकीपन के प्रतीक के रूप में देखते हैं, तो वह अधिक सुंदर हो जाता है। प्रतीक वस्तुओं को उनके सामान्य अस्तित्व से ऊपर उठाते हैं और उन्हें काव्यात्मक बना देते हैं। 'असाध्य वीणा' में वीणा केवल एक वाद्य यंत्र नहीं रह जाती, वह एक सुंदर, रहस्यमय वस्तु बन जाती है जिसमें अनंत संभावनाएँ हैं।



छायावादोत्तर काव्य

अज्ञेय बहुत सचेत कलाकार थे। वे अपनी कविता की हर पंक्ति को बहुत सावधानी से रचते थे। उनके लिए शब्द-चयन, लय, ध्वनि - सब महत्वपूर्ण थे। प्रतीक उनकी इस कलात्मक दृष्टि का अभिन्न अंग थे। वे केवल अर्थ के लिए नहीं, बल्कि सौंदर्य के लिए भी प्रतीकों का चुनाव करते थे। उदाहरण के लिए, पहाड़ का प्रतीक - यह केवल एकांत या संघर्ष का प्रतीक नहीं है, बल्कि यह दृश्यात्मक रूप से भी सुंदर है। जब हम पढ़ते हैं कि गोपी पहाड़ों में जाता है, तो हमारे मन में बर्फ से ढके शिखरों, गहरी घाटियों, और विशाल आकाश का चित्र बनता है। यह चित्र सुंदर है, और यह सौंदर्य कविता के अनुभव को समृद्ध करता है। नई कविता ने पश्चिमी सौंदर्यबोध से भी सीखा। पश्चिमी कविता में बिंब और प्रतीक को बहुत महत्व दिया जाता था। रोमांटिक कवियों से लेकर आधुनिकतावादी कवियों तक, सभी ने प्रतीकों का व्यापक उपयोग किया। टी.एस. एलियट, एज्रा पाउंड, और डब्ल्यू.बी. येट्स जैसे कवियों की रचनाएँ प्रतीकों से भरी हुई थीं। भारतीय कवियों ने इन से प्रभावित होकर, लेकिन अंधानुकरण नहीं करते हुए, अपने सौंदर्यबोध को विकसित किया। उन्होंने भारतीय परंपरा के प्रतीकों को भी नए संदर्भ में प्रयोग किया। वीणा भारतीय संस्कृति का प्रतीक है, लेकिन अज्ञेय ने उसे एक नया अर्थ दिया। यह परंपरा और आधुनिकता का सुंदर संश्लेषण है।

निष्कर्ष: प्रतीकात्मकता की शाश्वत प्रासंगिकता

नई कविता की प्रतीकात्मकता केवल एक साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं थी, बल्कि यह कविता को समझने और रचने का एक नया तरीका था। इसने हिंदी कविता को एक नई दिशा दी, एक नया सौंदर्यबोध दिया, और एक नई गहराई दी। अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' इस प्रतीकात्मक काव्य-परंपरा की सबसे परिपक्व और सबसे सुंदर रचनाओं में से एक है। इस कविता में वीणा, गोपी, पहाड़, संगीत - सब प्रतीक हैं जो कई स्तरों पर अर्थ देते हैं। ये प्रतीक इतने समृद्ध हैं कि हर बार पढ़ने पर नए अर्थ खुलते हैं। यही एक महान काव्य-कृति की पहचान है - वह कभी पुरानी नहीं पड़ती, हर युग में नई लगती है। प्रतीकात्मकता ने कविता को बौद्धिक बनाया, लेकिन उसे सूखा नहीं बनाया। अच्छे प्रतीक बुद्धि और हृदय दोनों को छूते हैं। वे विचार भी देते हैं और अनुभूति भी। 'असाध्य वीणा' पढ़ते समय हम सोचते भी हैं और महसूस भी करते हैं। हम गोपी के संघर्ष को समझते भी हैं और उसके साथ उस संघर्ष को जीते भी हैं। यह दोहरा अनुभव प्रतीकात्मकता की देन है। यदि कविता केवल बौद्धिक होती और

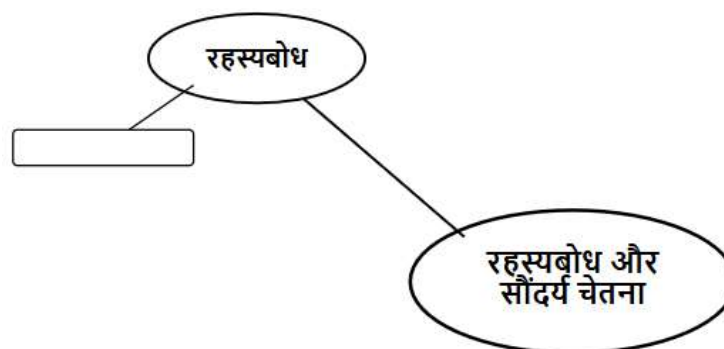
भावनात्मक नहीं, तो वह शुष्क होती। और यदि केवल भावनात्मक होती और बौद्धिक नहीं, तो वह सतही होती। प्रतीक इन दोनों को संतुलित करते हैं।

आज भी, जब नई कविता आंदोलन को कई दशक बीत चुके हैं, प्रतीकात्मकता प्रासंगिक बनी हुई है। आधुनिक कवि आज भी प्रतीकों का प्रयोग करते हैं, हालाँकि उनके प्रतीक अलग हो सकते हैं। यह दिखाता है कि प्रतीकात्मकता कोई क्षणिक फैशन नहीं थी, बल्कि काव्य-भाषा का एक शाश्वत तत्व है। जब तक मनुष्य जटिल अनुभवों को व्यक्त करना चाहेगा, जब तक वह गहरे सत्यों की तलाश करेगा, तब तक प्रतीकों की आवश्यकता रहेगी। अज्ञेय और नई कविता के अन्य कवियों ने हमें यह सिखाया कि कैसे प्रतीकों का सृजनात्मक उपयोग किया जाए, कैसे उन्हें जीवंत और अर्थपूर्ण बनाया जाए। यह शिक्षा आज भी उतनी ही महत्वपूर्ण है।

इकाई 2.3: रहस्यबोध और सौंदर्य चेतना

छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ: रहस्यबोध, सौंदर्य चेतना और कला-दर्शन का गहन विश्लेषण

छायावाद हिंदी साहित्य के इतिहास में एक ऐसा युगांतरकारी आंदोलन है जिसने कविता की भाषा, संवेदना और दृष्टि को पूरी तरह से बदल दिया। इस काव्यधारा की तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं जो इसे अन्य साहित्यिक आंदोलनों से अलग करती हैं और इसकी विशिष्ट पहचान निर्मित करती हैं। ये तीन प्रवृत्तियाँ हैं – रहस्यबोध, सौंदर्य चेतना और 'कला के लिए कला' का दर्शन। इन तीनों प्रवृत्तियों का गहन अध्ययन करने से पहले यह समझना आवश्यक है कि छायावाद केवल एक साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं थी, बल्कि यह भारतीय मनीषा के एक नए जागरण का प्रतिनिधित्व करती थी। स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में, जब देश में राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन की लहरें उठ रही थीं, छायावादी कवियों ने साहित्य को एक नई ऊँचाई और गहराई प्रदान की।



चित्र 2.4 रहस्यबोध और सौंदर्य चेतना

छायावाद का उदय द्विवेदी युग की नीरस उपदेशात्मकता और इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। द्विवेदी युग की कविता में जहाँ समाज सुधार और नैतिक उपदेश प्रमुख थे, वहीं छायावादी कवियों ने व्यक्ति की आंतरिक अनुभूतियों, प्रकृति के सूक्ष्म सौंदर्य और मानवीय संवेदनाओं की गहराइयों को अपना विषय बनाया। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा जैसे कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिंदी काव्य को विश्व साहित्य के समकक्ष खड़ा

किया। इन कवियों की रचनाओं में जो तीन प्रमुख तत्व सर्वत्र दिखाई देते हैं, वे हैं रहस्यवाद की अनुभूति, सौंदर्य के प्रति अगाध निष्ठा और कला की स्वतंत्रता का दर्शन।

2.3.1 रहस्यबोध: अनंत की खोज में मानवीय चेतना की यात्रा

रहस्यबोध छायावाद की सबसे प्रमुख और विशिष्ट प्रवृत्ति है। यह केवल एक साहित्यिक प्रयोग नहीं था, बल्कि यह भारतीय आध्यात्मिक परंपरा और पाश्चात्य रोमांटिसिज्म का एक अद्भुत संगम था। रहस्यवाद वह प्रवृत्ति है जिसमें कवि दृश्य जगत के पार किसी अदृश्य, अज्ञात और परम सत्ता की अनुभूति करता है और उस अनुभूति को अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। यह प्रयास भाषा की सीमाओं से जूझता है क्योंकि जो अनुभूति अवाक् है, अव्याख्येय है, उसे शब्दों में बाँधना लगभग असंभव होता है। फिर भी छायावादी कवियों ने प्रतीकों, बिंबों और संकेतों के माध्यम से इस असंभव को संभव बनाने का प्रयास किया।

अज्ञात की खोज: मानव मन की सनातन जिज्ञासा

मानव सभ्यता के आरंभ से ही मनुष्य अज्ञात की खोज में लगा रहा है। यह खोज केवल भौतिक नहीं है, बल्कि आध्यात्मिक और दार्शनिक भी है। छायावादी कवियों में अज्ञात की खोज एक केंद्रीय विषय बन गई। महादेवी वर्मा की कविताओं में यह खोज सबसे अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उनकी कविताओं में एक अदृश्य प्रिय की उपस्थिति है जो कभी पूरी तरह प्रकट नहीं होता, लेकिन हर पल अपनी अनुपस्थिति से उपस्थित रहता है। यह प्रिय कोई सांसारिक प्रेमी नहीं है, बल्कि परमात्मा, परम सत्य या फिर आत्मा की उस चरम अनुभूति का प्रतीक है जिसे महादेवी ने जीवन भर खोजा। महादेवी की कविताओं में दीपक, अंधकार, मिलन-विरह, और पथ जैसे प्रतीक बार-बार आते हैं। ये प्रतीक केवल सजावटी उपकरण नहीं हैं, बल्कि अज्ञात की उस यात्रा के मील के पथर हैं जिसमें आत्मा परमात्मा की ओर बढ़ती है। जब महादेवी कहती हैं "मैं नीर भरी दुःख की बदली," तो वह केवल अपनी व्यक्तिगत पीड़ा का वर्णन नहीं कर रही, बल्कि वह उस सार्वभौमिक विरह की बात कर रही हैं जो हर आत्मा परम सत्य से अलग होने के कारण अनुभव करती है। यह विरह न केवल दुःखद है, बल्कि यह एक पवित्र अनुभूति है क्योंकि यह आत्मा को उस परम की खोज में प्रेरित करता है।



छायावादोत्तर काव्य

जयशंकर प्रसाद की कविताओं में भी अज्ञात की खोज का स्वर मिलता है, हालांकि उनका रहस्यवाद महादेवी से भिन्न है। प्रसाद के यहाँ रहस्यवाद प्रकृति, इतिहास और मानव-चेतना के बीच एक गहन संवाद के रूप में प्रकट होता है। उनकी कविता "बीती विभावरी जाग री" में प्रकृति के माध्यम से जीवन की नवीनता का आह्वान है, लेकिन इस आह्वान के पीछे एक गहरा आध्यात्मिक संदेश छिपा है। प्रसाद के यहाँ अज्ञात केवल दूर नहीं है, बल्कि वह प्रत्येक क्षण में, प्रत्येक प्राकृतिक घटना में व्याप्त है। उनकी "आँसू" और "लहर" जैसी काव्य रचनाओं में मानव जीवन की क्षणभंगुरता और परम सत्य की शाश्वतता के बीच का द्वंद्व देखने को मिलता है। सुमित्रानंदन पंत का रहस्यवाद प्रकृति-केंद्रित है। उनकी कविताओं में प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं है, बल्कि वह स्वयं परमात्मा की अभिव्यक्ति है। पंत के यहाँ हिमालय, नदियाँ, वृक्ष, और पुष्प सभी उस परम सत्य के विभिन्न रूप हैं। उनकी प्रारंभिक कविताओं में प्रकृति का जो सौंदर्य-वर्णन है, वह केवल बाह्य नहीं है, बल्कि उसमें एक आंतरिक प्रकाश की अनुभूति है। पंत जब "वीणा" में कहते हैं "हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छाँह," तो वह केवल पर्वत का वर्णन नहीं कर रहे, बल्कि वह उस स्थान की बात कर रहे हैं जहाँ से मानव चेतना अनंत की ओर उड़ान भर सकती है। निराला का रहस्यवाद सबसे जटिल और बहुआयामी है। उनके यहाँ रहस्यवाद केवल आध्यात्मिक नहीं है, बल्कि वह सामाजिक, दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक भी है। "तुलसीदास" और "राम की शक्तिपूजा" जैसी उनकी कविताओं में अज्ञात की खोज मानवीय संघर्ष, पराजय और अंततः विजय के रूप में प्रकट होती है। निराला का रहस्यवाद अधिक मानवीय है – उसमें आकाश और पृथ्वी के बीच, देवत्व और मानवता के बीच एक सेतु है।

आध्यात्मिक आयाम: भारतीय दर्शन और छायावाद का संगम

छायावाद का रहस्यवाद भारतीय आध्यात्मिक परंपरा से गहराई से जुड़ा है। वेदांत दर्शन, सूफी परंपरा, भक्ति काव्य और तंत्र साधना – इन सभी से छायावादी कवियों ने प्रेरणा ली। महादेवी वर्मा पर मीरा और अन्य संत कवियों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। जैसे मीरा ने कृष्ण को अपना सर्वस्व मान लिया था, वैसे ही महादेवी ने एक अदृश्य प्रिय को अपने जीवन का केंद्र बना लिया। लेकिन महादेवी का आध्यात्मिक

दर्शन केवल भक्ति तक सीमित नहीं है – उसमें वेदांत का अद्वैत भी है जहाँ आत्मा और परमात्मा का भेद मिट जाता है।

भारतीय दर्शन में माया और सत्य, अनित्य और नित्य का जो द्वंद्व है, वह छायावादी कविता का केंद्रीय विषय है। यह दृश्य जगत, जो हमें इतना वास्तविक लगता है, वास्तव में नश्वर है, परिवर्तनशील है। इसके पीछे एक अपरिवर्तनीय, शाश्वत सत्य है जिसे ब्रह्म, परमात्मा या परम सत्य कहा जाता है। छायावादी कवि इस दृश्य जगत में उस अदृश्य सत्य के संकेत खोजते हैं। प्रकृति के प्रत्येक रूप में, मानवीय संवेदनाओं के प्रत्येक स्पंदन में वे उस परम की झलक देखते हैं। सूफी परंपरा का भी छायावाद पर गहरा प्रभाव है। सूफी काव्य में इश्क-ए-मजाज़ी (सांसारिक प्रेम) और इश्क-ए-हकीकी (परमात्मा का प्रेम) के बीच की सीमा धुंधली हो जाती है। प्रेमी और परमात्मा एक हो जाते हैं। महादेवी की कविताओं में भी यही देखने को मिलता है – उनका प्रिय कौन है, यह स्पष्ट नहीं होता। क्या वह कोई सांसारिक प्रेमी है या परमात्मा? महादेवी जानबूझकर इस अस्पष्टता को बनाए रखती हैं क्योंकि उनके लिए सभी प्रेम अंततः उसी एक की ओर जाता है। योग और तंत्र की साधना में भी रहस्यवाद का एक विशेष स्थान है। कुंडलिनी जागरण, चक्र भेदन, और अंततः समाधि की अवस्था – ये सभी रहस्यवादी अनुभूति के ही रूप हैं। छायावादी कविता में भी इस प्रकार की आंतरिक यात्रा के संकेत मिलते हैं। कवि अपनी चेतना को बाह्य जगत से हटाकर आंतरिक जगत में ले जाता है, जहाँ एक नया प्रकाश, एक नया अनुभव उसकी प्रतीक्षा करता है।

रहस्यात्मक अनुभूति: अव्याख्येय का अनुभव और अभिव्यक्ति

रहस्यात्मक अनुभूति वह अवस्था है जब कवि को किसी ऐसी वास्तविकता का साक्षात्कार होता है जो सामान्य अनुभव से परे है। यह अनुभूति अतार्किक होती है, इसे बुद्धि से नहीं समझा जा सकता, केवल अनुभव किया जा सकता है। संत कवियों ने इसे "अनुभव" कहा है – वह जो केवल अनुभव से जाना जा सकता है, किसी बाहरी प्रमाण से नहीं। छायावादी कवियों ने इस अनुभूति को काव्य में अभिव्यक्त करने का साहसिक प्रयास किया। महादेवी वर्मा की "दीपशिखा" संग्रह की कविताएँ रहस्यात्मक अनुभूति के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। इन कविताओं में महादेवी अपने प्रिय से मिलन की, विरह की, और उस परम अवस्था की बात करती हैं जहाँ मिलन और विरह दोनों



छायावादोत्तर काव्य

समाप्त हो जाते हैं। "मधुर-मधुर मेरे दीपक जल" में दीपक केवल एक भौतिक वस्तु नहीं है, बल्कि वह आत्मा का प्रतीक है जो अंधकार में भी जलती रहती है, प्रिय को खोजती रहती है। यह दीपक कभी बुझता नहीं क्योंकि उसका ईंधन सांसारिक नहीं, आध्यात्मिक है। रहस्यात्मक अनुभूति को अभिव्यक्त करने में भाषा की सीमाएँ स्पष्ट हो जाती हैं। जो अनुभूति शब्दातीत है, उसे शब्दों में कैसे बाँधा जाए? इसी कारण छायावादी कवियों ने प्रतीकों और बिंबों का सहारा लिया। दीपक, अंधकार, प्रभात, सांझ, पथ, नीर, मेघ – ये सभी प्रतीक भौतिक अर्थ से परे एक आध्यात्मिक संदेश देते हैं। जब प्रसाद "अरुण यह मधुमय देश हमारा" कहते हैं, तो वह केवल भारत भूमि की बात नहीं कर रहे, बल्कि वह एक ऐसे आध्यात्मिक देश की बात कर रहे हैं जो हर मानव के हृदय में है। रहस्यात्मक अनुभूति में एक विरोधाभास होता है। कवि एक साथ पूर्णता और अपूर्णता, मिलन और विरह, प्रकाश और अंधकार का अनुभव करता है। यह विरोधाभास तर्क से परे है, लेकिन अनुभूति में यह स्वाभाविक है। महादेवी की कविताओं में यह विरोधाभास बार-बार आता है – वह अपने प्रिय से दूर हैं, फिर भी वह सदा उनके साथ हैं; वह पीड़ा में हैं, फिर भी यह पीड़ा ही उनका सुख है। यह विरोधाभास रहस्यवाद की पहचान है। छायावादी रहस्यवाद पाश्चात्य रोमांटिक कवियों से भी प्रभावित था। वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स और अन्य रोमांटिक कवियों में भी प्रकृति के माध्यम से परम सत्य की अनुभूति का स्वर मिलता है। लेकिन छायावादी कवियों ने इस पाश्चात्य प्रभाव को अपनी भारतीय आध्यात्मिक परंपरा के साथ मिलाकर एक मौलिक रचना की। यह संश्लेषण ही छायावाद की विशेषता है।

2.3.2 सौंदर्य चेतना: कला में सौंदर्य की सर्वोच्चता

छायावाद की दूसरी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है सौंदर्य चेतना। द्विवेदी युग की कविता में जहाँ उपदेश और नैतिकता प्रमुख थी, वहीं छायावादी कवियों ने सौंदर्य को काव्य का मुख्य उद्देश्य बनाया। उनके लिए सौंदर्य केवल बाह्य रूप नहीं था, बल्कि यह एक गहरी अनुभूति थी जो मानव-चेतना को ऊँचा उठाती है, परिष्कृत करती है। सौंदर्य केवल आँखों से देखने की वस्तु नहीं, बल्कि हृदय से अनुभव करने की एक अवस्था है।

कला के प्रति समर्पण: सौंदर्य-सृजन का धर्म

छायावादी कवियों के लिए कला केवल व्यवसाय या शौक नहीं थी, बल्कि यह एक धर्म था, एक समर्पण था। जयशंकर प्रसाद ने अपना संपूर्ण जीवन साहित्य-सृजन में लगा दिया। व्यापार, परिवार और सांसारिक जिम्मेदारियों के बावजूद उन्होंने कभी अपनी साहित्यिक साधना को नहीं छोड़ा। उनके नाटक, कहानियाँ और कविताएँ उनकी इस समर्पण-भावना के प्रमाण हैं। प्रसाद के लिए कला का अर्थ था सत्य और सौंदर्य का संयोजन। उनकी रचनाओं में ऐतिहासिक और पौराणिक पात्रों को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि वे केवल अतीत के चरित्र नहीं रहते, बल्कि शाश्वत मानवीय मूल्यों के प्रतीक बन जाते हैं। सुमित्रानंदन पंत के लिए कविता जीवन का सार थी। उनकी प्रारंभिक कविताओं में प्रकृति का जो सूक्ष्म और कोमल चित्रण है, वह उनकी सौंदर्य-चेतना का प्रमाण है। पंत ने प्रकृति के प्रत्येक रूप में – चाहे वह पर्वत हो, नदी हो, फूल हो या बादल – सौंदर्य देखा। उनकी "पल्लव" की कविताएँ इस दृष्टि से अद्भुत हैं। इन कविताओं में शब्दों का ऐसा चयन है, ध्वनियों का ऐसा संयोजन है कि पढ़ते समय एक संगीत सुनाई देता है। पंत के लिए कविता केवल अर्थ की अभिव्यक्ति नहीं थी, बल्कि वह ध्वनि और लय की एक सुंदर रचना भी थी। महादेवी वर्मा का सौंदर्य-बोध दुःख और पीड़ा के माध्यम से व्यक्त होता है। उनके लिए दुःख भी एक सौंदर्य है क्योंकि वह आत्मा को परिष्कृत करता है, उसे गहरा बनाता है। महादेवी की कविताओं में पीड़ा का जो सौंदर्य है, वह अद्वितीय है। वह अपने दुःख को इस प्रकार प्रस्तुत करती हैं कि वह दुःख न रहकर एक उत्सव बन जाता है, एक साधना बन जाता है। "मैं नीर भरी दुःख की बदली" में दुःख केवल नकारात्मक नहीं है, बल्कि वह सृजनात्मक है – वह वर्षा बनकर पृथ्वी को सींचता है, जीवन देता है। निराला का सौंदर्य-बोध सबसे व्यापक और समावेशी है। उनके लिए सौंदर्य केवल कोमल और सुंदर में नहीं, बल्कि कठोर और भयानक में भी है। "तोड़ती पत्थर" कविता में एक साधारण मजदूर स्त्री के श्रम का जो चित्रण है, वह भी एक प्रकार का सौंदर्य है – कर्म का सौंदर्य, संघर्ष का सौंदर्य। निराला ने सौंदर्य को उसके परंपरागत अर्थ से मुक्त करके उसे जीवन के व्यापक फलक पर फैला दिया।



छायावादोत्तर
काव्य

सौंदर्य का दर्शन: सुंदर का तत्त्वज्ञान

छायावादी कवियों के लिए सौंदर्य केवल इंद्रियगत अनुभव नहीं था, बल्कि यह एक दार्शनिक अवधारणा भी थी। प्लेटो ने सौंदर्य को शाश्वत और अपरिवर्तनीय माना था – यह संसार के सभी सुंदर रूप उस परम सौंदर्य की अपूर्ण प्रतिछायाएँ हैं। भारतीय दर्शन में भी सत्यम्-शिवम्-सुंदरम् की अवधारणा है जहाँ सत्य, कल्याण और सौंदर्य एक ही परम तत्व के तीन रूप हैं। छायावादी कवियों ने इन दोनों परंपराओं से प्रेरणा लेकर अपना सौंदर्य-दर्शन विकसित किया। जयशंकर प्रसाद के लिए सौंदर्य संतुलन और समरसता में था। उनकी रचनाओं में रूप और अर्थ, भाव और विचार, वैयक्तिक और सामाजिक – सभी में एक संतुलन देखने को मिलता है। प्रसाद का सौंदर्य क्लासिकल है – उसमें अनुपात है, संयम है। उनकी "कामायनी" में मनु और श्रद्धा के माध्यम से जिस सौंदर्य-दर्शन की अभिव्यक्ति है, वह मानवीय चेतना के विकास का दर्शन है। श्रद्धा जो है वह केवल एक स्त्री नहीं, बल्कि वह श्रद्धा का, आस्था का और सौंदर्य का प्रतीक है। पंत का सौंदर्य-दर्शन प्रकृति-केंद्रित है। उनके लिए प्रकृति ही सर्वोच्च सौंदर्य है। प्रकृति में कोई कृत्रिमता नहीं है, कोई आडंबर नहीं है – वह अपनी सहजता में ही परम सुंदर है। पंत की प्रारंभिक कविताओं में यह सहज सौंदर्य बिखरा पड़ा है। बाद में पंत का सौंदर्य-दर्शन और अधिक परिपक्व होता है और वह केवल प्रकृति तक सीमित नहीं रहता। "युगांत" और "ग्राम्या" जैसी रचनाओं में पंत सामाजिक यथार्थ को भी सौंदर्य के दायरे में लाते हैं। लेकिन उनका मूल विश्वास यही रहता है कि सौंदर्य जीवन का सार है और कविता का उद्देश्य इस सौंदर्य को उद्घाटित करना है। महादेवी वर्मा का सौंदर्य-दर्शन गहराई से आध्यात्मिक है। उनके लिए सौंदर्य आत्मा की अभिव्यक्ति है। जो कुछ भी आत्मा को छूता है, उसे ऊपर उठाता है, वह सुंदर है। इसीलिए महादेवी के यहाँ पीड़ा भी सुंदर है क्योंकि वह आत्मा को परिष्कृत करती है। उनका सौंदर्य-दर्शन रहस्यवाद से अविभाज्य रूप से जुड़ा है। जैसे रहस्यवाद में आत्मा परमात्मा से मिलन की खोज में रहती है, वैसे ही सौंदर्य भी उस परम सौंदर्य की खोज है जो सभी सुंदर रूपों के पीछे छिपा है। निराला का सौंदर्य-दर्शन सबसे क्रांतिकारी है। उन्होंने परंपरागत सौंदर्य-बोध को चुनौती दी और कहा कि सौंदर्य केवल महलों में नहीं, झोपड़ियों में भी है; केवल राजा-रानियों में नहीं, श्रमिकों में भी है। "भिक्षुक" कविता में एक भिक्षुक की दयनीय स्थिति का वर्णन है, लेकिन निराला उसमें

भी एक गरिमा देखते हैं, एक सौंदर्य देखते हैं। यह सौंदर्य सहानुभूति से जन्मता है, मानवीय संवेदना से जन्मता है। निराला ने सौंदर्य को लोकतांत्रिक बनाया – उसे अभिजात वर्ग के एकाधिकार से मुक्त किया।

कलाकार का आत्म-बलिदान: सृजन के लिए समर्पण

छायावादी कवियों ने कला के लिए अपने जीवन को समर्पित कर दिया। यह समर्पण केवल समय देने का नहीं था, बल्कि यह अपने संपूर्ण अस्तित्व को कला में विसर्जित कर देने का था। कलाकार का आत्म-बलिदान छायावाद की एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। कलाकार वह व्यक्ति है जो सामान्य सुख-सुविधाओं, सांसारिक महत्वाकांक्षाओं और यहाँ तक कि अपनी व्यक्तिगत खुशियों को भी कला की वेदी पर अर्पित कर देता है। महादेवी वर्मा का संपूर्ण जीवन इस आत्म-बलिदान का उदाहरण है। विवाहित होने के बावजूद उन्होंने वैवाहिक जीवन को स्वीकार नहीं किया और अपने आप को पूरी तरह साहित्य-सृजन में समर्पित कर दिया। उन्होंने अपने निजी दुःख को, अपनी पीड़ा को काव्य में रूपांतरित किया। उनकी कविताएँ उनके आँसुओं से लिखी गई हैं, उनकी आत्मा की गहराइयों से निकली हैं। महादेवी ने स्त्री-शिक्षा और सामाजिक कार्यों में भी योगदान दिया, लेकिन उनकी पहचान सदा एक कवयित्री के रूप में ही रही। उनके लिए कविता केवल शब्दों का खेल नहीं थी, बल्कि यह जीवन जीने का एक तरीका था, अस्तित्व का एक रूप था। जयशंकर प्रसाद ने भी अपने जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना किया। पारिवारिक व्यवसाय की असफलता, आर्थिक संकट और स्वास्थ्य की समस्याओं के बावजूद उन्होंने साहित्य-सृजन जारी रखा। उनकी "कामायनी" जैसी महाकाव्यात्मक रचना उनकी साहित्यिक प्रतिबद्धता का प्रमाण है। प्रसाद ने अपने समय की सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को भी अपनी रचनाओं में स्थान दिया, लेकिन उनका मुख्य उद्देश्य सदा कला का सृजन ही रहा। सुमित्रानंदन पंत ने अपने लंबे जीवन में कई बार अपने काव्य-दृष्टिकोण को बदला – प्रकृति-काव्य से समाजवादी काव्य तक, और फिर आध्यात्मिक काव्य तक। लेकिन इन सभी परिवर्तनों के पीछे एक ही खोज थी – सत्य की खोज, सौंदर्य की खोज। पंत ने अपने जीवन के अंतिम वर्षों में अरविंद आश्रम में रहकर साधना की, लेकिन उनकी काव्य-साधना कभी नहीं रुकी। उनके लिए कविता और साधना एक ही थे।



छायावादोत्तर
काव्य

निराला का जीवन संघर्षों से भरा था। परिवार के सदस्यों की मृत्यु, आर्थिक कठिनाइयाँ, समाज द्वारा उपेक्षा – सब कुछ उन्होंने झेला। लेकिन इन सभी कठिनाइयों ने उनकी रचनात्मकता को समाप्त नहीं किया, बल्कि और अधिक तीव्र बना दिया। निराला की "परिमल," "गीतिका," "अनामिका" और अन्य संग्रहों की कविताएँ उनके संघर्षशील जीवन का दस्तावेज हैं। निराला ने अपने दुःख को, अपनी पीड़ा को काव्य में बदला। उनके लिए कविता एक शरणस्थली थी, एक ऐसा स्थान जहाँ वे अपने आप को पूरी तरह अभिव्यक्त कर सकते थे। छायावादी कवियों का यह आत्म-बलिदान केवल व्यक्तिगत नहीं था। यह एक बड़े उद्देश्य के लिए था – हिंदी साहित्य को विश्व साहित्य के समकक्ष लाने के लिए, भारतीय चेतना को एक नई ऊँचाई देने के लिए। उन्होंने अपने समय की सीमाओं को तोड़ा, नए प्रयोग किए, नई भाषा और नए काव्य-रूप विकसित किए। यह सब उनके समर्पण के बिना संभव नहीं था।

2.3.3 'कला के लिए कला' का दर्शन: सौंदर्यवाद की परिणति

छायावाद की तीसरी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है 'कला के लिए कला' का दर्शन। यह अवधारणा पाश्चात्य सौंदर्यवाद (Aestheticism) से प्रभावित थी, जिसमें कला को किसी भी नैतिक, सामाजिक या राजनीतिक उद्देश्य से मुक्त माना जाता था। इस दर्शन के अनुसार कला का उद्देश्य केवल सौंदर्य-सृजन है, न कि समाज-सुधार या उपदेश। द्विवेदी युग की उपदेशात्मकता के विरुद्ध यह एक क्रांतिकारी विचार था।

शुद्ध सौंदर्यवाद: कला का निरपेक्ष मूल्य

शुद्ध सौंदर्यवाद की अवधारणा यह है कि कला का मूल्य अपने आप में है, किसी बाहरी उद्देश्य में नहीं। कला को नैतिकता, धर्म, राजनीति या समाज-सुधार का साधन बनाना उसकी स्वतंत्रता और शुद्धता को नष्ट करना है। कला का उद्देश्य सौंदर्य-सृजन है और सौंदर्य-अनुभूति है। यदि कला में कोई संदेश भी है, तो वह संदेश सौंदर्य के अनुभव से स्वतः निकलना चाहिए, उसे जबरन थोपा नहीं जाना चाहिए। छायावादी कवियों ने, विशेषकर उनके प्रारंभिक चरण में, इस सिद्धांत को अपनाया। सुमित्रानंदन पंत की प्रारंभिक कविताओं में प्रकृति के सौंदर्य का जो वर्णन है, वह किसी सामाजिक या नैतिक उद्देश्य से प्रेरित नहीं है। पंत केवल उस सौंदर्य को पकड़ना चाहते हैं, उसे शब्दों में बाँधना चाहते हैं। "नौका विहार" जैसी कविताओं में पंत प्रकृति के साथ एक

हो जाते हैं, और उस एकात्मकता का जो अनुभव है, वही कविता बन जाता है। यहाँ कोई उपदेश नहीं है, कोई संदेश नहीं है – केवल शुद्ध सौंदर्य-अनुभूति है। जयशंकर प्रसाद की भी कई रचनाएँ शुद्ध सौंदर्यवाद की उदाहरण हैं। उनकी "झरना" संग्रह की कविताएँ, विशेषकर प्रकृति-चित्रण वाली कविताएँ, सौंदर्य के लिए ही लिखी गई प्रतीत होती हैं। प्रसाद जब हिमालय के सौंदर्य का वर्णन करते हैं या यमुना के तट का चित्र खींचते हैं, तो वह केवल उस सौंदर्य को अभिव्यक्त करने के लिए करते हैं। निश्चित रूप से इन वर्णनों में गहरे दार्शनिक अर्थ भी हैं, लेकिन वे गौण हैं – प्रमुख है सौंदर्य। महादेवी वर्मा की कविताओं में भी शुद्ध सौंदर्यवाद के तत्व मिलते हैं, हालाँकि उनकी कविताएँ अधिक रहस्यवादी हैं। महादेवी जब प्रकृति का चित्रण करती हैं – चाहे वह प्रभात हो, संध्या हो, या रात्रि – तो वह सौंदर्य-चित्रण के लिए ही करती हैं। उनकी भाषा, उनके बिंब, उनके प्रतीक – सभी सौंदर्य-सृजन के उपकरण हैं। लेकिन यह कहना गलत होगा कि छायावादी कवि पूरी तरह से शुद्ध सौंदर्यवाद के समर्थक थे। वास्तव में उनकी कविताओं में सामाजिक चेतना भी है, राष्ट्रीय भावना भी है। निराला तो स्पष्ट रूप से सामाजिक यथार्थ के कवि थे। बाद के वर्षों में पंत भी समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हुए। लेकिन छायावाद के प्रारंभिक चरण में शुद्ध सौंदर्यवाद का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

कला की स्वायत्तता: साहित्य की स्वतंत्रता

'कला के लिए कला' का दर्शन कला की स्वायत्तता पर बल देता है। इसका अर्थ है कि कला किसी भी बाहरी शक्ति – चाहे वह धर्म हो, राजनीति हो, या समाज – के नियंत्रण से मुक्त होनी चाहिए। कलाकार को पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वह जो चाहे लिखे, जैसे चाहे लिखे। कला पर कोई सेंसरशिप नहीं होनी चाहिए, कोई नैतिक बंधन नहीं होना चाहिए। छायावादी कवियों ने अपने समय में इस स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया। द्विवेदी युग में काव्य भाषा, छंद और विषय-वस्तु के संबंध में कड़े नियम थे। छायावादी कवियों ने इन नियमों को तोड़ा। उन्होंने खड़ीबोली को काव्य-भाषा के रूप में स्थापित किया, नए छंदों का प्रयोग किया, और ऐसे विषयों को छुआ जो पहले काव्य के विषय नहीं माने जाते थे। निराला इस संघर्ष के अग्रदूत थे। उन्होंने मुक्त छंद का प्रयोग किया, जो उस समय के लिए अभूतपूर्व था। "जूही की कली" जैसी कविताओं में निराला ने छंद की पारंपरिक बंधिशों को तोड़ दिया। उन्होंने भाषा में भी नए प्रयोग किए –



छायावादोत्तर काव्य

संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया, लेकिन साथ ही बोलचाल की भाषा का भी। निराला ने सिद्ध किया कि कवि को भाषा, छंद और शैली के संबंध में पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। पंत ने भी अपनी कविताओं में नए प्रयोग किए। उन्होंने ध्वनि और लय पर विशेष बल दिया। पंत की कविताओं में शब्दों का चयन केवल अर्थ के आधार पर नहीं, बल्कि ध्वनि के आधार पर भी होता था। वे ऐसे शब्दों का चयन करते थे जो एक संगीतात्मक प्रभाव उत्पन्न करें। यह भी कला की स्वतंत्रता का ही एक रूप था। महादेवी वर्मा ने स्त्री-लेखन को एक नई ऊँचाई दी। उनसे पहले हिंदी में स्त्री-कवियों की संख्या बहुत कम थी, और जो थीं भी, उनकी रचनाएँ अधिकतर धार्मिक या पारंपरिक विषयों तक सीमित थीं। महादेवी ने अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों को, अपने आंतरिक संघर्ष को काव्य का विषय बनाया। उन्होंने स्त्री की आवाज को साहित्य में स्थान दिलाया। यह भी कला की स्वायत्तता का ही परिणाम था। प्रसाद ने अपनी रचनाओं में इतिहास और कल्पना का सुंदर मिश्रण किया। उन्होंने ऐतिहासिक पात्रों को मानवीय बनाया, उनमें भावनाएँ और संवेदनाएँ भरीं। "चंद्रगुप्त," "स्कंदगुप्त" और "ध्रुवस्वामिनी" जैसे नाटकों में प्रसाद ने इतिहास को केवल तथ्यों के संग्रह के रूप में नहीं, बल्कि मानवीय अनुभवों के रूप में प्रस्तुत किया। यह भी कलाकार की स्वतंत्रता का उदाहरण है।

कलाकार की निष्ठा: सत्य और सौंदर्य के प्रति प्रतिबद्धता

'कला के लिए कला' का दर्शन केवल स्वतंत्रता की बात नहीं करता, बल्कि यह कलाकार की निष्ठा की भी बात करता है। कलाकार को अपनी कला के प्रति पूरी तरह समर्पित होना चाहिए। उसे किसी भी प्रकार के समझौते नहीं करने चाहिए – न लोकप्रियता के लिए, न धन के लिए, न प्रसिद्धि के लिए। कलाकार की एकमात्र निष्ठा अपनी कला के प्रति होनी चाहिए। छायावादी कवियों ने इस निष्ठा का उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्होंने ऐसी कविताएँ लिखीं जो उस समय के पाठकों के लिए कठिन थीं, जिन्हें समझना आसान नहीं था। लेकिन उन्होंने अपनी कला को सरल या सतही नहीं बनाया। उन्होंने अपनी दृष्टि पर विश्वास रखा और वही लिखा जो उन्हें सही लगा। महादेवी वर्मा ने जीवन भर विवाह और पारिवारिक जीवन को स्वीकार नहीं किया क्योंकि उन्हें लगता था कि यह उनकी काव्य-साधना में बाधा बनेगा। यह उनकी कला के प्रति निष्ठा

का प्रमाण है। उन्होंने सामाजिक दबावों के सामने समर्पण नहीं किया, बल्कि अपने चुने हुए मार्ग पर दृढ़ता से चलती रहीं।

निराला ने जीवन भर आर्थिक कठिनाइयाँ झेलीं, लेकिन उन्होंने कभी अपनी कला से समझौता नहीं किया। वे ऐसी लोकप्रिय कविताएँ लिख सकते थे जो बिकती, लेकिन उन्होंने वही लिखा जो उनकी अंतरात्मा ने कहा। "राम की शक्तिपूजा" जैसी गहन और जटिल कविताएँ लिखीं, जिन्हें समझना आसान नहीं था, लेकिन जो उनकी काव्य-दृष्टि के अनुकूल थीं। पंत ने भी अपने जीवन में कई बार अपनी लोकप्रियता को दांव पर लगाया। जब वे समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हुए और "युगांत" जैसी रचनाएँ लिखीं, तो उनके कई पुराने प्रशंसकों ने उनकी आलोचना की। लेकिन पंत ने अपनी नई दृष्टि को स्वीकार किया क्योंकि वह उन्हें सत्य लगी। बाद में जब वे आध्यात्मिक काव्य की ओर मुड़े, तो फिर से आलोचना हुई, लेकिन पंत अपने मार्ग पर चलते रहे। प्रसाद ने अपने संपूर्ण जीवन में साहित्य को प्राथमिकता दी। व्यापार की असफलता के बाद भी वे साहित्य-सृजन में लगे रहे। उन्होंने ऐसे नाटक और कविताएँ लिखीं जो उस समय के रंगमंच या काव्य-मंचों के लिए उपयुक्त नहीं थीं, लेकिन जो उनकी कलात्मक दृष्टि के अनुकूल थीं। छायावादी कवियों की यह निष्ठा केवल व्यक्तिगत नहीं थी। यह एक बड़े उद्देश्य से जुड़ी थी – हिंदी साहित्य को एक नई ऊँचाई देने का उद्देश्य। उन्होंने महसूस किया कि यदि हिंदी साहित्य को विश्व साहित्य के समकक्ष लाना है, तो उसे उच्च मानदंडों पर खरा उतरना होगा। इसके लिए लोकप्रियता या तात्कालिक सफलता को छोड़ना पड़े तो वे तैयार थे।

छायावाद की तीनों प्रवृत्तियों का समन्वय

रहस्यबोध, सौंदर्य चेतना और 'कला के लिए कला' का दर्शन – ये तीनों प्रवृत्तियाँ छायावाद में अलग-अलग नहीं हैं, बल्कि एक-दूसरे से गहराई से जुड़ी हैं। रहस्यबोध में जो अज्ञात की खोज है, वह सौंदर्य की खोज भी है। परम सत्य जो रहस्यवाद का लक्ष्य है, वह परम सौंदर्य भी है।



छायावादोत्तर
काव्य

2.4 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

2.4.1 बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs – 10)

1. “असाध्य वीणा” कविता के रचयिता कौन हैं?
 - a) गजानन माधव मुक्तिबोध
 - b) अज्ञेय
 - c) धर्मवीर भारती
 - d) सुमित्रानंदन पंत

✓ उत्तर: b) अज्ञेय
2. “असाध्य वीणा” कविता किस काव्यधारा से संबंधित है?
 - a) छायावाद
 - b) प्रयोगवाद और नई कविता
 - c) प्रगतिवाद
 - d) रहस्यवाद

✓ उत्तर: b) प्रयोगवाद और नई कविता
3. “असाध्य वीणा” कविता का मुख्य प्रतीक क्या है?
 - a) वीणा
 - b) संगीत
 - c) सौंदर्य और साधना
 - d) प्रकृति

✓ उत्तर: a) वीणा
4. अज्ञेय का वास्तविक नाम क्या था?
 - a) सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन
 - b) अयोध्या प्रसाद उपाध्याय
 - c) हरिवंश राय बच्चन
 - d) श्रीकांत वर्मा

✓ उत्तर: a) सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन
5. नई कविता की प्रमुख विशेषता क्या है?
 - a) भक्ति भावना
 - b) आत्मानुभूति और प्रतीकात्मकता

अज्ञेय

- c) ऐतिहासिक वर्णन
d) लोकगीत शैली
✓ उत्तर: b) आत्मानुभूति और प्रतीकात्मकता
6. "असाध्य वीणा" कविता का मूल भाव क्या है?
a) प्रेम और विरह
b) साधना और सौंदर्य की प्राप्ति
c) युद्ध और शौर्य
d) प्रकृति वर्णन
✓ उत्तर: b) साधना और सौंदर्य की प्राप्ति
7. अज्ञेय को हिंदी साहित्य में किस रूप में जाना जाता है?
a) व्यंग्यकार
b) प्रयोगवादी कवि और विचारक
c) निबंधकार
d) इतिहासकार
✓ उत्तर: b) प्रयोगवादी कवि और विचारक
8. "रहस्यबोध" शब्द का आशय क्या है?
a) धार्मिक रहस्य
b) जीवन और अस्तित्व के गूढ़ तत्वों का बोध
c) रहस्यमय कथा
d) किसी व्यक्ति का रहस्य
✓ उत्तर: b) जीवन और अस्तित्व के गूढ़ तत्वों का बोध
9. नई कविता आंदोलन के प्रवर्तक माने जाते हैं—
a) अज्ञेय
b) दिनकर
c) नागार्जुन
d) बच्चन
✓ उत्तर: a) अज्ञेय
10. अज्ञेय की काव्य चेतना में प्रमुख तत्व कौन-सा है?
a) सौंदर्य और आत्मबोध



छायावादोत्तर
काव्य

- b) भक्ति और प्रेम
- c) करुणा और दया
- d) नीति और धर्म
- ✓ उत्तर: a) सौंदर्य और आत्मबोध

2.4.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type)

1. अज्ञेय की कविता "असाध्य वीणा" का मुख्य संदेश क्या है?
2. "नई कविता" शब्द से आप क्या समझते हैं?
3. अज्ञेय की रचनाओं में 'प्रतीक' का क्या महत्व है?
4. "असाध्य वीणा" में 'वीणा' किसका प्रतीक है?
5. रहस्यबोध का अज्ञेय की कविता में क्या अर्थ है?
6. सौंदर्य चेतना से आप क्या समझते हैं?
7. अज्ञेय की कविताओं में आत्मानुभूति का क्या स्थान है?
8. "नई कविता" की तुलना में पुरानी कविता से उसका अंतर स्पष्ट कीजिए।
9. अज्ञेय के अनुसार सच्ची कविता की विशेषता क्या है?
10. "आँगन के पार द्वार" शीर्षक का प्रतीकात्मक अर्थ क्या हो सकता है?

2.4.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type)

1. "असाध्य वीणा" कविता का विश्लेषण कीजिए और उसमें निहित प्रतीकात्मक अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. अज्ञेय की कविताओं में रहस्यबोध और सौंदर्य चेतना का विवेचन कीजिए।
3. नई कविता आंदोलन में अज्ञेय की भूमिका पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
4. "असाध्य वीणा" को आध्यात्मिक और कलात्मक संघर्ष की कविता के रूप में स्पष्ट कीजिए।
5. अज्ञेय की काव्यदृष्टि में व्यक्ति और समाज का संबंध कैसे प्रकट होता है?
6. नई कविता की प्रतीकात्मकता के संदर्भ में अज्ञेय की रचनाओं की विशेषताओं का मूल्यांकन कीजिए।
7. अज्ञेय की कविताओं में भाषा और रूप संरचना की विशिष्टता पर चर्चा कीजिए।

8. "रहस्यबोध" के माध्यम से अज्ञेय ने आधुनिक जीवन के किन पहलुओं को व्यक्त किया है?
9. "असाध्य वीणा" कविता में संगीत, सौंदर्य और साधना का तत्त्व किस प्रकार समाहित हुआ है?
10. अज्ञेय की काव्य चेतना को आधुनिक हिंदी कविता के विकासक्रम में कैसे देखा जा सकता है – विवेचना कीजिए।



छायावादोत्तर
काव्य

मॉड्यूल 3

रामधारी सिंह दिनकर

संरचना

इकाई 3.1: उर्वशी: तीसरा सर्ग

इकाई 3.2 शृंगार और वीर रस का समन्वय

इकाई 3.3 जीवन और प्रेम-दर्शन

3.0 उद्देश्य:

- विद्यार्थियों को रामधारी सिंह 'दिनकर' की काव्य-दृष्टि, भाषा-शक्ति और भाव-गाम्भीर्य से परिचित कराना।
- "उर्वशी" के माध्यम से मानव प्रेम, आदर्श और आत्मबोध के दर्शन को समझाना।
- दिनकर की कविताओं में शृंगार और वीर रस के समन्वय का विश्लेषण करना।
- कवि के जीवन-दर्शन और प्रेम-दर्शन के दार्शनिक पक्ष को पहचानना।
- विद्यार्थियों में आधुनिक हिंदी कविता के वैचारिक और सांस्कृतिक मूल्यों की समझ विकसित करना।

इकाई 3.1: उर्वशी: तीसरा सर्ग

3.1.1 दिनकर का जीवन और साहित्यिक योगदान

रामधारी सिंह दिनकर हिंदी साहित्य के उन महान कवियों में से एक हैं जिन्होंने राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक परिवर्तन और मानवीय संवेदनाओं को अपनी कविता में समान रूप से स्थान दिया। उनका जन्म 1908 में बिहार के सिमरिया गाँव में हुआ था, जो एक साधारण किसान परिवार से संबंध रखता था। यह वह समय था जब भारत अंग्रेजी शासन के अधीन था और देश में स्वतंत्रता संग्राम की लहर तेज होती जा रही थी। दिनकर का बचपन और युवावस्था इसी राष्ट्रीय जागरण के वातावरण में बीती, जिसका गहरा प्रभाव उनके साहित्य पर पड़ा।



चित्र 3.1 रामधारी सिंह दिनकर

दिनकर की शिक्षा-दीक्षा साधारण परिस्थितियों में हुई लेकिन उनकी प्रतिभा और अध्ययनशीलता ने उन्हें हिंदी साहित्य का एक प्रमुख स्तंभ बना दिया। उन्होंने पटना विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि प्राप्त की और इसके बाद शिक्षक, सरकारी अधिकारी और अंततः राज्यसभा के सदस्य के रूप में विभिन्न पदों पर कार्य किया। लेकिन उनकी सबसे बड़ी पहचान एक कवि के रूप में ही रही। उन्हें राष्ट्रकवि की उपाधि से सम्मानित किया गया क्योंकि उनकी कविताओं में राष्ट्रीय चेतना, वीर रस और देशभक्ति की भावना प्रबल रूप से व्यक्त हुई थी। दिनकर की काव्य यात्रा बहुआयामी रही है। उनकी प्रारंभिक रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना और क्रांतिकारी स्वर प्रमुख था। कुरुक्षेत्र और रश्मिरथी जैसी रचनाएँ महाभारत के पात्रों के माध्यम से आधुनिक युग के प्रश्नों को उठाती हैं। कुरुक्षेत्र में युद्ध और शांति के बीच के द्वंद्व को दार्शनिक गहराई से प्रस्तुत किया गया है, जबकि रश्मिरथी में कर्ण के चरित्र को नए दृष्टिकोण से देखा गया है। परशुराम की प्रतीक्षा में उन्होंने सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता को रेखांकित किया। लेकिन उर्वशी में दिनकर एक नए क्षेत्र में प्रवेश करते हैं जहाँ वे प्रेम, काम और मानवीय संवेदनाओं को एक नए काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं। दिनकर की भाषा ओजस्वी और प्रभावशाली थी। उनकी शब्द चयन की क्षमता, छंद विधान का ज्ञान और भावाभिव्यक्ति की कुशलता उन्हें हिंदी कविता में विशिष्ट स्थान देती है। उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग करते हुए भी अपनी



छायावादोत्तर
काव्य

भाषा को सहज और प्रवाहमय बनाए रखा। उनकी कविताओं में लय और संगीत का अद्भुत समन्वय मिलता है जो पाठक को मंत्रमुग्ध कर देता है।

3.1.2 उर्वशी महाकाव्य का परिचय और महत्व

उर्वशी का प्रकाशन 1961 में हुआ था और यह दिनकर की परिपक्व काव्य प्रतिभा का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस रचना के लिए उन्हें 1972 में भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया, जो हिंदी साहित्य का सर्वोच्च पुरस्कार माना जाता है। यह महाकाव्य चार सर्गों में विभाजित है और इसमें पुरुरवा और उर्वशी की अमर प्रेम कथा को आधार बनाया गया है। यह कथा वैदिक और पौराणिक साहित्य में प्राचीन काल से विद्यमान रही है लेकिन दिनकर ने इसे आधुनिक संदर्भ और नए दार्शनिक आयाम प्रदान किए। उर्वशी को प्रबंध काव्य या महाकाव्य की श्रेणी में रखा जाता है। महाकाव्य की परंपरागत परिभाषा के अनुसार इसमें एक महान नायक, ऐतिहासिक या पौराणिक कथा, विस्तृत वर्णन, विभिन्न छंदों का प्रयोग और जीवन के विभिन्न पहलुओं का समावेश होना चाहिए। उर्वशी इन सभी मानदंडों पर खरी उतरती है। पुरुरवा एक महान राजा और योद्धा है, उर्वशी स्वर्ग की अप्सरा है, और उनकी प्रेम कथा न केवल व्यक्तिगत है बल्कि मानवीय अस्तित्व के गहरे प्रश्नों को छूती है। उर्वशी की कथा का मूल आधार ऋग्वेद और पुराणों में मिलता है। वैदिक साहित्य में पुरुरवा और उर्वशी का संवाद एक सूक्त के रूप में मौजूद है जहाँ उर्वशी पुरुरवा को छोड़कर स्वर्ग लौट जाती है और दोनों के बीच एक मार्मिक संवाद होता है। कालिदास ने अपने नाटक विक्रमोर्वशीयम में इस कथा को नाट्य रूप दिया था। लेकिन दिनकर ने इस प्राचीन कथा को अपनी रचनात्मकता और आधुनिक दृष्टिकोण से नया जीवन दिया। उन्होंने इसमें मानव और देवता के बीच के अंतर, प्रेम और काम के संबंध, और मानवीय अस्तित्व के दार्शनिक प्रश्नों को समाहित किया। उर्वशी की विशेषता यह है कि यह केवल एक प्रेम कथा नहीं है बल्कि मानव अस्तित्व की खोज है। दिनकर ने इस महाकाव्य में प्रेम को उसकी संपूर्णता में देखा है, जहाँ काम भी प्रेम का एक स्वाभाविक और आवश्यक अंग है। भारतीय परंपरा में काम को चार पुरुषार्थों में से एक माना गया है और दिनकर ने इसे उसी गरिमा के साथ प्रस्तुत किया है। यह उनकी साहसिक दृष्टि का परिचायक है क्योंकि उस समय हिंदी साहित्य में शृंगार रस और काम के खुले चित्रण को लेकर एक संकोच का भाव था।

3.1.3 तीसरे सर्ग की पृष्ठभूमि और संदर्भ

रामधारी सिंह
दिनकर

उर्वशी महाकाव्य के चार सर्गों में प्रत्येक का अपना विशेष महत्व है। पहले सर्ग में पुरुरवा और उर्वशी की प्रथम भेंट और प्रेम की उत्पत्ति का वर्णन है। दूसरे सर्ग में उनके प्रेम की गहनता और संघर्ष को दिखाया गया है। तीसरा सर्ग महाकाव्य का सबसे महत्वपूर्ण और चर्चित सर्ग है जहाँ पुरुरवा और उर्वशी का शारीरिक और आत्मिक मिलन होता है। चौथे सर्ग में उनके वियोग और पुनर्मिलन की कथा है। तीसरा सर्ग इसलिए विशेष है क्योंकि यहाँ दिनकर ने प्रेम और काम के सबसे सूक्ष्म और गहरे पहलुओं को कविता में व्यक्त किया है। तीसरे सर्ग के आरंभ में पुरुरवा और उर्वशी का मिलन एक प्राकृतिक वातावरण में होता है। यह वातावरण केवल बाहरी नहीं है बल्कि उनकी आंतरिक भावनाओं का प्रतिबिंब है। प्रकृति का वर्णन दिनकर की काव्य कला का एक महत्वपूर्ण पक्ष है और तीसरे सर्ग में प्रकृति मानो उनके प्रेम में साक्षी और सहभागी दोनों बन जाती है। चाँदनी रात, शीतल पवन, सुगंधित पुष्प और शांत वातावरण पुरुरवा और उर्वशी के मिलन के लिए एक आदर्श पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हैं। पुरुरवा एक मानव राजा है जो अपनी वीरता और पराक्रम के लिए प्रसिद्ध है। उर्वशी स्वर्ग की सबसे सुंदर अप्सरा है जो अपनी नृत्य कला और सौंदर्य के लिए जानी जाती है। उनका प्रेम असाधारण है क्योंकि यह मानव और देवता के बीच की सीमा को पार करता है। लेकिन दिनकर यहाँ एक महत्वपूर्ण दार्शनिक प्रश्न उठाते हैं कि क्या मानव और देवता में वास्तव में कोई अंतर है या यह केवल एक सामाजिक और पौराणिक निर्माण है। तीसरे सर्ग में यह प्रश्न अपने चरम पर पहुँचता है जब उर्वशी पुरुरवा से कहती है कि वह देवता नहीं बल्कि एक सामान्य स्त्री है जिसमें प्रेम और इच्छा की वही भावनाएँ हैं जो किसी भी मानव स्त्री में होती हैं।

तीसरे सर्ग का काव्यात्मक विश्लेषण

तीसरे सर्ग में दिनकर की भाषा अपने सर्वोत्तम रूप में है। उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों, हिंदी की कोमल भाषा और काव्यात्मक अलंकारों का सुंदर समन्वय किया है। सर्ग का आरंभ प्रकृति वर्णन से होता है जहाँ रात का वातावरण, चाँदनी का प्रकाश, और प्रकृति की शांति का अत्यंत मनोहारी चित्रण है। दिनकर ने यहाँ रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा जैसे अलंकारों का सहज प्रयोग किया है जो पाठक को उस वातावरण में खींच ले जाता है।



छायावादोत्तर
काव्य

पुरुषा और उर्वशी का संवाद इस सर्ग का केंद्रीय भाग है। यह संवाद केवल शब्दों का आदान-प्रदान नहीं है बल्कि दो आत्माओं का संवाद है जो एक-दूसरे को समझना और पाना चाहती हैं। पुरुषा उर्वशी से कहता है कि उसका प्रेम केवल शारीरिक आकर्षण नहीं है बल्कि एक गहरी आत्मिक आवश्यकता है। उर्वशी भी अपने मन की बात खोलती है और कहती है कि वह स्वर्ग की देवी होने से अधिक एक सामान्य स्त्री बनना चाहती है जो प्रेम कर सके और प्रेम पा सके। यहाँ दिनकर ने एक महत्वपूर्ण दार्शनिक बिंदु प्रस्तुत किया है। उर्वशी कहती है कि स्वर्ग में सब कुछ है लेकिन वास्तविक प्रेम और मानवीय संवेदनाएँ नहीं हैं। देवता अमर हैं इसलिए उन्हें जीवन का वह मूल्य नहीं पता जो मृत्यु की चेतना से आता है। वे सुंदर हैं लेकिन उनकी सुंदरता में वह गहराई नहीं है जो कष्ट और संघर्ष से आती है। पुरुषा मानव है, इसलिए उसका प्रेम अधिक सच्चा और गहरा है। यह विचार भारतीय दर्शन की उस परंपरा को दर्शाता है जहाँ मानव जन्म को सबसे श्रेष्ठ माना गया है क्योंकि केवल मानव ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है। तीसरे सर्ग में शृंगार रस की प्रधानता है लेकिन यह शृंगार अश्लील या सतही नहीं है। दिनकर ने काम को उसकी गरिमा और पवित्रता के साथ प्रस्तुत किया है। भारतीय परंपरा में काम को एक पुरुषार्थ माना गया है और वात्स्यायन के कामसूत्र जैसे ग्रंथों में इसका शास्त्रीय विवेचन किया गया है। दिनकर ने इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए काम को जीवन का एक स्वाभाविक और आवश्यक अंग माना है। वे कहते हैं कि जो समाज काम को पाप मानता है वह जीवन की वास्तविकता से मुँह मोड़ रहा है। पुरुषा और उर्वशी का मिलन केवल शारीरिक नहीं है बल्कि यह दो आत्माओं का मिलन है। दिनकर ने यहाँ प्लेटोनिक प्रेम और शारीरिक प्रेम के बीच की कृत्रिम विभाजन रेखा को मिटा दिया है। वे दिखाते हैं कि सच्चा प्रेम वह है जहाँ शरीर और आत्मा दोनों का मिलन हो। शरीर को आत्मा से अलग करना या आत्मा को शरीर से श्रेष्ठ मानना एक भ्रामक विचार है। मानव एक संपूर्ण इकाई है जहाँ शरीर और आत्मा एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हैं।

प्रेम और काम का दार्शनिक विवेचन

तीसरे सर्ग में दिनकर ने प्रेम और काम के संबंध पर गहरा दार्शनिक चिंतन प्रस्तुत किया है। पश्चिमी दर्शन में प्रेम को अक्सर दो भागों में बाँटा जाता है – प्लेटोनिक प्रेम जो आध्यात्मिक और शुद्ध है, और शारीरिक प्रेम जो निम्न और अपवित्र है। लेकिन

भारतीय दर्शन में इस तरह का कोई कठोर विभाजन नहीं है। भारतीय परंपरा में काम को धर्म, अर्थ और मोक्ष के साथ चार पुरुषार्थों में स्थान दिया गया है। दिनकर ने इसी भारतीय दृष्टिकोण को अपनी कविता में प्रस्तुत किया है। उर्वशी कहती है कि काम कोई पाप नहीं है बल्कि जीवन का एक स्वाभाविक और सुंदर पहलू है। जो समाज इसे दबाता है वह स्वयं को धोखा देता है और ढोंग में जीता है। प्रकृति ने काम को जीवन की निरंतरता के लिए बनाया है और इसमें कोई शर्म या पाप नहीं है। लेकिन जब काम प्रेम से जुड़ जाता है तो वह और भी सुंदर और पवित्र हो जाता है। बिना प्रेम के काम केवल एक शारीरिक क्रिया है लेकिन प्रेम के साथ यह एक आध्यात्मिक अनुभव बन जाता है। दिनकर ने यहाँ तांत्रिक दर्शन की झलक भी दिखाई है। तंत्र में काम को ब्रह्म तक पहुँचने का एक मार्ग माना गया है। यह विचार कि शरीर और आत्मा दो अलग चीजें नहीं हैं बल्कि एक ही सत्ता के दो पहलू हैं, तांत्रिक दर्शन का मूल है। पुरुरवा और उर्वशी का मिलन इसी तांत्रिक भावना का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ काम के माध्यम से वे परम आनंद और एकता का अनुभव करते हैं। पुरुरवा का चरित्र भी इस सर्ग में नए आयाम पाता है। वह केवल एक योद्धा या राजा नहीं है बल्कि एक संवेदनशील प्रेमी है जो उर्वशी की भावनाओं को समझता है और उनका सम्मान करता है। वह जानता है कि उर्वशी एक स्वतंत्र व्यक्ति है और उसका प्रेम किसी दबाव या बंधन के कारण नहीं होना चाहिए। यह आधुनिक प्रेम की अवधारणा है जहाँ दोनों पक्ष समान हैं और एक-दूसरे की स्वतंत्रता का सम्मान करते हैं। उर्वशी भी केवल एक सुंदर अप्सरा नहीं है। वह एक बुद्धिमान और विचारशील स्त्री है जो अपने अधिकारों और इच्छाओं के बारे में स्पष्ट है। वह पुरुरवा से कहती है कि वह उसकी संपत्ति नहीं है और न ही वह उसे नियंत्रित कर सकता है। उनका प्रेम पारस्परिक सम्मान और स्वतंत्रता पर आधारित होना चाहिए। यह नारी सशक्तिकरण का एक प्रारंभिक उदाहरण है जहाँ स्त्री अपनी आवाज़ उठाती है और अपने अधिकारों की मांग करती है।

शृंगार रस का सौंदर्यशास्त्र

तीसरे सर्ग में शृंगार रस की प्रधानता है लेकिन यह शृंगार संस्कृत काव्य की परंपरा से प्रभावित होते हुए भी आधुनिक संवेदना से युक्त है। संस्कृत साहित्य में शृंगार रस को रसराज कहा गया है और कालिदास, भारवि, माघ जैसे महाकवियों ने इसका अत्यंत



छायावादोत्तर
काव्य

सुंदर वर्णन किया है। दिनकर ने इसी परंपरा को हिंदी में आगे बढ़ाया है लेकिन उन्होंने इसमें अपनी मौलिकता भी जोड़ी है। शृंगार रस के दो भेद माने गए हैं – संयोग शृंगार और वियोग शृंगार। तीसरे सर्ग में मुख्यतः संयोग शृंगार है जहाँ नायक और नायिका का मिलन होता है। दिनकर ने इस मिलन का वर्णन अत्यंत कलात्मक और सूक्ष्म रूप से किया है। उन्होंने नायक-नायिका के शारीरिक सौंदर्य, उनकी भावनाओं, और उनके मिलन के क्षणों का इतना जीवंत चित्रण किया है कि पाठक स्वयं को उस दृश्य में पाता है। प्रकृति का वर्णन शृंगार रस में विशेष महत्व रखता है। दिनकर ने प्रकृति को केवल पृष्ठभूमि के रूप में नहीं बल्कि एक सहभागी के रूप में प्रस्तुत किया है। चाँदनी रात, मंद पवन, पुष्पों की सुगंध, और शांत वातावरण सभी पुरुरवा और उर्वशी के प्रेम को और गहरा बनाते हैं। प्रकृति मानो उनके प्रेम की साक्षी है और उनके आनंद में भागीदार है। यह प्रकृति और मानव के बीच के गहरे संबंध को दर्शाता है जो भारतीय साहित्य की एक प्रमुख विशेषता है। अलंकारों का प्रयोग भी इस सर्ग की विशेषता है। दिनकर ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति जैसे अलंकारों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग किया है। ये अलंकार केवल सजावट के लिए नहीं हैं बल्कि वे भावों को और अधिक स्पष्ट और प्रभावशाली बनाते हैं। उदाहरण के लिए जब उर्वशी के सौंदर्य की तुलना चंद्रमा से की जाती है तो यह केवल एक उपमा नहीं है बल्कि उसके शीतल और शांत सौंदर्य को दर्शाती है। छंद विधान भी इस सर्ग की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। दिनकर ने विभिन्न छंदों का प्रयोग किया है जो कथा की गति और भाव के अनुसार बदलते रहते हैं। कहीं मंद गति से चलने वाले छंद हैं तो कहीं तीव्र गति के छंद। यह छंद परिवर्तन कथा में विविधता और संगीतात्मकता लाता है। दिनकर की लयात्मक भाषा पाठक को मंत्रमुग्ध कर देती है और कविता का पाठ एक संगीतमय अनुभव बन जाता है।

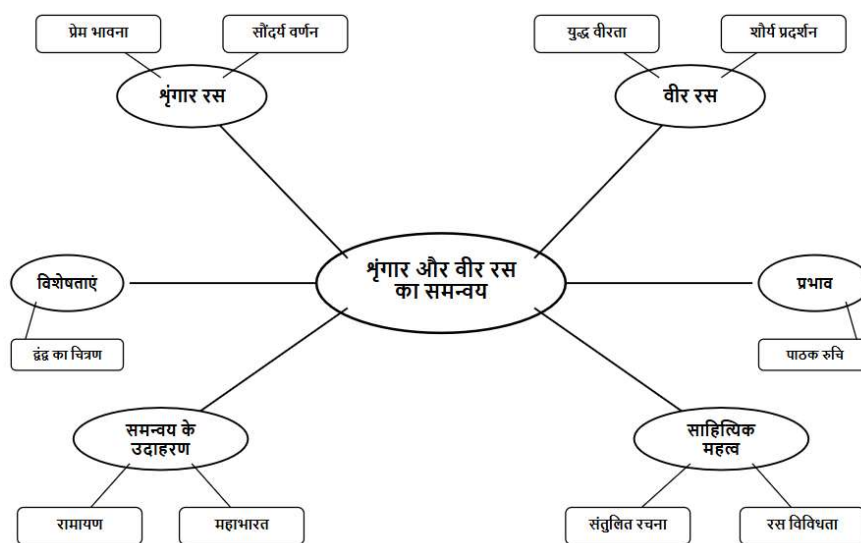
आधुनिक संदर्भ में तीसरे सर्ग का महत्व

तीसरे सर्ग का महत्व केवल साहित्यिक नहीं है बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक भी है। जिस समय यह महाकाव्य लिखा गया उस समय भारतीय समाज में यौनिकता और काम के बारे में खुली चर्चा एक वर्जित विषय था। धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं ने काम को एक पाप या शर्म का विषय बना दिया था। दिनकर ने साहसपूर्वक इस विषय को उठाया और दिखाया कि काम जीवन का एक स्वाभाविक और सुंदर पहलू है।

इकाई 3.2: शृंगार और वीर रस का समन्वय

प्रस्तावना

रामधारी सिंह दिनकर हिंदी साहित्य के उन विरल कवियों में से हैं जिन्होंने अपने काव्य में कोमल भावनाओं और ओजस्वी प्रवृत्तियों का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत किया है। उनकी काव्य यात्रा में शृंगार और वीर रस का यह सामंजस्य केवल तकनीकी कौशल नहीं, बल्कि उनके व्यक्तित्व की समग्रता का प्रतिबिंब है। जहाँ एक ओर वे राष्ट्रीय चेतना के प्रखर गायक के रूप में जाने जाते हैं, वहीं दूसरी ओर उनकी कृति 'उर्वशी' में प्रेम और सौंदर्य का जो चित्रण मिलता है, वह हिंदी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। दिनकर का यह द्वैत व्यक्तित्व उनके काव्य को एक अनूठी पहचान देता है, जहाँ वीरता और प्रेम, शौर्य और सौंदर्य, राष्ट्रभक्ति और मानवीय संवेदना एक साथ प्रवाहित होते हैं।



चित्र 3.2 शृंगार और वीर रस का समन्वय

भारतीय काव्यशास्त्र में रस सिद्धांत का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से लेकर आचार्यों की परंपरा में रस को काव्य की आत्मा माना गया है। नौ रसों में शृंगार और वीर दो प्रमुख रस हैं जो अपनी विशिष्टता और प्रभाव के कारण विशेष महत्व रखते हैं। शृंगार को रसराज कहा गया है क्योंकि यह मानव जीवन की सबसे मूल भावना प्रेम से संबंधित है। वीर रस मनुष्य की शक्ति, पराक्रम और साहस



छायावादोत्तर
काव्य

का प्रतीक है। दिनकर ने अपने काव्य में इन दोनों रसों को न केवल पृथक-पृथक प्रयोग किया है, बल्कि उनका एक अद्वितीय समन्वय भी प्रस्तुत किया है जो उनकी काव्य-कला की परिपक्वता का प्रमाण है।

3.2.1 शृंगार रस का विवेचन

शृंगार रस का भारतीय काव्यशास्त्र में अत्यंत विशिष्ट स्थान है। इसे रसराज की संज्ञा इसलिए दी गई है क्योंकि यह मानव जीवन की सबसे स्वाभाविक और सार्वभौमिक भावना प्रेम से उत्पन्न होता है। शृंगार रस का स्थायी भाव रति है, जो प्रियतम के प्रति आकर्षण, लगाव और प्रेम की भावना को व्यक्त करता है। यह रस मानव हृदय की कोमल अनुभूतियों, सौंदर्य की अनुभूति और प्रेम की विविध अवस्थाओं का चित्रण करता है। शृंगार रस के दो प्रमुख भेद हैं – संयोग शृंगार और वियोग शृंगार। संयोग शृंगार में प्रेमी-प्रेमिका के मिलन, साथ रहने के सुख, और प्रेम की पूर्णता का चित्रण होता है। इसमें नायक-नायिका के रूप-सौंदर्य, उनके प्रेम-व्यापार, मिलन के क्षण और प्रेम की परिपूर्णता की अनुभूति व्यक्त होती है। वहीं वियोग शृंगार में विरह की पीड़ा, प्रिय के बिछोह की वेदना, प्रतीक्षा की व्यथा और मिलन की आकांक्षा का मार्मिक चित्रण होता है। वियोग में प्रेम की गहराई और अधिक उजागर होती है क्योंकि दूरी प्रेम की तीव्रता को बढ़ा देती है। दिनकर के काव्य में शृंगार रस का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण उनकी कालजयी रचना 'उर्वशी' में मिलता है। यह खंडकाव्य पुरुरवा और उर्वशी की प्रेम कथा पर आधारित है, जो वैदिक साहित्य और पुराणों में वर्णित है। दिनकर ने इस प्राचीन कथा को आधुनिक संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है, जहाँ शृंगार रस केवल शारीरिक आकर्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि आध्यात्मिक और दार्शनिक आयाम भी प्राप्त कर लेता है। उर्वशी में दिनकर ने प्रेम को मानव जीवन की सर्वोच्च अनुभूति के रूप में चित्रित किया है। उर्वशी में संयोग शृंगार के अनेक मनोहारी दृश्य हैं। पुरुरवा और उर्वशी के प्रथम मिलन का वर्णन अत्यंत सुंदर और भावपूर्ण है। दिनकर ने नायक-नायिका के रूप सौंदर्य का चित्रण अत्यंत कलात्मक शैली में किया है। उर्वशी के सौंदर्य को देखकर पुरुरवा मुग्ध हो जाते हैं और उनके मन में प्रेम का उदय होता है। यहाँ दिनकर ने सौंदर्य के प्रति आकर्षण को स्वाभाविक और पवित्र भाव के रूप में प्रस्तुत किया है। उर्वशी का रूप-वर्णन करते हुए दिनकर ने प्रकृति के

सौंदर्य और स्त्री-सौंदर्य में समानता स्थापित की है। उनकी शैली में जो सहजता और प्रवाह है, वह पाठक को सहज ही उस काव्य-संसार में ले जाता है।

उर्वशी में वियोग शृंगार का चित्रण भी उतना ही मार्मिक और प्रभावशाली है। जब उर्वशी स्वर्ग लौट जाती है और पुरुरवा पृथ्वी पर अकेले रह जाते हैं, तब विरह की जो पीड़ा व्यक्त होती है, वह अत्यंत हृदयस्पर्शी है। पुरुरवा की व्यथा केवल एक प्रेमी की व्यथा नहीं है, बल्कि उसमें मानवीय नियति की त्रासदी भी निहित है। दिनकर ने विरह की इस स्थिति को केवल दुख के रूप में नहीं, बल्कि प्रेम की गहराई और प्रामाणिकता के प्रमाण के रूप में चित्रित किया है। वियोग में पुरुरवा का चरित्र और अधिक परिपक्व और गंभीर होता जाता है। दिनकर के शृंगार चित्रण की एक विशेषता यह है कि वे कामुकता और आध्यात्मिकता के बीच एक सूक्ष्म संतुलन बनाए रखते हैं। उर्वशी में प्रेम का जो स्वरूप है, वह केवल देह तक सीमित नहीं है, बल्कि आत्मा के स्तर तक पहुँचता है। पुरुरवा और उर्वशी का प्रेम शारीरिक आकर्षण से आरंभ होकर आत्मिक एकता की ओर बढ़ता है। दिनकर ने यह दिखाया है कि सच्चा प्रेम केवल इंद्रिय-सुख की कामना नहीं है, बल्कि दो आत्माओं का मिलन है, जहाँ व्यक्तित्व की सीमाएँ विलीन हो जाती हैं। उर्वशी में दिनकर ने प्रेम को मानव जीवन का परम लक्ष्य और सर्वोच्च मूल्य के रूप में स्थापित किया है। पुरुरवा के माध्यम से दिनकर यह संदेश देते हैं कि प्रेम ही मनुष्य को पूर्णता की अनुभूति कराता है। यह प्रेम केवल भावनात्मक नहीं है, बल्कि दार्शनिक और आध्यात्मिक आयाम भी रखता है। उर्वशी में प्रेम को मोक्ष के समकक्ष रखा गया है। दिनकर का मानना है कि प्रेम के माध्यम से मनुष्य परमात्मा की अनुभूति कर सकता है। यह अद्वैत दर्शन का काव्यात्मक रूपांतरण है, जहाँ प्रेमी और प्रेमिका के मिलन में आत्मा और परमात्मा के मिलन का प्रतीक देखा जा सकता है। दिनकर के शृंगार चित्रण में प्रकृति का भी महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने प्रकृति को केवल पृष्ठभूमि के रूप में नहीं, बल्कि एक सक्रिय तत्व के रूप में प्रयोग किया है। प्रेम के विविध मनोभावों को व्यक्त करने के लिए दिनकर ने प्रकृति के विभिन्न रूपों का सहारा लिया है। चाँदनी रात, फूलों की सुगंध, मंद पवन, कोयल की कूक – ये सभी प्रेम के वातावरण को और अधिक रोमांचक और भावपूर्ण बनाते हैं। प्रकृति के सौंदर्य और प्रेम के सौंदर्य में दिनकर ने एक सुंदर समानता स्थापित की है।

उर्वशी में शृंगार रस का जो स्वरूप है, वह पारंपरिक संस्कृत काव्य की परंपरा से प्रभावित होते हुए भी आधुनिक संवेदना से युक्त है। दिनकर ने कालिदास के अभिज्ञान शाकुंतलम् और अन्य संस्कृत नाटकों से प्रेरणा ली है, लेकिन उनका दृष्टिकोण पूर्णतया आधुनिक है। वे प्रेम को एक स्त्री-पुरुष के समान संबंध के रूप में देखते हैं, जहाँ दोनों का व्यक्तित्व महत्वपूर्ण है। उर्वशी केवल एक सुंदर नारी नहीं है, बल्कि एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है जो अपने निर्णय स्वयं लेती है। इसी प्रकार पुरुरवा भी केवल एक राजा नहीं, बल्कि एक संवेदनशील मनुष्य है जो प्रेम की गहराई को समझता है। दिनकर के शृंगार चित्रण में भाषा और शैली का विशेष महत्व है। उन्होंने उर्वशी में जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह संस्कृतनिष्ठ होते हुए भी सरल और प्रवाहमय है। उनके शब्द-चयन में कोमलता और माधुर्य है जो शृंगार रस के अनुकूल है। उन्होंने लंबी-लंबी उपमाओं और रूपकों का प्रयोग किया है जो काव्य को और अधिक सुंदर बनाते हैं। छंद योजना भी अत्यंत सुंदर है। दिनकर ने विभिन्न छंदों का प्रयोग किया है जो भाव के अनुसार बदलते रहते हैं।

3.2.2 वीर रस का विवेचन

वीर रस भारतीय काव्यशास्त्र में शृंगार के बाद दूसरा सबसे महत्वपूर्ण रस माना जाता है। इसका स्थायी भाव उत्साह है, जो मनुष्य में शौर्य, पराक्रम, साहस और आत्मविश्वास की भावना को जगाता है। वीर रस में युद्ध, संघर्ष, बलिदान और राष्ट्रीय चेतना का चित्रण होता है। यह रस मनुष्य की शक्ति और सामर्थ्य का प्रतीक है। दिनकर वीर रस के सर्वश्रेष्ठ कवियों में से एक माने जाते हैं। उनकी अधिकांश प्रसिद्धि वीर रस की कविताओं के कारण ही है। दिनकर का काव्य स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उभरा और विकसित हुआ। उस समय भारत में राष्ट्रीय चेतना का जागरण हो रहा था। लोगों में स्वतंत्रता की चाह प्रबल थी और अंग्रेजी शासन के विरुद्ध संघर्ष चल रहा था। इस समय भारतीय जनता को प्रेरणा और उत्साह की आवश्यकता थी। दिनकर ने अपनी ओजस्वी कविताओं के माध्यम से यह कार्य किया। उनकी कविताएँ क्रांति का आह्वान करती थीं, युवाओं में जोश भरती थीं और राष्ट्रीय गौरव की भावना जगाती थीं। दिनकर की वीर कविताओं में सबसे प्रसिद्ध रचनाएँ हैं – 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी', 'परशुराम की प्रतीक्षा' और अनेक छोटी कविताएँ जो विभिन्न संग्रहों में संकलित हैं। 'हिमालय' कविता में दिनकर ने हिमालय को भारत के गौरव और शक्ति का प्रतीक बनाया है।

हिमालय की ऊँचाई, उसकी अटलता और उसका वैभव भारत की शक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस कविता में दिनकर की भाषा अत्यंत ओजस्वी है और प्रत्येक पंक्ति में राष्ट्रीय गौरव की भावना झलकती है।

'कुरुक्षेत्र' दिनकर का एक महत्वपूर्ण खंडकाव्य है जो महाभारत के युद्ध की पृष्ठभूमि में लिखा गया है। इसमें युद्ध और शांति, हिंसा और अहिंसा के बीच एक संवाद प्रस्तुत किया गया है। युद्ध समाप्त होने के बाद भीष्म पितामह धर्म और राजनीति पर उपदेश देते हैं। यहाँ दिनकर ने अर्जुन के माध्यम से अहिंसा का समर्थन करने का प्रयास किया है, लेकिन अंततः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कभी-कभी अन्याय के विरुद्ध युद्ध आवश्यक होता है। यह रचना दिनकर के राजनीतिक और दार्शनिक विचारों को प्रकट करती है। 'रश्मिरथी' दिनकर की सर्वाधिक लोकप्रिय रचनाओं में से एक है। यह कर्ण की कथा पर आधारित है, जो महाभारत का एक त्रासद नायक है। कर्ण का जन्म अवैध था और उसे समाज में उचित सम्मान नहीं मिला, फिर भी वह अपने साहस, पराक्रम और दानशीलता के लिए प्रसिद्ध हुआ। दिनकर ने कर्ण को समाज द्वारा उपेक्षित वर्ग का प्रतिनिधि बनाया है। रश्मिरथी में वीर रस के साथ-साथ करुण रस का भी सुंदर समन्वय है। कर्ण का चरित्र अत्यंत प्रेरणादायक है क्योंकि वह विपरीत परिस्थितियों में भी अपने आत्मसम्मान को बनाए रखता है। दिनकर की वीर कविताओं की एक विशेषता यह है कि वे केवल युद्ध और हिंसा का महिमामंडन नहीं करतीं, बल्कि धर्म और न्याय के लिए संघर्ष को प्रेरित करती हैं। दिनकर का मानना था कि अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। उन्होंने अपनी कविताओं में कायरता और निष्क्रियता की निंदा की है। उनका विश्वास था कि जो व्यक्ति अन्याय को देखकर भी चुप रहता है, वह भी अन्यायी के समान दोषी है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' एक और महत्वपूर्ण रचना है जिसमें दिनकर ने क्रांति का आह्वान किया है। इस कविता में परशुराम को क्षत्रियों के अत्याचार का विनाशक बताया गया है। दिनकर ने समाज में व्याप्त अन्याय, शोषण और असमानता के विरुद्ध आवाज उठाई है। वे कहते हैं कि यदि समाज में न्याय नहीं होगा तो परशुराम जैसे क्रांतिकारी का आगमन अवश्यंभावी है। यह कविता दिनकर की क्रांतिकारी चेतना का प्रमाण है। दिनकर की वीर कविताओं में राष्ट्रीय चेतना और देशभक्ति की प्रबल भावना है। उन्होंने भारत के प्राचीन गौरव को याद दिलाया और नवीन भारत के निर्माण के लिए प्रेरित किया।

उनकी कविताओं में भारतीय इतिहास के वीर पुरुषों का वर्णन है जिन्होंने देश की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। शिवाजी, राणा प्रताप, चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह जैसे वीरों के प्रति दिनकर की श्रद्धा उनकी कविताओं में प्रकट होती है। दिनकर की वीर कविताओं की भाषा अत्यंत ओजस्वी और प्रभावशाली है। उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया है जो कविता को गरिमा प्रदान करते हैं। उनकी शैली में प्रवाह और शक्ति दोनों हैं। लंबे-लंबे समासों का प्रयोग, ध्वन्यात्मक शब्दों का चयन और छंद की गति – ये सभी तत्व मिलकर कविता को वीर रस से भर देते हैं। दिनकर के पास शब्दों का अद्भुत भंडार था और वे भाषा के प्रयोग में अत्यंत कुशल थे। दिनकर की वीर कविताओं में अलंकारों का भी सुंदर प्रयोग है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों से कविता सजी हुई है। उन्होंने प्रकृति के उग्र रूपों – आंधी, तूफान, बिजली, आग – का प्रयोग वीरता के प्रतीक के रूप में किया है। पर्वत, समुद्र, सूर्य जैसे विशाल और शक्तिशाली प्राकृतिक तत्व दिनकर की वीर कविताओं में बार-बार आते हैं और वीरों की तुलना में प्रयुक्त होते हैं। छंद योजना भी दिनकर की वीर कविताओं की विशेषता है। उन्होंने वीर रस के लिए ओजपूर्ण छंदों का चयन किया है। वीर छंद, भुजंगप्रयात छंद आदि का प्रयोग उनकी कविताओं को लयात्मक और प्रभावशाली बनाता है। छंद की गति वीरता की भावना को और अधिक तीव्र करती है। दिनकर छंद के नियमों का पालन करते हुए भी कविता में स्वाभाविकता बनाए रखने में सफल रहे हैं। दिनकर की वीर कविताओं का समकालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों से गहरा संबंध है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उनकी कविताएँ स्वतंत्रता सेनानियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनीं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी दिनकर ने सामाजिक न्याय, समानता और लोकतंत्र की रक्षा के लिए लिखना जारी रखा। उनकी कविताओं में सामाजिक चेतना और राजनीतिक जागरूकता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

3.2.3 दोनों रसों का समन्वय

दिनकर की काव्य-कला की सबसे बड़ी विशेषता शृंगार और वीर रस का अद्भुत समन्वय है। सामान्यतः ये दोनों रस एक-दूसरे से भिन्न और विपरीत प्रकृति के माने जाते हैं। शृंगार रस कोमल भावनाओं, प्रेम और सौंदर्य से संबंधित है, जबकि वीर रस शौर्य, पराक्रम और उत्साह से। शृंगार में कोमलता है तो वीर में कठोरता, शृंगार में

माधुर्य है तो वीर में ओज। लेकिन दिनकर ने अपने काव्य में इन दोनों रसों को इस प्रकार प्रयुक्त किया है कि वे एक-दूसरे के पूरक बन जाते हैं।

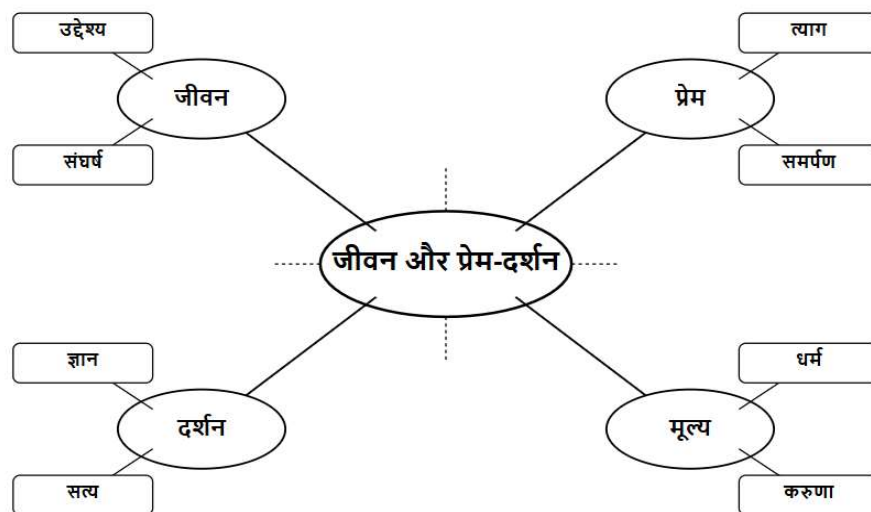
दिनकर के व्यक्तित्व में ही यह द्वैत मौजूद था। एक ओर वे कोमल हृदय के संवेदनशील कवि थे जो प्रेम और सौंदर्य की सराहना कर सकते थे, दूसरी ओर वे प्रखर राष्ट्रवादी थे जो अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने से नहीं हिचकते थे। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था और इसी कारण उनका काव्य भी विविधता से भरा है। दिनकर ने स्वयं कहा था कि वे न तो पूर्णतया रोमांटिक हैं और न ही पूर्णतया क्रांतिकारी, बल्कि दोनों का मिश्रण हैं। दिनकर ने प्रेम और वीरता को दो विरोधी तत्व नहीं, बल्कि जीवन के दो आवश्यक पहलू माने हैं। उनका मानना था कि पूर्ण मनुष्य वह है जो प्रेम करना भी जानता है और लड़ना भी। केवल प्रेम से जीवन अधूरा रह जाता है और केवल संघर्ष से जीवन कठोर हो जाता है।

इकाई 3.3: जीवन और प्रेम-दर्शन

जीवन और प्रेम-दर्शन: रामधारी सिंह दिनकर की दार्शनिक चेतना

प्रस्तावना

रामधारी सिंह दिनकर हिंदी साहित्य के उन विरल कवियों में से हैं जिन्होंने अपने काव्य में राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक यथार्थ और दार्शनिक चिंतन का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत किया है। दिनकर का साहित्य केवल काव्य-सौंदर्य तक सीमित नहीं है, बल्कि वह जीवन के गहन प्रश्नों, मानवीय संघर्षों और प्रेम की विविध अनुभूतियों को स्पर्श करता है। उनकी रचनाओं में जीवन-दर्शन और प्रेम-दर्शन एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। वे मानते थे कि जीवन संघर्षों और चुनौतियों का नाम है, जहाँ मनुष्य को अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए निरंतर आगे बढ़ना होता है। प्रेम उनके लिए केवल स्त्री-पुरुष के आकर्षण तक सीमित नहीं था, बल्कि वह मानवता, समाज और जीवन के प्रति व्यापक संवेदना का प्रतीक था।



चित्र 3.3 जीवन और प्रेम-दर्शन

दिनकर का जीवन-दर्शन मानववाद, आशावाद और कर्मयोग के त्रिकोण पर आधारित है। उन्होंने मनुष्य की गरिमा को सर्वोपरि माना और यह विश्वास व्यक्त किया कि मानव अपने पुरुषार्थ और संकल्प से किसी भी विपरीत परिस्थिति को पराजित कर सकता

है। उनका प्रेम-दर्शन भी उतना ही व्यापक और बहुआयामी है, जो शारीरिक आकर्षण से लेकर आध्यात्मिक उत्कर्ष तक की यात्रा को समेटे हुए है। उनकी कृति 'उर्वशी' में यह दार्शनिक चिंतन अपने चरम पर पहुँचता है, जहाँ देवत्व और मनुष्यत्व, नश्वरता और शाश्वतता, तथा प्रेम की परिणति जैसे गहन विषयों का अन्वेषण किया गया है। इस अध्ययन में हम दिनकर के जीवन-दर्शन और प्रेम-दर्शन के विभिन्न पहलुओं को समझने का प्रयास करेंगे। हम देखेंगे कि किस प्रकार उनका मानवतावादी दृष्टिकोण उनके समस्त साहित्य में व्याप्त है, कैसे वे आशावाद और संघर्ष को जीवन का अनिवार्य अंग मानते हैं, और कैसे कर्मयोग उनके दार्शनिक चिंतन का केंद्रीय तत्व बनता है। प्रेम-दर्शन के संदर्भ में हम प्रेम की व्यापकता, काम और प्रेम के बीच के सूक्ष्म संबंध, और आध्यात्मिक प्रेम की अवधारणा पर विचार करेंगे। अंत में, उर्वशी के दार्शनिक आयामों का विश्लेषण करते हुए हम समझेंगे कि किस प्रकार यह महाकाव्य दिनकर के संपूर्ण जीवन और प्रेम दर्शन का प्रतिनिधित्व करता है।

3.3.1 जीवन दर्शन

मानववाद: दिनकर के काव्य का केंद्रीय तत्व

दिनकर के काव्य का मूल स्वर मानववादी है। उन्होंने अपने संपूर्ण साहित्य में मनुष्य को केंद्र में रखकर विचार किया है। उनका मानववाद किसी संकीर्ण या सीमित अवधारणा तक सीमित नहीं है, बल्कि वह व्यापक और समावेशी है। दिनकर के लिए मानव वह प्राणी है जो अपनी संवेदनाओं, विचारों और कर्मों से इस धरती को स्वर्ग बना सकता है। वे मनुष्य की अंतर्निहित शक्ति और क्षमता में अटूट विश्वास रखते थे। दिनकर का मानववाद भारतीय और पाश्चात्य दोनों परंपराओं से प्रभावित है। एक ओर वे वेदांत और गीता के कर्मयोग से प्रेरित हैं, तो दूसरी ओर पाश्चात्य मानववाद और अस्तित्ववाद से भी प्रभावित हैं। उनका विश्वास है कि मनुष्य केवल देवताओं की कृपा या भाग्य के भरोसे नहीं बैठ सकता, बल्कि उसे अपने पुरुषार्थ और संघर्ष से अपना भाग्य स्वयं निर्मित करना होता है। उनकी कविता 'हिमालय' में यह भाव स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है, जहाँ वे हिमालय को मानव साहस और पराक्रम का प्रतीक मानते हैं। दिनकर का मानववाद सामाजिक न्याय और समानता की भावना से ओतप्रोत है। वे किसी भी प्रकार के शोषण, अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध थे। उनकी रचना 'कुरुक्षेत्र' में यह स्पष्ट होता है कि वे युद्ध के विरोधी नहीं थे, बल्कि अन्याय के विरुद्ध



छायावादोत्तर
काव्य

संघर्ष को आवश्यक मानते थे। उनका मानना था कि जहाँ अन्याय हो, वहाँ मौन रहना भी पाप है। मनुष्य का धर्म है कि वह अपने और दूसरों के अधिकारों के लिए संघर्ष करे।

दिनकर ने अपनी कविताओं में बार-बार यह संदेश दिया है कि मनुष्य की गरिमा सर्वोपरि है। वे जाति, धर्म, भाषा या क्षेत्र के आधार पर किसी भेदभाव को स्वीकार नहीं करते। उनका मानववाद सार्वभौमिक है, जो समस्त मानवता को एक सूत्र में बांधता है। उन्होंने लिखा है कि मनुष्य की पहचान उसकी मानवीय गुणवत्ता से होनी चाहिए, न कि उसके जन्म या स्थिति से। यह दृष्टिकोण आधुनिक मानववाद के सबसे करीब है, जो व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे में विश्वास करता है। दिनकर के मानववाद में एक और महत्वपूर्ण पहलू है – मनुष्य के आंतरिक विकास पर बल। वे मानते थे कि बाह्य परिवर्तन तभी सार्थक हो सकता है जब मनुष्य का आंतरिक विकास हो। उन्होंने अपनी रचनाओं में मनुष्य को आत्मचिंतन और आत्मविकास की प्रेरणा दी है। उनका विश्वास था कि जब मनुष्य अपने भीतर की दिव्यता को पहचान लेता है, तभी वह सच्चे अर्थों में मानव बनता है। यह दृष्टिकोण उन्हें भारतीय दार्शनिक परंपरा से जोड़ता है, जहाँ आत्मज्ञान को सर्वोच्च लक्ष्य माना गया है। दिनकर का मानववाद केवल सिद्धांत तक सीमित नहीं है, बल्कि वह व्यावहारिक भी है। उन्होंने अपने समय की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं पर गहराई से विचार किया और उनके समाधान के लिए मानवीय मूल्यों को आधार बनाया। वे मानते थे कि जब तक समाज में न्याय, समानता और स्वतंत्रता नहीं होगी, तब तक मानववाद केवल एक खोखला शब्द रह जाएगा। इसलिए उन्होंने अपनी कविताओं में सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता पर बल दिया और युवाओं को संघर्ष के लिए प्रेरित किया।

आशावाद और संघर्ष: जीवन की द्वंद्वात्मकता

दिनकर के जीवन-दर्शन का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है – आशावाद और संघर्ष का समन्वय। उन्होंने जीवन को एक युद्धक्षेत्र के रूप में देखा, जहाँ मनुष्य को निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। लेकिन यह संघर्ष निराशा या हताशा से प्रेरित नहीं है, बल्कि एक गहरे आशावाद से उत्पन्न होता है। दिनकर का विश्वास था कि मनुष्य में असीम

शक्ति है और वह अपने संघर्ष से किसी भी विपरीत परिस्थिति को अनुकूल बना सकता है। दिनकर की कविताओं में आशावाद का स्वर बहुत मुखर है। उन्होंने अंधकार में भी प्रकाश की किरण देखी है। उनका मानना था कि कितनी भी कठिन परिस्थितियाँ हों, मनुष्य को हार नहीं माननी चाहिए। उनकी प्रसिद्ध पंक्तियाँ हैं – "सिंहासन खाली करो कि जनता आती है"। यह पंक्ति न केवल राजनीतिक परिवर्तन की बात करती है, बल्कि यह एक गहरे आशावाद की अभिव्यक्ति है कि जनता में इतनी शक्ति है कि वह अन्यायी शासकों को उखाड़ फेंक सकती है। दिनकर का आशावाद यथार्थवादी है। वे जीवन की कठोर सच्चाइयों से परिचित थे और उन्हें छिपाने का प्रयास नहीं करते। उन्होंने गरीबी, शोषण, अन्याय और भ्रष्टाचार को अपनी कविताओं में बेबाकी से प्रस्तुत किया है। लेकिन इन सबके बावजूद उनका विश्वास था कि मनुष्य इन समस्याओं का समाधान खोज सकता है। यह आशावाद उन्हें निराशावादी या पलायनवादी कवियों से अलग करता है।

संघर्ष दिनकर के जीवन-दर्शन का अभिन्न अंग है। उन्होंने संघर्ष को जीवन का सार माना है। उनका मानना था कि बिना संघर्ष के कोई प्रगति संभव नहीं है। प्रकृति में भी संघर्ष है – दिन और रात का संघर्ष, सृजन और विनाश का संघर्ष, जीवन और मृत्यु का संघर्ष। मनुष्य भी इस संघर्ष से अलग नहीं रह सकता। लेकिन दिनकर का संघर्ष विध्वंसात्मक नहीं, बल्कि सृजनात्मक है। वह एक बेहतर समाज और बेहतर जीवन के निर्माण के लिए है। दिनकर ने अपनी कविताओं में संघर्षशील मनुष्य का महिमागान किया है। उनके नायक वे लोग हैं जो विपरीत परिस्थितियों में भी हार नहीं मानते। रश्मिरथी में कर्ण उनका आदर्श नायक है, जो समाज की उपेक्षा और अपमान सहकर भी अपने संघर्ष को जारी रखता है। कुरुक्षेत्र में भी वे युद्ध को अनिवार्य मानते हैं जब सभी शांतिपूर्ण उपाय विफल हो जाएँ। उनका संदेश है कि अन्याय के समक्ष समर्पण करना सबसे बड़ा पाप है। आशावाद और संघर्ष के बीच का यह संबंध दिनकर के जीवन-दर्शन को गतिशील बनाता है। वे स्थिर या जड़ जीवन में विश्वास नहीं करते। उनका मानना है कि जीवन एक निरंतर प्रवाह है, जहाँ परिवर्तन ही एकमात्र स्थायी तत्व है। मनुष्य को इस प्रवाह के साथ चलना होता है, लेकिन केवल बहना नहीं, बल्कि दिशा भी देनी होती है। यह दिशा आशावाद से मिलती है और शक्ति संघर्ष से। दिनकर के आशावाद में एक सामूहिक चेतना भी है। वे व्यक्तिगत सफलता से अधिक



छायावादोत्तर
काव्य

सामूहिक प्रगति में विश्वास करते थे। उनका मानना था कि जब समाज का हर व्यक्ति संघर्ष करता है, तभी वास्तविक परिवर्तन संभव है। इसलिए उनकी कविताओं में जनजागरण का स्वर बहुत मुखर है। वे चाहते थे कि हर व्यक्ति अपनी शक्ति को पहचाने और अन्याय के विरुद्ध खड़ा हो।

कर्मयोग: दिनकर के दर्शन का आधार

दिनकर के जीवन-दर्शन में कर्मयोग का विशेष महत्व है। वे गीता के कर्मयोग से गहराई से प्रभावित थे और उन्होंने इसे आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि मनुष्य का धर्म कर्म करना है, फल की चिंता किए बिना। यह दृष्टिकोण उन्हें भारतीय दार्शनिक परंपरा से जोड़ता है, लेकिन साथ ही आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुकूल भी बनाता है। दिनकर के कर्मयोग में निष्क्रियता या निर्लिप्तता के लिए कोई स्थान नहीं है। वे सक्रिय जीवन में विश्वास करते थे। उनका मानना था कि कर्म ही मनुष्य की पहचान है। जो व्यक्ति कर्म नहीं करता, वह जीवित होकर भी मृत के समान है। उन्होंने अपनी कविताओं में बार-बार कर्म की महिमा का गान किया है। उनका कहना है कि कर्म से ही मनुष्य अपनी नियति का निर्माण करता है। दिनकर का कर्मयोग केवल व्यक्तिगत मोक्ष या आध्यात्मिक उन्नति तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सामाजिक परिवर्तन का भी माध्यम है। उनका विश्वास था कि जब मनुष्य निस्वार्थ भाव से समाज के लिए कर्म करता है, तभी वास्तविक प्रगति संभव है। यह दृष्टिकोण गांधी के कर्मयोग से भी मेल खाता है, जो सेवा और त्याग को महत्व देता है। दिनकर के कर्मयोग में धैर्य और दृढ़ता का भी महत्व है। वे मानते थे कि कर्म का फल तुरंत नहीं मिलता, बल्कि उसके लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है। लेकिन यह प्रतीक्षा निष्क्रिय नहीं, बल्कि सक्रिय होनी चाहिए। मनुष्य को निरंतर कर्म करते रहना चाहिए और समय आने पर फल अवश्य मिलता है। यह दृष्टिकोण मनुष्य को हताशा से बचाता है और उसे निरंतर प्रयासरत रखता है। दिनकर का कर्मयोग साहस और पराक्रम से भी जुड़ा है। वे कायरता या पलायन के विरोधी थे। उनका मानना था कि जीवन में कठिनाइयाँ आती हैं, लेकिन उनसे भागना नहीं, बल्कि उनका सामना करना चाहिए। यह साहस कर्म से ही आता है। जब मनुष्य कर्म करता है, तो उसमें आत्मविश्वास आता है और वह किसी भी चुनौती का सामना कर सकता है।

दिनकर के कर्मयोग में एक और महत्वपूर्ण पहलू है – कर्म की शुद्धता। उनका मानना था कि केवल कर्म करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि कर्म सही और नैतिक होना चाहिए। वे अनैतिक या स्वार्थपूर्ण कर्म के विरोधी थे। उनका विश्वास था कि जो कर्म समाज के हित में हो, दूसरों की भलाई के लिए हो, वही सच्चा कर्म है। यह दृष्टिकोण उनके मानववाद से भी जुड़ा है। दिनकर ने अपनी रचनाओं में कर्मयोग को व्यावहारिक जीवन से जोड़ा है। उन्होंने दिखाया कि कर्मयोग केवल एक दार्शनिक सिद्धांत नहीं है, बल्कि वह जीवन जीने का एक तरीका है। चाहे वह किसान हो, मजदूर हो, शिक्षक हो या राजनेता, हर किसी को अपने कर्म के प्रति समर्पित होना चाहिए। जब समाज का हर व्यक्ति अपने कर्तव्य का पालन करता है, तभी एक आदर्श समाज का निर्माण संभव है। कर्मयोग के संदर्भ में दिनकर ने युद्ध और शांति के प्रश्न पर भी विचार किया है। उनका मानना था कि शांति वांछनीय है, लेकिन यदि अन्याय हो रहा हो तो युद्ध भी आवश्यक हो जाता है। यह युद्ध भी एक प्रकार का कर्म है, जो धर्म की रक्षा के लिए आवश्यक है। कुरुक्षेत्र में वे इसी विषय को उठाते हैं और निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जब सभी उपाय विफल हो जाएँ, तो युद्ध अनिवार्य है। दिनकर का कर्मयोग आधुनिक युग के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। आज जब समाज में निराशा, हताशा और निष्क्रियता बढ़ रही है, दिनकर का संदेश अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। वे हमें याद दिलाते हैं कि कर्म ही जीवन का आधार है और कर्म से ही हम अपने और समाज के भविष्य का निर्माण कर सकते हैं।

3.3.2 प्रेम-दर्शन

प्रेम की व्यापकता: सीमाओं से परे

दिनकर के प्रेम-दर्शन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है इसकी व्यापकता। उनके लिए प्रेम केवल स्त्री-पुरुष के बीच का आकर्षण नहीं है, बल्कि यह एक सार्वभौमिक भावना है जो मनुष्य को समस्त सृष्टि से जोड़ती है। दिनकर का प्रेम संकीर्ण सीमाओं से परे है और वह मानवता के व्यापक क्षितिज को स्पर्श करता है। दिनकर की कविताओं में प्रेम के विभिन्न रूप दिखाई देते हैं। एक ओर वे मातृभूमि के प्रति प्रेम की बात करते हैं, जो देशभक्ति का रूप लेता है। उनकी क्रांतिकारी कविताओं में यह प्रेम इतना तीव्र है कि वह बलिदान तक जाने को तैयार है। दूसरी ओर वे मानवता के प्रति प्रेम की बात



छायावादोत्तर काव्य

करते हैं, जो सभी मनुष्यों को एक सूत्र में बांधता है। यह प्रेम जाति, धर्म, भाषा या देश की सीमाओं को नहीं मानता।

दिनकर के प्रेम में प्रकृति के प्रति भी गहरा लगाव है। उनकी कविताओं में प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं है, बल्कि एक जीवंत उपस्थिति है। वे पहाड़ों, नदियों, वनों और आकाश से प्रेम करते हैं। उनकी 'हिमालय' कविता में यह प्रेम अपने चरम पर है। वे हिमालय को केवल एक पर्वत नहीं, बल्कि भारत की आत्मा और गौरव के रूप में देखते हैं। यह प्रेम भौतिक से अधिक भावनात्मक और आध्यात्मिक है। दिनकर का प्रेम संघर्षशील भी है। वे मानते थे कि सच्चा प्रेम चुनौतियों का सामना करता है और उन्हें पार करता है। उनकी रचना 'उर्वशी' में पुरुरवा और उर्वशी का प्रेम इसी प्रकार का है। यह प्रेम देवत्व और मनुष्यत्व की सीमाओं को लाँघता है और एक नए आयाम की खोज करता है। दिनकर का संदेश है कि प्रेम कोई स्थिर भावना नहीं है, बल्कि यह एक गतिशील यात्रा है जो मनुष्य को निरंतर ऊँचाइयों की ओर ले जाती है। दिनकर के प्रेम में त्याग और समर्पण का भी महत्व है। वे मानते थे कि सच्चा प्रेम स्वार्थरहित होता है। जब मनुष्य किसी से प्रेम करता है, तो वह अपने को भूल जाता है और प्रिय की खुशी में अपनी खुशी खोजता है। यह प्रेम भौतिक लाभ या सुख की खोज नहीं है, बल्कि यह एक आंतरिक अनुभूति है जो मनुष्य को पूर्णता की अनुभूति कराती है। दिनकर का प्रेम सृजनात्मक भी है। वे मानते थे कि प्रेम मनुष्य में सृजन की शक्ति जगाता है। कवि, चित्रकार, संगीतकार या किसी भी कलाकार की सृजनशीलता प्रेम से ही प्रेरित होती है। प्रेम मनुष्य को संवेदनशील बनाता है और उसे जीवन की सूक्ष्मताओं को समझने की क्षमता देता है।

3.4 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

3.4.1 बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs):

1. "उर्वशी" के कवि कौन हैं?
 - a) सुमित्रानंदन पंत
 - b) जयशंकर प्रसाद
 - c) रामधारी सिंह 'दिनकर'
 - d) हरिवंश राय बच्चन✓ उत्तर: c) रामधारी सिंह 'दिनकर'
2. "उर्वशी" कविता का प्रमुख विषय क्या है?
 - a) सामाजिक अन्याय
 - b) प्रेम और जीवन का दर्शन
 - c) राजनीतिक चेतना
 - d) भक्ति और अध्यात्म✓ उत्तर: b) प्रेम और जीवन का दर्शन
3. "उर्वशी" के लिए दिनकर को कौन-सा पुरस्कार मिला?
 - a) ज्ञानपीठ पुरस्कार
 - b) साहित्य अकादमी पुरस्कार
 - c) पद्मभूषण
 - d) पद्मविभूषण✓ उत्तर: a) ज्ञानपीठ पुरस्कार
4. दिनकर की रचनाओं में कौन-सा रस सर्वाधिक मिलता है?
 - a) हास्य रस
 - b) शृंगार और वीर रस
 - c) करुण रस
 - d) अद्भुत रस✓ उत्तर: b) शृंगार और वीर रस
5. "उर्वशी" का नायक कौन है?
 - a) अर्जुन
 - b) इंद्र



छायावादोत्तर
काव्य

- c) उर्वशी
d) च्यवन ऋषि
✓ उत्तर: a) अर्जुन
6. दिनकर को किस उपाधि से जाना जाता है?
a) राष्ट्रकवि
b) लोककवि
c) प्रेमकवि
d) नवयुग कवि
✓ उत्तर: a) राष्ट्रकवि
7. "उर्वशी" कविता किस प्रकार की रचना है?
a) खंडकाव्य
b) गीत-संग्रह
c) महाकाव्य
d) निबंध संग्रह
✓ उत्तर: a) खंडकाव्य
8. दिनकर की कविताओं में शृंगार और वीर रस का समन्वय किस उद्देश्य से किया गया है?
a) समाज-सुधार के लिए
b) जीवन की पूर्णता को व्यक्त करने के लिए
c) धार्मिक उपदेश के लिए
d) ऐतिहासिक प्रसंग हेतु
✓ उत्तर: b) जीवन की पूर्णता को व्यक्त करने के लिए
9. दिनकर के प्रेम-दर्शन का मूल भाव क्या है?
a) भौतिक सुख
b) आत्मिक और मानवीय प्रेम
c) आध्यात्मिक वैराग्य
d) राजनीतिक दृष्टिकोण
✓ उत्तर: b) आत्मिक और मानवीय प्रेम

10. दिनकर की भाषा शैली की प्रमुख विशेषता क्या है?

रामधारी सिंह
दिनकर

- a) शुद्ध संस्कृतनिष्ठता
 - b) सहजता, ओज और सौंदर्य
 - c) क्लिष्ट शब्दावली
 - d) हास्य व्यंग्य
- ✓ उत्तर: b) सहजता, ओज और सौंदर्य

3.4.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type – 10)

1. “उर्वशी” खंडकाव्य का केंद्रीय भाव क्या है?
2. दिनकर की कविताओं में शृंगार और वीर रस का समन्वय कैसे दिखाई देता है?
3. “उर्वशी” के तीसरे सर्ग की विषयवस्तु क्या है?
4. दिनकर को ‘राष्ट्रकवि’ क्यों कहा जाता है?
5. प्रेम-दर्शन से दिनकर का क्या आशय है?
6. दिनकर की भाषा-शैली की दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।
7. “उर्वशी” में अर्जुन का चरित्र क्या प्रतीक है?
8. दिनकर की रचनाओं में जीवन-दर्शन किस रूप में प्रकट हुआ है?
9. शृंगार और वीर रस के समन्वय का क्या प्रभाव पड़ता है?
10. दिनकर की कविताओं में आदर्शवाद और यथार्थवाद का संबंध स्पष्ट कीजिए।

3.4.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type – 10)

1. “उर्वशी” खंडकाव्य के तीसरे सर्ग का विश्लेषण कीजिए।
2. दिनकर की रचनाओं में शृंगार और वीर रस के समन्वय का विवेचन कीजिए।
3. “उर्वशी” में जीवन और प्रेम-दर्शन के तत्वों का विस्तार से विश्लेषण कीजिए।
4. रामधारी सिंह ‘दिनकर’ की काव्य-दृष्टि और उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक प्रासंगिकता पर चर्चा कीजिए।
5. “उर्वशी” में अर्जुन और उर्वशी के संवादों का प्रतीकात्मक अर्थ स्पष्ट कीजिए।
6. दिनकर के प्रेम-दर्शन और जीवन-दर्शन में मानवीय मूल्यों का विवेचन कीजिए।
7. “उर्वशी” को ‘आध्यात्मिक प्रेम’ की कविता के रूप में कैसे देखा जा सकता है – स्पष्ट कीजिए।



छायावादोत्तर
काव्य

8. दिनकर की कविताओं में युगबोध और आदर्शवाद के तत्वों का विश्लेषण कीजिए।
9. “उर्वशी” में शृंगार और वीर रस के संगम से कवि ने कौन-सा जीवन-संदेश दिया है?
10. दिनकर की भाषा, शैली और प्रतीकात्मकता की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

मॉड्यूल 4

धूमिल

संरचना

इकाई 4.1: संसद से सड़क तक: कविता 'पटकथा'

इकाई 4.2 समकालीन यथार्थ

इकाई 4.3 राजनीति और जनपक्षधरता

4.0 उद्देश्य:

- विद्यार्थियों को धूमिल की कविता में उपस्थित सामाजिक, राजनीतिक और जनपक्षीय चेतना से परिचित कराना।
- "पटकथा" कविता के माध्यम से समकालीन यथार्थ और राजनीतिक विसंगतियों को समझाना।
- धूमिल की काव्यदृष्टि में आमजन के दृष्टिकोण और उसकी पीड़ा को पहचानना।
- आधुनिक हिंदी कविता में जनसंघर्ष, असंतोष और यथार्थबोध के चित्रण का विश्लेषण करना।
- विद्यार्थियों में आलोचनात्मक और सामाजिक दृष्टि का विकास करना ताकि वे साहित्य को समाज के आईने के रूप में देख सकें।

इकाई 4.1: संसद से सड़क तक: कविता 'पटकथा'

4.1.1 धूमिल: जीवन और साहित्य - संघर्ष और विद्रोह की पृष्ठभूमि

आधुनिक हिन्दी कविता के एक ऐसे विद्रोही और सचेत स्वर सुदामा पांडेय 'धूमिल' का साहित्यिक योगदान भारतीय जनवादी काव्यधारा में एक मील का पत्थर है, जिनका पूरा जीवन संघर्ष, विडम्बना और व्यवस्था से गहरे मोहभंग की गाथा कहता है; उनका जन्म **1936** में उत्तर प्रदेश के **वाराणसी** जिले के खेवली गाँव में एक सामान्य, अभावग्रस्त परिवार में हुआ था, और उनका जीवन-वृत्त उस पीढ़ी के युवा कवि की त्रासदी को दर्शाता है जिसने स्वतंत्रता के सपने को टूटते हुए देखा और जिसे देश की नई राजनीतिक व्यवस्था की खोखली दीवारों के बीच जीवनयापन करना पड़ा, उनकी



छायावादोत्तर काव्य

प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा अत्यंत सीमित साधनों में हुई, और उन्हें जीवन यापन के लिए दर-दर भटकना पड़ा, जिसने उनके काव्य में एक विशेष खुरदुरी सच्चाई और कड़वाहट भर दी; धूमिल ने अपनी कविता के माध्यम से स्थापित मान्यताओं, राजनीतिक पाखण्ड और मध्यवर्गीय जड़ता पर तीखे प्रहार किए, और यही कारण है कि उन्हें अकविता आंदोलन की पृष्ठभूमि में देखा जाता है, हालाँकि उनका काव्य मात्र आंदोलन का हिस्सा नहीं था, बल्कि एक **स्वतंत्र और प्रखर जनपक्षधर चेतना** का परिणाम था, उनका काव्य समय की जरूरत था, एक ऐसी आवाज जो कविता को 'कला' के दायरे से निकालकर 'हथियार' के रूप में इस्तेमाल करना चाहती थी, उनके लिए कविता केवल '**शब्दों की कलाबाजियाँ**' नहीं थी, बल्कि '**सच्चाई व्यक्त करने का एक बेबाक माध्यम**' थी, उनकी कविताएँ आज़ादी के बाद की राजनीति, गरीबी और सामाजिक असमानता के कारण उत्पन्न हुए व्यापक **मोहभंग** को व्यक्त करती हैं, जहाँ लोकतंत्र केवल एक मुखौटा बनकर रह गया था, उनका कवि-कर्म मात्र व्यक्तिगत पीड़ा का बयान नहीं है, बल्कि उस पूरे दौर का क्रॉनिकल है जहाँ 'भूख' और 'लोकतंत्र' दोनों एक ही सिक्के के दो भयावह पहलू बन गए थे; उनकी कविताओं में प्रयुक्त भाषा आम आदमी की भाषा है, बोलचाल की, संसद की पॉलिशदार भाषा से मुक्त, ठेठ और आक्रोश से भरी हुई, उनके लिए भाषा एक विमर्श का माध्यम नहीं, बल्कि **संघर्ष का औजार** है, जिसमें व्याकरण की शुद्धता से अधिक **भावना की तीव्रता** महत्वपूर्ण है; उनकी प्रमुख काव्य संग्रहों में '**संसद से सड़क तक**' (1972), '**कल सुनना मुझे**' (1976) और '**सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र**' (1984) शामिल हैं, जिनमें से '**संसद से सड़क तक**' उनकी कविताओं को एक नया आयाम देती है, इस संग्रह ने हिन्दी साहित्य जगत में हड़कंप मचा दिया था क्योंकि इसने पहली बार राजनीति और व्यवस्था की नग्न सच्चाई को इतनी **गैर-रोमांटिक और यथार्थवादी** शैली में उजागर किया; 'कल सुनना मुझे' के लिए उन्हें **साहित्य अकादमी पुरस्कार** (मरणोपरांत) भी प्राप्त हुआ, जो उनके साहित्यिक महत्व को स्थापित करता है, उनका असामयिक निधन **1975** में मात्र 39 वर्ष की आयु में ब्रेन ट्यूमर के कारण हुआ, लेकिन इतने कम समय में उन्होंने भारतीय साहित्य को जो अमूल्य निधि दी, वह उन्हें हमेशा 'विद्रोही कवि' के रूप में जीवित रखेगी, उनका जीवन और साहित्य दोनों ही **सत्ता-विरोधी और जन-समर्थक** रहे, जहाँ कवि का उद्देश्य केवल कविता करना नहीं, बल्कि '**भाषा में एक आदमी को खड़ा करना**' था।



चित्र 4.1 धूमिल

4.1.2 'पटकथा' कविता: परिचय, कथ्य और संरचना

धूमिल की कालजयी कविता 'पटकथा' उनके प्रथम काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक' की सबसे महत्वपूर्ण कविताओं में से एक है, जो अपने नाम के अनुरूप ही देश के राजनीतिक और सामाजिक जीवन की एक विस्तृत और कठोर स्क्रिप्ट प्रस्तुत करती है, यह कविता केवल एक राजनीतिक व्यंग्य नहीं है, बल्कि एक पूरी सभ्यता और उसके विफल हो चुके तंत्र की **वृत्यानुगामी (Documentary)** समीक्षा है, यह कविता 'पटकथा' नाम से ही यह संकेत देती है कि जो कुछ भी समाज और राजनीति में घटित हो रहा है, वह सब एक पूर्वनियोजित खेल है, एक स्क्रिप्ट है जो किसी अदृश्य, सत्ताधारी शक्ति द्वारा लिखी गई है, और हम सब आम आदमी उस स्क्रिप्ट के केवल मूक पात्र हैं, जो अपना संवाद बोलने या अपनी नियति बदलने में असमर्थ हैं; कविता का आरंभ ही एक प्रकार की **भ्रम की स्थिति** और **प्रश्नवाचकता** से होता है, यह प्रश्न करती है कि क्या वास्तव में कोई लोकतंत्र है, या यह केवल दिखावा है, एक नाटक है जिसका मंचन किया जा रहा है; 'पटकथा' का मुख्य कथ्य **आम आदमी की पीड़ा** और **व्यवस्था की आलोचना** पर केंद्रित है, धूमिल उस आदमी की बात करते हैं जो स्वतंत्रता के बाद भी गरीबी, लाचारी और शोषण की चक्की में पिस रहा है, उसके लिए न तो 'संसद' का कोई महत्व है और न ही 'सड़क' का, क्योंकि दोनों ही जगहें उसके लिए उपेक्षा और दमन की प्रतीक हैं, कविता में राजनीतिक नेताओं, पूँजीपतियों और नौकरशाही की तिकड़ी पर सीधा हमला बोला गया है, जो स्वतंत्रता को एक व्यक्तिगत जागीर मानकर लूट रहे हैं; 'पटकथा' की संरचना **अत्यंत लंबी और गद्यात्मक** है, इसमें पारंपरिक छंद, लय और तुकबंदी का पूरी तरह से अभाव है, और यह अपनी



छायावादोत्तर काव्य

इस संरचना में ही **विद्रोही तेवर** को दर्शाती है, यह कविता एक **अवांगार्द (Avant-garde)** शैली में लिखी गई है जो जानबूझकर कविता के शास्त्रीय स्वरूप को तोड़ती है ताकि पाठक सीधे कवि के आक्रोश और यथार्थ से जुड़ सके, इसकी भाषा में **संवादात्मकता** और **नाटकीयता** भरी हुई है, ऐसा लगता है जैसे कवि स्वयं सामने बैठकर पाठक से बात कर रहा है और उसे अपने देश की दुर्दशा का कच्चा चिट्ठा सुना रहा है, इस कविता में **उपमाएँ, रूपक और प्रतीक** भी अत्यंत कठोर और व्यंग्यात्मक हैं, जैसे 'भूख', 'भाषा', 'रोटी' और 'हत्या' जैसे शब्द बार-बार आते हैं जो स्वतंत्रता के बाद के भारतीय समाज की सबसे बड़ी त्रासदियों को उजागर करते हैं, कविता का अंत अक्सर एक **तीखे प्रश्न** या **विद्रोही आह्वान** पर होता है, जो पाठक को सोचने पर मजबूर करता है और उसे निष्क्रियता से निकालकर सक्रियता की ओर धकेलता है; **पटकथा** में एक प्रमुख पात्र '**जनता**' है, जिसे कवि एक मूर्ख, भोली और निरंतर शोषित होने वाली भीड़ के रूप में चित्रित करता है, और इस भीड़ की **मूक सहमति** ही व्यवस्था को चलाने का ईंधन है, कवि का आक्रोश केवल नेताओं पर नहीं, बल्कि उस जनता पर भी है जो अपने शोषण को नियति मानकर स्वीकार कर लेती है, यह कविता धूमिल के जनवादी काव्य का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण है, जो कविता को '**कला की वस्तु**' नहीं, बल्कि '**सामाजिक परिवर्तन का दस्तावेज़**' मानती है।

4.1.3 कविता का मूल स्वर: मोहभंग, विद्रोह और जनवादी काव्य की विशेषताएँ

'पटकथा' कविता का मूल स्वर एक गहरे **मोहभंग** से उपजे **विद्रोह** का है, यह वह मोहभंग है जो भारतीय स्वतंत्रता के दो दशक बाद, जब देश की जनता ने देखा कि उन्हें मिला क्या है, तब उत्पन्न हुआ था; कविता में व्यक्त किया गया **मोहभंग** मात्र व्यक्तिगत निराशा नहीं है, बल्कि एक पूरी पीढ़ी का सामूहिक दर्द है जिसने आज़ादी के लिए बड़े सपने देखे थे और अब उन सपनों को राजनीति के हाथों मरते हुए देख रही थी, यह मोहभंग व्यवस्था के सभी स्तंभों – लोकतंत्र, न्यायपालिका, मीडिया और यहाँ तक कि बौद्धिक वर्ग से भी है, जिसे कवि ने एक '**पंगु और अपाहिज**' समाज के रूप में चित्रित किया है; इस मोहभंग के कारण ही कविता में **विद्रोह** का स्वर इतना मुखर हो उठता है, यह विद्रोह केवल शब्दों में नहीं है, बल्कि **कवि-कर्म के चुनाव** में है, धूमिल ने कविता के उन सभी सौंदर्यवादी और रूमानि तत्वों को नकार दिया, जो

इस भयावह यथार्थ को ढक सकते थे, उनका विद्रोह 'आग लगाने' या 'हिंसा' के आह्वान में नहीं है, बल्कि 'सच्चाई को नंगा करने' की भाषा में है, वह सच्चाई को इस तरह से प्रकट करते हैं कि वह स्वयं ही विद्रोह का कारण बन जाए; कविता का सबसे महत्वपूर्ण आयाम **जनसामान्य की आवाज़** बनना है, धूमिल ने कविता को उस आदमी के हाथों में थमा दिया जो फुटपाथ पर बैठा है, जो चाय की दुकान पर खड़ा है, जो अपनी दैनिक रोटी के लिए संघर्ष कर रहा है, यह कविता उन सभी हाशिये के लोगों की भावनाओं, उनके क्रोध, उनकी लाचारी और उनके दबे हुए प्रतिरोध को वाणी देती है, कवि ने इस **जनवादी चेतना** को दर्शाने के लिए जानबूझकर ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जो 'असंस्कारी' लग सकती है, जिसमें गाली और ठेठपन का पुट है, लेकिन यही भाषा उस यथार्थ की सबसे सच्ची अभिव्यक्ति है जिसे सत्ता की भाषा ने हमेशा दबाने की कोशिश की; 'पटकथा' कविता **यथार्थ का कठोर चित्रण** करती है, जहाँ गरीबी कोई अमूर्त विचार नहीं है, बल्कि एक 'हत्या' है, एक ऐसा अपराध है जो हर दिन व्यवस्था द्वारा किया जा रहा है, कवि ने **भूख** और **रोटी** को केंद्रीय प्रतीकों के रूप में इस्तेमाल किया है, जहाँ भूख केवल पेट की आग नहीं है, बल्कि आत्मसम्मान, अधिकार और जीवन के मूलभूत सिद्धांतों के हनन का प्रतीक है, कवि **लोकतंत्र** के नाम पर हो रहे नाटक पर तीखा व्यंग्य करता है, जहाँ 'संसद' एक भव्य भवन है, लेकिन वहाँ लिए गए निर्णय **सड़क** पर चलने वाले आम आदमी के जीवन को नष्ट कर देते हैं, यह कविता समकालीन राजनीति के **छद्म रूप** को उजागर करती है, जहाँ नेता केवल अपने स्वार्थ के लिए जनता को मोहरा बनाते हैं, और वादे हमेशा खोखले साबित होते हैं; इस कविता के माध्यम से **जनवादी काव्य की विशेषताओं** का स्पष्ट अध्ययन होता है, जिसकी पहली विशेषता है **जनपक्षधरता** – यानी कविता का उद्देश्य किसी कलात्मक सिद्धि को प्राप्त करना नहीं, बल्कि जनता के पक्ष में खड़े होकर उनके हक की बात करना है, दूसरी विशेषता है **सीधा संवाद और प्रतिरोध**, यह कविता न तो प्रतीकों की ओट लेती है और न ही अलंकारिक भाषा का सहारा, यह सीधे और बेबाक तरीके से प्रतिरोध को स्वर देती है, तीसरी विशेषता है **यथार्थवाद का कठोर स्वीकार**, जहाँ जीवन की कुरूपता, गंदगी और कड़वाहट को बिना किसी फिल्टर के प्रस्तुत किया जाता है, और चौथी विशेषता है **क्रांतिकारी चेतना का आह्वान**, यद्यपि धूमिल सीधे किसी क्रांति का आह्वान नहीं करते, लेकिन उनकी कविताएँ पाठक के भीतर उस चेतना को जगाती हैं जो अन्याय के खिलाफ उठ खड़ा होने की शक्ति रखती है,

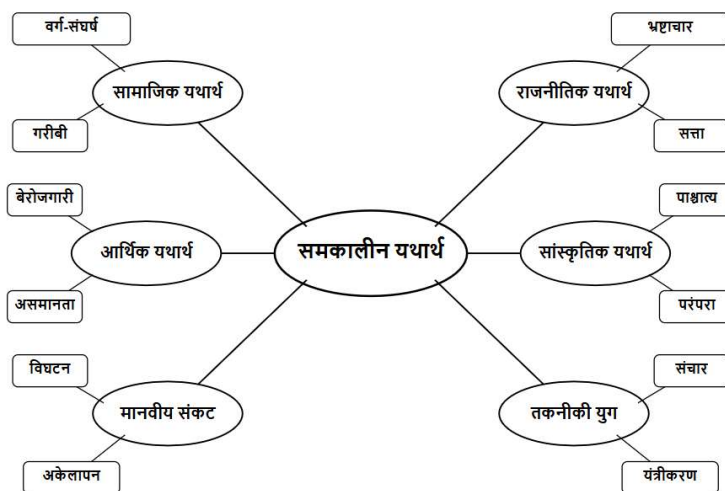


छायावादोत्तर
काव्य

'पटकथा' जनवादी काव्य की उस विरासत को आगे बढ़ाती है, जो कविता को सामाजिक परिवर्तन का उपकरण मानती है, न कि मनोरंजन का साधन, और इस प्रकार धूमिल की यह कविता हिन्दी साहित्य में **मोहभंग, विद्रोह और जनवादी चेतना** की सबसे शक्तिशाली और अविस्मरणीय अभिव्यक्ति बनकर अमर हो गई है।

इकाई 4.2: समकालीन यथार्थ

धूमिल (सुदामा पांडेय धूमिल) बीसवीं सदी के उत्तरार्ध के उन गिने-चुने कवियों में से हैं जिन्होंने भारतीय समाज, विशेषकर स्वतंत्रता के बाद के लोकतन्त्र, की विसंगतियों को अपनी कविता का मूल विषय बनाया। उनके काव्य में **समकालीन यथार्थ** का चित्रण केवल एक विषय नहीं, बल्कि एक घोषणापत्र है—व्यवस्था के विरुद्ध, भाषा के पाखंड के विरुद्ध, और आम आदमी के छले गए सपनों के विरुद्ध एक तीखा और असहज वक्तव्य। धूमिल की कविता अपने समय के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन का एक ऐसा प्रामाणिक दस्तावेज है, जो किसी भी प्रकार की नारेबाजी या रूमानी कल्पना से दूर, नग्न सत्य को सामने रखती है। उनका यथार्थवाद 'देखने' से अधिक 'भुगतने' पर आधारित है, जहाँ कवि स्वयं को उस संघर्षरत, कुंठित और शोषित जनता का प्रवक्ता मानता है जिसका गला लोकतन्त्र की सुनहरी घोषणाओं के बीच घोंट दिया गया है। धूमिल के काव्य का उद्देश्य न केवल **धूमिल के काव्य में यथार्थ चित्रण को समझना** है, बल्कि इसके माध्यम से **समकालीन समस्याओं का विश्लेषण** करना तथा **सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ का अध्ययन** करना भी है। उनके लिए यथार्थ कोई अमूर्त दर्शन नहीं, बल्कि जूते बनाने वाले मोची, रोटी सेंकने वाले कारीगर और संसद के बाहर खड़े लाचार नागरिक का रोज़मर्रा का अनुभव है। इस दस्तावेज़ में, हम धूमिल के काव्य में चित्रित इन्हीं दस प्रमुख आयामों का गहन विश्लेषण करेंगे, जो उनके समय और हमारे समय की सच्चाइयों को उजागर करते हैं।



चित्र 4.2 समकालीन यथार्थ



छायावादोत्तर
काव्य

धूमिल के काव्य में समकालीन यथार्थ की भूमिका और परिचय

धूमिल का कवि-कर्म उस दौर में शुरू हुआ जब स्वतंत्रता के दो दशक बीत चुके थे और राष्ट्र निर्माण के सारे वादे धूमिल पड़ चुके थे। लोकतन्त्र एक ऐसी व्यवस्था बन गया था जहाँ 'जनता' केवल एक चुनावी संख्या बनकर रह गई थी, और सत्ता ने अपनी सुविधा के अनुसार नैतिकता, आदर्श और भाषा के अर्थ बदल दिए थे। ऐसे समय में, धूमिल ने अपनी कविता को इस टूटे हुए समय के सामने एक दर्पण की तरह रखा। उनका यथार्थवाद नेहरूवादी स्वप्नभंग की उपज है। यह स्वप्नभंग न केवल राजनीतिक था, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक भी था। धूमिल ने अनुभव किया कि जिस 'आज़ादी' के लिए इतनी कुर्बानियाँ दी गईं, वह मुट्ठी भर लोगों के लिए सत्ता हस्तांतरण का साधन मात्र बनकर रह गई। उनकी कविता, जैसे कि 'मोचीराम', 'पटकथा', और 'अकाल दर्शन', उस समाज की ओर इशारा करती है जहाँ भूख, बेकारी और अन्याय को अब एक स्वाभाविक घटना मान लिया गया है। **समकालीन यथार्थ का चित्रण** धूमिल के लिए इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह उन्हें उस पाखंडी सभ्यता से लड़ने की शक्ति देता है जिसने आम आदमी की आवाज़ छीन ली है। यह यथार्थ चित्रण किसी सैद्धांतिक चौखटे में फिट नहीं होता; यह पूरी तरह से अनुभूत और भोगा हुआ है। धूमिल ने यथार्थ को उसके तीखे और असहज रूप में स्वीकार किया। उनका मानना था कि कविता का काम आग लगाना है, न कि कोई मीठा लोरी सुनाना। इसीलिए उनकी भाषा इतनी खुरदुरी, गद्यात्मक और अशिष्ट (rude) प्रतीत होती है, क्योंकि उनका यथार्थ भी उतना ही खुरदुरा और अनगढ़ है। धूमिल का यथार्थ चित्रण उनकी दृष्टि की मौलिकता को दर्शाता है: वे केवल समस्याओं को नहीं गिनते, बल्कि उन समस्याओं की जड़ों में बैठे वैचारिक और संरचनात्मक दोषों को भी उजागर करते हैं। उनकी भूमिका एक विद्रोही गवाह की है जो अदालत में खड़े होकर व्यवस्था की झूठी गवाही को खारिज करता है। वह कविता में बार-बार 'मैं' का प्रयोग करते हैं, लेकिन यह 'मैं' व्यक्तिवादी नहीं, बल्कि उस लाचार, क्रोधित और जागरूक **आम आदमी का जीवन** है जो अपनी बात कहने के लिए एक ईमानदार जुबान की तलाश में है। इस प्रकार, धूमिल के काव्य में समकालीन यथार्थ केवल एक विषय वस्तु नहीं है, बल्कि उनकी कविता की संरचना, भाषा और दर्शन का मूल आधार है। उनकी कविताएं

यथार्थ की क्रूरता को स्वीकार करने की हिम्मत देती हैं और यह बताती हैं कि चुप्पी ही सबसे बड़ा अपराध है।

4.2.1 समकालीन यथार्थ का चित्रण: एक तीक्ष्ण अवलोकन

धूमिल के काव्य में **समकालीन यथार्थ का चित्रण** एक बहुआयामी प्रक्रिया है। वह किसी एक समस्या पर रुकते नहीं, बल्कि पूरे सामाजिक-राजनीतिक ताने-बाने को एक साथ उधेड़ते हैं। उनका अवलोकन इतना तीक्ष्ण है कि वह सतही सुधारों और सरकारी नारों के पीछे छिपी क्रूर मंशाओं को तुरंत पकड़ लेते हैं। उनके लिए समकालीनता का अर्थ है—आज़ादी की घोषणा और उसके व्यावहारिक परिणामों के बीच की विडंबनापूर्ण खाई। उनकी कविता 'बीस साल बाद' इसी खाई को दर्शाती है, जहाँ आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी आम आदमी को अपनी नागरिकता साबित करनी पड़ रही है। इस चित्रण में, धूमिल ने उन तीन प्रमुख स्तंभों को निशाना बनाया जिन पर आधुनिक भारतीय राज्य टिका हुआ था: राजनीति, समाज और अर्थव्यवस्था। वह देखते हैं कि **राजनीतिक भ्रष्टाचार** ने लोकतन्त्र को एक ऐसा सर्कस बना दिया है जहाँ शेर की खाल में सियार घूम रहे हैं। **सामाजिक विषमता** को उन्होंने केवल जाति या वर्ग तक सीमित नहीं रखा, बल्कि भाषा, शिक्षा और अवसर की विषमताओं को भी शामिल किया। और अंततः, **आर्थिक शोषण** को उन्होंने किसी पूँजीवादी देश की समस्या न मानकर, भारत के तथाकथित समाजवादी ढाँचे के भीतर पनपी एक कड़वी सच्चाई के रूप में प्रस्तुत किया। धूमिल का समकालीन यथार्थबोध इतना गहरा है कि वह केवल भौतिक अभावों पर ही नहीं टिकता, बल्कि मनुष्य के नैतिक और बौद्धिक पतन को भी दर्शाता है। उनकी कविता बताती है कि जब लोग भूख और लाचारी से थक जाते हैं, तो वे अपनी चेतना और विद्रोह की भावना को भी खो देते हैं। इस प्रकार, समकालीन यथार्थ का उनका चित्रण एक पूर्णकालिक, 360-डिग्री अवलोकन है जो उस समय के बुद्धिजीवी वर्ग के पलायनवादी रुख को भी चुनौती देता है। धूमिल का यथार्थ चित्रण किसी आदर्श की तलाश में नहीं है; यह वर्तमान की बदसूरती को इतनी ईमानदारी से दिखाता है कि पाठक असहज महसूस करने लगता है।

राजनीतिक भ्रष्टाचार और लोकतन्त्र का खोखलापन

धूमिल के काव्य में **राजनीतिक भ्रष्टाचार** का चित्रण अत्यंत क्रूर और व्यंग्यात्मक है।



छायावादोत्तर
काव्य

वे सीधे-सीधे सत्ता के गलियारों पर हमला करते हैं और लोकतन्त्र को एक ऐसा मुखौटा बताते हैं जिसके पीछे अन्याय और निरंकुशता पलती है। उनकी सबसे प्रसिद्ध कविताओं में से एक 'पटकथा' इसी राजनीतिक भ्रष्टाचार और खोखले लोकतन्त्र का जीवंत दस्तावेज़ है। इस कविता में, संसद, चुनाव, और नेताओं के भाषणों को एक नाटक या 'पटकथा' के रूप में चित्रित किया गया है, जहाँ सब कुछ पहले से तय है और आम आदमी केवल एक निष्क्रिय दर्शक है। धूमिल की दृष्टि में, भ्रष्टाचार केवल पैसे का लेन-देन नहीं है, बल्कि 'भाषा' का भ्रष्टाचार है—जहाँ शब्दों के अर्थ बदल दिए गए हैं, और 'सत्य' को सत्ता की सुविधा के अनुसार परिभाषित किया जाता है।

वह लोकतन्त्र को "तीन तिगाड़ा काम बिगाड़ा" और "भूख से त्रस्त एक हाथ की बेजान हथेली" के रूप में देखते हैं। कवि का प्रश्न सीधा है: "क्या आज़ादी सिर्फ़ तीन थके हुए रंगों का नाम है, जिसे एक पहिया ढोता है?" यह प्रश्न लोकतन्त्र की आत्मा पर सवाल उठाता है। राजनीतिक नेता जनता के 'प्रतिनिधि' न होकर 'शोषक' बन गए हैं। 'मोचीराम' कविता में मोची कहता है कि "वह आदमी / जो मुझे वोट देगा" —इस पंक्ति में धूमिल एक विडम्बनापूर्ण सच्चाई दिखाते हैं कि मोची की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ, लेकिन राजनीतिक तंत्र को उसकी 'वोट' रूपी शक्ति का पता है, जिसका वे सिर्फ़ शोषण करते हैं। भ्रष्टाचार के इस चित्रण में **सरकारी दफ्तरों की लालफीताशाही, नेताओं की वायदाखिलाफी और न्यायपालिका तक में व्याप्त असंतुलन** शामिल है। धूमिल राजनीतिक व्यवस्था को एक ऐसी अंधी मशीन के रूप में देखते हैं जो नैतिकता, ईमानदारी और मानवीय मूल्यों को कुचलती हुई आगे बढ़ती है। उनके अनुसार, लोकतन्त्र की सफलता का दावा करने वाले लोग दरअसल आम आदमी के सपनों के हत्यारे हैं, और यह भ्रष्टाचार ही है जिसने आज़ादी को एक मज़ाक बना दिया है। इस खोखलेपन को भरने का एकमात्र तरीका एक ईमानदार विद्रोह है।

सामाजिक विषमता: जाति, वर्ग और शोषण की संरचना

धूमिल ने **सामाजिक विषमता** को भारतीय यथार्थ का एक शाश्वत और दुखद पहलू माना है। उनकी कविताओं में, यह विषमता केवल आर्थिक नहीं, बल्कि गहरे सामाजिक, सांस्कृतिक और **जातिगत** संरचनाओं में निहित है। उन्होंने जातिवाद को एक ऐसे अदृश्य फंदे के रूप में देखा जो आज़ादी के बाद भी भारतीय समाज की

गर्दन कसता रहा। 'मोचीराम' कविता में, मोची का चित्रण सिर्फ आर्थिक विपन्नता का नहीं, बल्कि सामाजिक निचलेपन का भी है। उसका काम 'जूते बनाना' समाज में उसकी निम्न स्थिति का प्रतीक है, और वह जानता है कि उसकी कुशलता का सम्मान कभी नहीं होगा, क्योंकि वह एक मोची है। यह कविता दिखाती है कि कैसे श्रम का मूल्यांकन उसके सामाजिक वर्ग से होता है, न कि उसकी गुणवत्ता से।

इसके अतिरिक्त, धूमिल ने **वर्ग-संघर्ष** को सूक्ष्मता से पकड़ा। उन्होंने दो तरह के समाजों के बीच की खाई को दिखाया: एक ओर वे जो संसद की भाषा बोलते हैं, और दूसरी ओर वे जो भूख और बेकारी की भाषा बोलते हैं। उनकी कविता '**रोटी और संसद**' में यह विषमता मुखर हो उठती है: संसद में क़ानून बनते हैं, लेकिन सड़क पर रोटी के लिए संघर्ष होता है। धूमिल ने सामाजिक विषमता को एक सांस्कृतिक समस्या भी माना। उन्होंने देखा कि उच्च वर्ग या सत्ताधारी वर्ग ने एक ऐसी सांस्कृतिक और साहित्यिक भाषा ईजाद कर ली है जो आम आदमी के अनुभव को पूरी तरह से नकार देती है। वे उस '**संस्कृति-विरोधी**' चेतना के कवि हैं जो स्थापित ज्ञान और सौंदर्य बोध को इसलिए खारिज करता है क्योंकि वे शोषक वर्ग के हित साधते हैं। उनकी कविताएँ दर्शाती हैं कि सामाजिक विषमता ने आम आदमी को केवल आर्थिक रूप से ही नहीं, बल्कि **मनोवैज्ञानिक रूप से भी विकलांग** बना दिया है, जहाँ वह अपनी लाचारी को ही अपनी नियति मान लेता है। यह संरचनात्मक शोषण ही धूमिल के यथार्थ चित्रण का केंद्रीय बिंदु है।

आर्थिक शोषण: पूँजी और श्रम के द्वन्द्व का चित्रण

धूमिल के काव्य में **आर्थिक शोषण** सीधे तौर पर **पूँजी और श्रम के द्वन्द्व** के रूप में प्रकट होता है। वे मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित थे, लेकिन उनका चित्रण किसी नारे या सिद्धांत तक सीमित न होकर, भारतीय गाँवों और छोटे शहरों की ज़मीनी हकीकत से जुड़ा हुआ है। उनकी कविताओं में श्रमिक केवल एक 'लेबर' नहीं है, बल्कि एक जीता-जागता, शोषण से कुंठित इंसान है। '**मोचीराम**' कविता में, मोची श्रम का प्रतीक है। वह दिन-रात काम करता है, लेकिन उसकी मेहनत का फल हमेशा पूँजीपति या बिचौलिये को मिलता है। मोची कहता है कि उसका हाथ "जूतों से बात करता है," लेकिन समाज उससे बात नहीं करता। यह दिखाता है कि श्रमिक का



छायावादोत्तर
काव्य

कौशल उसके लिए जीवनयापन का साधन है, लेकिन उसे पूंजीवादी व्यवस्था में केवल एक उपभोग की वस्तु के रूप में देखा जाता है।

धूमिल **बेरोज़गारी** को भी एक तरह के आर्थिक शोषण के रूप में देखते हैं—यह केवल काम न होना नहीं, बल्कि यह पूँजीपतियों की वह क्रूर चाल है जो श्रमिकों की मोलभाव करने की शक्ति को तोड़ देती है। जब लाखों लोग बेरोज़गार खड़े हों, तो मुट्ठी भर लोगों को कम मज़दूरी पर काम करने के लिए मजबूर किया जा सकता है। उनकी कविताएँ **आर्थिक विषमता** के कारण पैदा हुई भूख और गरीबी की क्रूरता को बेबाकी से दिखाती हैं। वे देखते हैं कि जहाँ एक तरफ़ कुछ लोग 'बड़ों के कमरे' में बैठकर देश की नियति तय कर रहे हैं (जैसे 'बड़े लोगों का कमरा' कविता में), वहीं दूसरी तरफ़ लाखों लोग सड़क पर एक अदद रोटी के लिए संघर्ष कर रहे हैं। यह आर्थिक शोषण धूमिल के यथार्थ चित्रण को एक क्रांतिकारी मोड़ देता है, क्योंकि वे इसके समाधान के रूप में किसी सरकारी योजना की बजाय, श्रमिकों की चेतना और विद्रोह की माँग करते हैं। उनके लिए, जब तक श्रम की गरिमा को स्वीकार नहीं किया जाएगा, आर्थिक शोषण का यह चक्र चलता रहेगा, और लोकतन्त्र केवल धनी लोगों का साधन बना रहेगा।

4.2.2 आम आदमी का जीवन: अस्तित्व का संकट

धूमिल के काव्य का केंद्रबिंदु **आम आदमी का जीवन** है, जो अस्तित्व के गहन संकट से जूझ रहा है। यह आम आदमी वह नहीं है जिसे सरकारी विज्ञापनों में मुस्कुराते हुए दिखाया जाता है; यह वह नागरिक है जो आज़ादी के पचास साल बाद भी अपने **अस्तित्व** का प्रमाण पत्र ढूँढ़ रहा है। धूमिल के लिए, आम आदमी का संकट केवल भौतिक अभावों तक सीमित नहीं है—भूख, बेकारी या गरीबी—बल्कि यह एक **पहचान का संकट** है। यह व्यक्ति लोकतन्त्र में एक वोट देने वाला प्राणी मात्र है, जिसे चुनाव के बाद भुला दिया जाता है। उनकी कविताएँ इस आम आदमी की लाचारी, चुप्पी और भीतर ही भीतर पकते आक्रोश को दर्शाती हैं।

यह आदमी रोजमर्रा के संघर्षों में इतना उलझा हुआ है कि उसे बड़े-बड़े आदर्शों, दर्शनों या क्रांतियों में कोई दिलचस्पी नहीं है। उसकी दुनिया 'रोटी', 'जूते' और 'एक साफ-सुथरी नींद' तक सिमट गई है। इस आदमी का सबसे बड़ा संकट यह है कि उसे

अपनी बात कहने के लिए सही भाषा नहीं मिलती। वह देखता है कि जो भाषा संसद में बोली जाती है, वह उसके दुःख, उसकी गरीबी और उसके शोषण को व्यक्त करने में असमर्थ है। इसलिए, धूमिल की कविता इस आम आदमी को एक **जुबान** देती है— एक गद्यात्मक, सीधी और बेधड़क जुबान। धूमिल का आम आदमी न तो पूरी तरह से हारा हुआ है (क्योंकि उसमें जिजीविषा है), और न ही पूरी तरह से जीता हुआ है (क्योंकि व्यवस्था उस पर हावी है)। वह एक ऐसे बीच की स्थिति में फँसा हुआ है जहाँ उसकी पहचान 'भूखे नागरिक' के रूप में बन गई है। इस अस्तित्व के संकट का मूल कारण यह है कि उसे एक इंसान के रूप में नहीं, बल्कि एक उपभोक्ता या एक आंकड़ा (statistic) के रूप में देखा जाता है।

गरीबी, बेकारी और भूख का भयावह रूप

धूमिल की कविताएँ **गरीबी और बेरोजगारी** के भयावह रूप का सबसे क्रूर और निर्भीक चित्रण करती हैं। उनके काव्य में **भूख** केवल एक शारीरिक आवश्यकता नहीं, बल्कि एक **दार्शनिक समस्या** है—यह वह केंद्र है जिसके चारों ओर सामाजिक अन्याय घूमता है। गरीबी की यह क्रूरता आदमी को उसकी नैतिकता और मानवीय गरिमा से वंचित कर देती है। धूमिल लिखते हैं कि "भूख एक ऐसा शातिर जानवर है जो आदमी को उसकी रीढ़ की हड्डी से झुका देता है।" गरीबी का यह चित्रण किसी भी प्रकार के भावुकतापूर्ण वर्णन से दूर है; यह अत्यंत यथार्थवादी और भौतिक है।

बेकारी को धूमिल ने समाज पर एक अभिशाप के रूप में देखा। जब किसी देश का युवा, जिसके पास ऊर्जा, कौशल और सपने हैं, काम न मिलने के कारण हताश होकर बैठा रहता है, तो यह लोकतन्त्र की सबसे बड़ी विफलता है। बेरोजगारी न केवल आर्थिक समस्या है, बल्कि यह **मनोवैज्ञानिक और सामाजिक विकृति** पैदा करती है। बेकारी से उपजी हताशा, अंततः निराशा और कुंठा में बदल जाती है। उनकी कविता '**अकाल दर्शन**' में भूख और गरीबी का जो चित्रण है, वह मार्मिक होने के साथ-साथ अत्यंत राजनीतिक भी है। भूख एक ऐसा हथियार बन जाती है जिसका उपयोग सत्ताधारी वर्ग आम आदमी को शांत रखने और उसे विद्रोह से दूर रखने के लिए करता है। गरीबी के इस चक्र को तोड़ना धूमिल के लिए राजनीतिक क्रांति से कम नहीं है। वह मानते हैं कि जब तक किसी देश के नागरिक को सम्मानपूर्वक रोटी नहीं मिलेगी,



छायावादोत्तर
काव्य

तब तक उस देश में लोकतन्त्र, न्याय या आज़ादी के सारे दावे झूठे हैं। भूख और बेकारी की यह क्रूर सच्चाई उनके समकालीन यथार्थ चित्रण का सबसे ज्वलंत और प्रासंगिक पहलू है।

निराशा, कुंठा और आत्म-बोध का तीव्र दंश

आम आदमी का जीवन जब लगातार **गरीबी और बेरोजगारी** से त्रस्त रहता है, तो उसका स्वाभाविक परिणाम **निराशा और कुंठा** के रूप में सामने आता है। धूमिल की कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे आम आदमी के भीतर पल रही इन नकारात्मक भावनाओं को खुलकर व्यक्त करती हैं। यह निराशा केवल परिस्थितियों से नहीं है, बल्कि उस **आत्म-बोध** से उपजी है कि उसके पास विद्रोह करने या अपनी स्थिति बदलने की शक्ति नहीं है। यह कुंठा, जो भीतर ही भीतर पकती रहती है, अंततः एक तीव्र दंश बनकर उभरती है।

धूमिल की कविता का नायक एक ऐसा व्यक्ति है जो व्यवस्था की चालों को समझता है, लेकिन फिर भी अपने आप को असहाय पाता है। यह बोध कि सत्य जानने के बावजूद वह कुछ नहीं कर सकता, उसे कुंठित करता है। वह देखता है कि उसकी **ईमानदारी, नैतिकता और मेहनत** का इस भ्रष्ट समाज में कोई मूल्य नहीं है। यह निराशा ही उसे अपनी ही भाषा और अपने ही परिवेश से विमुख कर देती है। कवि कहता है: "मैं एक आदमी हूँ जो शब्दों से लड़ता हूँ / लेकिन शब्द मुझसे दूर भागते हैं।" यह पंक्ति **भाषा और अभिव्यक्ति की कुंठा** को दर्शाती है—जब व्यक्ति के पास अपने दुःख को व्यक्त करने के लिए सही माध्यम नहीं होता। लेकिन इस निराशा और कुंठा के बीच ही **आत्म-बोध** भी पनपता है। यह आत्म-बोध उसे यह जानने में मदद करता है कि उसका शत्रु कौन है—यह कोई अमूर्त शक्ति नहीं, बल्कि वह राजनीतिक-सामाजिक ढाँचा है जो उसके ऊपर हावी है। यह तीव्र दंश ही धूमिल के नायक को निष्क्रियता से सक्रियता की ओर ले जाने का प्रारंभिक बिंदु बनता है, जहाँ वह अंततः विद्रोह की भाषा खोजने लगता है।

संघर्ष, जिजीविषा और विद्रोह की चेतना

धूमिल

धूमिल के काव्य में चित्रित **आम आदमी का जीवन** केवल **निराशा और कुंठा** का शिकार होकर समाप्त नहीं हो जाता। उसमें एक अद्भुत **जिजीविषा** (जीने की इच्छा) और व्यवस्था के विरुद्ध निरंतर **संघर्ष** की भावना मौजूद है। यह संघर्ष केवल भौतिक अस्तित्व के लिए नहीं है, बल्कि मनुष्य की गरिमा को बचाए रखने का संघर्ष है। धूमिल का नायक, मोचीराम हो या कोई अन्य साधारण व्यक्ति, अपनी परिस्थितियों से लड़ना कभी नहीं छोड़ता। उसकी जिजीविषा उसकी मेहनत में, उसके काम के प्रति समर्पण में और विपरीत परिस्थितियों में भी एक नई सुबह की उम्मीद में निहित है।

यह संघर्ष धीरे-धीरे एक **विद्रोह की चेतना** में बदल जाता है। धूमिल का विद्रोह कोई सुनियोजित राजनीतिक क्रांति नहीं है, बल्कि एक **मानसिक और भाषिक विद्रोह** है। यह सबसे पहले **भाषा के पाखंड** को तोड़ता है। कवि ने स्थापित काव्य भाषा को त्यागकर एक गद्यात्मक, रोज़मर्रा की भाषा को अपनाया, क्योंकि उनका मानना था कि ईमानदारी की अभिव्यक्ति इसी खुरदुरी भाषा में संभव है। यह भाषाई विद्रोह ही सामाजिक और राजनीतिक विद्रोह की शुरुआत है। वह विद्रोह की चेतना को इस तरह व्यक्त करते हैं कि आम आदमी को अपनी चुप्पी तोड़नी होगी। उनके लिए, विद्रोह की शुरुआत 'सवाल' पूछने से होती है। वह पूछते हैं: "संसद सिर्फ़ एक ऐसी जगह है जहाँ रोटी पकती है? या कुछ और भी?" यह प्रश्न ही आम आदमी की निष्क्रियता को तोड़कर उसे अपनी नियति का निर्माता बनने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार, धूमिल का यथार्थ चित्रण अंततः एक सकारात्मक मोड़ लेता है, जहाँ **संघर्ष और जिजीविषा** व्यक्ति को मुक्ति और **विद्रोह की चेतना** की ओर ले जाती है।

भाषा और शिल्प: यथार्थवादी अभिव्यक्ति का माध्यम

धूमिल का **समकालीन यथार्थ** का चित्रण केवल विषय वस्तु तक सीमित नहीं है, बल्कि उनकी **भाषा और शिल्प** में भी गहराई से समाहित है। उनकी कविता की भाषा भारतीय काव्यधारा में एक मौलिक मोड़ है। उन्होंने कविता में उस **गद्यात्मकता** और **खुरदुरेपन** को स्थान दिया जो अब तक 'काव्य' की परिधि से बाहर माने जाते थे। उनका मानना था कि जब यथार्थ इतना क्रूर और नंगा हो, तो उसे व्यक्त करने के लिए मीठे और कोमल शब्दों का प्रयोग करना बेईमानी है।



छायावादोत्तर
काव्य

अशिष्ट (rude) भाषा का प्रयोग: धूमिल ने जानबूझकर बोलचाल की भाषा, यहाँ तक कि गाली-गलौज और अपशब्दों का भी प्रयोग किया, क्योंकि यही आम आदमी की प्रामाणिक भाषा है। यह शिल्पगत विशेषता उनके यथार्थवाद का सबसे शक्तिशाली उपकरण है।

बिम्ब और प्रतीक: उनके बिम्ब सीधे और भौतिक हैं: 'लोहे का जंगल', 'भूख से त्रस्त एक हाथ', 'जूते', 'रोटी' और 'संसद'। ये प्रतीक किसी भी अमूर्तता से दूर, सीधे सामाजिक-राजनीतिक सच्चाई पर वार करते हैं।

व्यंग्य और विडंबना: धूमिल का शिल्प **व्यंग्य और विडंबना** पर आधारित है। वे लोकतन्त्र और आज़ादी के दावों पर तीखा व्यंग्य करते हैं, जिससे पाठक को हंसने की बजाय सोचने पर मजबूर होना पड़ता है। उदाहरण के लिए, वे आज़ादी को एक 'तुलसीदास की पोथी' मानते हैं जिसे हर कोई अपने स्वार्थ के लिए पढ़ता है।

कविता में कहानी (Narrative): उनकी कविताएँ, जैसे 'मोचीराम' और 'पटकथा', एक कहानी की तरह आगे बढ़ती हैं। इस **कथात्मक शिल्प** के कारण, जटिल सामाजिक-राजनीतिक मुद्दे भी आम पाठक के लिए सुलभ हो जाते हैं। धूमिल ने अपनी भाषा और शिल्प को **यथार्थवादी अभिव्यक्ति का माध्यम** बनाया, जिसने कविता को पाखंड के मुखौटे से मुक्त करके उसे संघर्षरत जनता की आवाज़ बना दिया। उनकी कविता का शिल्प एक ऐसा हथियार है जो सत्ता और व्यवस्था के खिलाफ़ सीधा, बेबाक और अचूक प्रहार करता है, जो उन्हें समकालीन हिंदी कविता का एक अद्वितीय हस्ताक्षर बनाता है।

निष्कर्ष: धूमिल के यथार्थ की प्रासंगिकता

धूमिल का काव्य **समकालीन यथार्थ** का एक ऐसा चित्रण प्रस्तुत करता है जो आज़ादी के बाद के भारत के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन की सभी विसंगतियों को नग्न रूप में उजागर करता है। उन्होंने सिद्ध किया कि राजनीतिक भ्रष्टाचार, सामाजिक विषमता, और आर्थिक शोषण भारतीय लोकतन्त्र की केवल बाहरी बीमारियाँ नहीं, बल्कि उसकी अंतर्निहित संरचनागत दोष हैं। उनके **आम आदमी का जीवन** गरीबी, बेरोजगारी, निराशा और कुंठा के दंश से भरा हुआ है, लेकिन इसी

संघर्ष में उसकी जिजीविषा और विद्रोह की चेतना भी निहित है। धूमिल का यथार्थवाद केवल समस्याओं का वर्णन नहीं करता, बल्कि एक जुबान, एक भाषा और एक शिल्प देता है जिसके माध्यम से आम आदमी अपनी नियति को चुनौती दे सके। उनकी कविता आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, क्योंकि लोकतन्त्र, भूख और भ्रष्टाचार के प्रश्न आज भी उसी तरह हमारे सामने खड़े हैं।

यह विस्तृत विश्लेषण आपको आपके शैक्षणिक कार्य के लिए एक मज़बूत आधार प्रदान करेगा।

इकाई 4.3: राजनीति और जनपक्षधरता

धूमिल (सुदामा पांडेय 'धूमिल') हिंदी कविता में स्वातंत्र्योत्तर भारत की **राजनीतिक चेतना** और **मोहभंग** के सबसे मुखर और यथार्थवादी कवि हैं। उनकी कविता महज़ साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि **व्यवस्था के विरुद्ध** एक सीधा और तीखा राजनीतिक हस्तक्षेप है। धूमिल ने कविता को उस आम आदमी की जुबान दी, जिसे लोकतंत्र के बड़े-बड़ेवादों के बावजूद केवल **लाचारी, भूख और अन्याय** ही मिला। उनकी कविता की केंद्रीय धुरी है—**सत्ता और जनसामान्य** के बीच का शाश्वत द्वंद्व। उन्होंने कविता के माध्यम से यह स्थापित किया कि कवि की तटस्थता एक **कायरतापूर्ण पाखंड** है, और उसका अनिवार्य कर्म है—**जनपक्षधरता**। इस इकाई में हम उनकी राजनीतिक चेतना, जनसामान्य के प्रति उनकी प्रतिबद्धता, और उनकी अभिव्यक्ति के प्रमुख माध्यम **व्यंग्य और विद्रोह** का विस्तृत अध्ययन करेंगे, जो हिंदी साहित्य में उन्हें एक **विद्रोही महानायक** के रूप में स्थापित करता है।



चित्र 4.3 राजनीति और जनपक्षधरता

4.3.1 राजनीतिक चेतना

धूमिल की राजनीतिक चेतना का जन्म **आज़ादी के बाद के भयानक अँधेरे** से होता है। 1960 और 70 के दशक का भारत—आर्थिक संकट, युद्ध, भ्रष्टाचार और इंदिरा गांधी के मजबूत होते केंद्रीकरण का दौर था। धूमिल इस दौर में कवि को एक **सजग**

नागरिक और ईमानदार गवाह के रूप में देखते हैं। उनकी चेतना का मूल यह है कि **शब्द और सत्ता** का संबंध विरोधी होता है। सत्ता भाषा का उपयोग झूठ को सच बनाने, **पाखंड** को ढाँकने और जनता को **भ्रमित** करने के लिए करती है, जबकि कवि का काम उसी भाषा को **सत्य के औज़ार** में बदलकर सत्ता के षड्यंत्रों का पर्दाफाश करना है। उनकी चेतना किसी दलगत राजनीति से नहीं, बल्कि **मानवीय गरिमा** और **सामाजिक न्याय** के मौलिक सिद्धांतों से प्रेरित है। वे उस बौद्धिक वर्ग से स्वयं को अलग करते हैं जो सत्ता से दूरी बनाकर सुरक्षित खेल खेलता है। धूमिल के लिए, राजनीति जीवन की **केंद्रीय धुरी** है, और इसलिए कविता को राजनीतिक होना **अनिवार्य** है। वे जानते थे कि व्यक्तिगत दुख का मूल भी अंततः राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था में निहित है। उनकी चेतना का निचोड़ यह है कि **देश** का मतलब केवल **भौगोलिक नक्शा** नहीं, बल्कि **भूखे और श्रमशील लोग** हैं। जो व्यवस्था इन लोगों के प्रति जवाबदेह नहीं, वह व्यवस्था ध्वस्त होने योग्य है। यह चेतना कवि को उस भीड़ में शामिल करती है जिसकी जीभ पर एक भी शब्द नहीं है, और वह उस मौन को **आक्रोश की भाषा** देता है। धूमिल की चेतना कविता को एक **दार्शनिक विमर्श** के बजाय **जीता-जागता राजनीतिक वक्तव्य** बना देती है, जो पाठक को सोने नहीं देता, बल्कि उसे **सवाल उठाने** को मजबूर करता है। वे यह सवाल उठाते हैं कि क्या इस लोकतंत्र में **सच बोलना** ही सबसे बड़ा **अपराध** है? उनकी कविता इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में देती है, और इस प्रकार वे स्वयं को सबसे बड़े अपराधी के रूप में पेश करते हैं—यानी सबसे बड़े **सत्यवादी** के रूप में।

धूमिल की राजनीतिक चेतना इस सत्य पर भी आधारित है कि **भाषा** अपने आप में एक **राजनीतिक हथियार** है। वे मानते थे कि अभिजात्य वर्ग और सत्ताधारी लोग जिस **संस्कृतनिष्ठ, आदर्शवादी** भाषा का प्रयोग करते हैं, वह वास्तव में जनता को **गुमराह** करने का साधन है। उनकी राजनीतिक चेतना उन्हें प्रेरित करती है कि वे इस भाषा-पाखंड को तोड़ें और **सड़क की खुरदुरी, अपरिष्कृत, मगर ईमानदार** भाषा का प्रयोग करें। यह भाषा ही **राजनीतिक सत्य** को उसके नंगे रूप में प्रस्तुत करने में सक्षम है। इसीलिए उनकी कविताएँ किसी घोषणापत्र की तरह सीधी और स्पष्ट होती हैं। वे उस **बौद्धिक आतंकवाद** की भी आलोचना करते हैं जो कविता को केवल **सौंदर्यशास्त्र** की कसौटी पर कसता है और उसके **सामाजिक-राजनीतिक दायित्व**



छायावादोत्तर काव्य

को नकारता है। धूमिल की चेतना के लिए कविता का **सामाजिक उपयोग** उसका सबसे बड़ा गुण है। वे अपनी कविताओं में **संसद, गणतंत्र, समाजवाद** जैसे राजनीतिक शब्दों को बार-बार इस्तेमाल करते हैं, पर हर बार उनके **खोखलेपन** को उजागर करते हुए। यह चेतना कवि को **अंदर और बाहर** के सत्य के बीच का फर्क बताती है: बाहर जहाँ **लोकतंत्र का शोर** है, और अंदर जहाँ **भूख का सन्नाटा** है। उनकी कविताएँ इस सन्नाटे को तोड़कर उस **जन-आक्रोश** को आवाज देती हैं, जो व्यवस्था को बदलने की शक्ति रखता है। यह चेतना अंततः एक **विद्रोही और क्रांतिकारी** साहित्य की नींव रखती है जो अपने समय के **राजनीतिक छल** को पूरी तरह नकारता है।

सत्ता की आलोचना

धूमिल की कविता में **सत्ता की आलोचना** एक सतत, मर्मभेदी और अनिवार्य प्रक्रिया है। उनके लिए सत्ता केवल **सरकार** नहीं, बल्कि **शोषण का एक तंत्र** है जो समाज के हर आयाम में फैला हुआ है। इस तंत्र में **नेता, पुलिस, नौकरशाही, और न्यायालय** सभी शामिल हैं, और ये सब मिलकर आम आदमी को **नियंत्रित** करने का काम करते हैं। धूमिल सत्ता को एक **जाल** के रूप में देखते हैं, जहाँ **लोकतंत्र** केवल एक **मीठा लालच** है जिससे लोगों को फँसाया जाता है। उनकी आलोचना का सबसे तीखा निशाना वे नेता हैं जो **गरीबों के नाम पर** सत्ता में आते हैं, पर सत्ता मिलते ही **उन्हीं गरीबों का शोषण** शुरू कर देते हैं। वे नेताओं को **पाखंडी अभिनेता** मानते हैं जो मंच पर **आदर्शों का नाटक** करते हैं, जबकि पर्दे के पीछे वे **भ्रष्टाचार और अनैतिकता** की गठजोड़ में शामिल होते हैं। यह आलोचना केवल राजनीतिक भ्रष्टाचार तक सीमित नहीं है, बल्कि उस **वैचारिक भ्रष्टाचार** पर भी केंद्रित है जहाँ **सत्य को झूठ और अन्याय को न्याय** बताया जाता है।

धूमिल की सत्ता आलोचना **'कुर्सी'** के प्रतीक के इर्द-गिर्द घूमती है। कुर्सी वह केंद्र है जिसे पाने के लिए हर नैतिक मर्यादा का उल्लंघन किया जाता है, और जो एक बार मिल जाने पर व्यक्ति को **जनता से पूरी तरह विमुख** कर देती है। उनकी आलोचना का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू यह है कि सत्ता **कानून और व्यवस्था** का उपयोग भी **दमन** के लिए करती है। पुलिस और अदालतें आम आदमी के लिए **न्याय के मंदिर** नहीं,

बल्कि **सत्ता के डंडे** हैं। वे 'बीस साल बाद' कविता में पूछते हैं कि आज़ादी के बीस साल बाद देश की क्या पहचान है? उत्तर मिलता है—सत्ता ने **पहचान** को भी एक ऐसा **हथियार** बना दिया है जिससे वह लोगों को **विभाजित** करती है और उन पर शासन करती है। धूमिल की आलोचना इस बात को रेखांकित करती है कि सत्ता ने **गरीबी** को **समाप्त** करने के बजाय, उसे **बनाए रखने** में अपना हित देखा है, क्योंकि गरीबी ही **वोट बैंक** और **सस्ते श्रम** का आधार है। उनकी कविता में सत्ता की आलोचना **गुस्से** से भरी है, क्योंकि वे जानते हैं कि यह आलोचना किसी **व्यक्ति विशेष** के विरुद्ध नहीं, बल्कि **पूरी व्यवस्था** के विरुद्ध है जो आम आदमी के जीवन को **नर्क** बना रही है। यह आलोचना जनता को यह सिखाती है कि सत्ता कभी भी **जन-हितैषी** नहीं हो सकती, जब तक कि वह **बुनियादी आर्थिक समानता** को स्थापित न कर दे। इसीलिए धूमिल की कविता सत्ता को **हर पल संदेह** की दृष्टि से देखती है और उसे **चुनौती** देती रहती है।

लोकतंत्र का यथार्थ

धूमिल की कविता में **लोकतंत्र** (Democracy) एक **विचित्र विडंबना** है। वे लोकतंत्र को एक ऐसा **महान झूठ** मानते हैं जो **शोषण को वैध** बनाता है। उनकी कविता भारतीय लोकतंत्र के उस **कड़वे यथार्थ** को सामने लाती है, जो **कागज़ी आदर्शों** से बहुत दूर है। 'रोटी और संसद' कविता धूमिल की लोकतंत्र पर की गई सबसे मार्मिक और शक्तिशाली टिप्पणी है। वे इस लोकतंत्र को **भूख और लाचारी का खेल** बताते हैं, जहाँ **संसद** केवल एक **ठंडी और अनैतिहासिक जगह** है, जहाँ **रोटी के सवाल** पर बहस के बजाय शोरगुल होता है। उनके लिए, लोकतंत्र का अर्थ **गरीब के पेट** से शुरू होता है, न कि **संविधान की किताबों** से। जब तक लोकतंत्र आम आदमी को भरपेट **रोटी** नहीं दे पाता, तब तक वह केवल एक **दिखावा** है।

धूमिल के लोकतंत्र का यथार्थ यह है कि यह **चंद अभिजात्य वर्गों** द्वारा संचालित एक ऐसा नाटक है, जहाँ **जनता** केवल **दर्शक** या **मोहरे** है। **चुनाव** इस नाटक का सबसे बड़ा पर्व है, जहाँ जनता को यह **भ्रम** होता है कि वह अपने भाग्य का फैसला खुद कर रही है, जबकि वास्तव में वह केवल अपने **शोषण** के लिए नए ठेकेदार चुन रही होती है। **वोट** का अधिकार गरीब के लिए **अधिकार** नहीं, बल्कि **मजबूरी** बन जाता है,



छायावादोत्तर
काव्य

जिसे वह **चंद रुपयों** या **एक वक्त की रोटी** के बदले बेच देता है। इस प्रकार, लोकतंत्र एक **बाज़ार** में बदल जाता है जहाँ नागरिकता का सबसे बड़ा अधिकार भी **बिकाऊ** हो जाता है। धूमिल उस **मध्यम वर्ग** की **अकर्मण्यता** और **भय** की भी आलोचना करते हैं, जो इस लोकतंत्र की विसंगतियों को देखता तो है, पर **सत्ता के डर** या **अपने निजी स्वार्थों** के कारण चुप रहता है। उनकी कविताएँ यह स्थापित करती हैं कि भारतीय लोकतंत्र, जिसे **विश्व का सबसे बड़ा** लोकतंत्र कहा जाता है, वास्तव में **विश्व का सबसे बड़ा पाखंड** है। यह लोकतंत्र **आर्थिक विषमता** को बनाए रखने का सबसे प्रभावी तंत्र है। धूमिल का लोकतंत्र का यथार्थ निराशाजनक होते हुए भी **क्रांतिकारी** है, क्योंकि यह निराशा ही **परिवर्तन की चाह** को जन्म देती है। वे चाहते हैं कि जनता इस **झूठे लोकतंत्र** के मुखौटे को उतार फेंके और एक ऐसे **सच्चे गणतंत्र** की स्थापना करे जहाँ 'भूख' और 'संविधान' के बीच कोई दीवार न हो।

राजनीतिक पाखंड

राजनीतिक पाखंड धूमिल की कविता का वह मुख्य विषय है जो उनकी आलोचना को **धार** देता है। पाखंड का अर्थ है **कथनी और करनी** में पाया जाने वाला विशाल अंतर। नेता **समाजवाद** का नारा लगाते हुए **पूंजीपतियों** से साँठगाँठ करते हैं, **गरीबी हटाने** की बात करते हुए स्वयं **अमीरी** की नई इमारतें बनाते हैं, और **देश प्रेम** का राग अलापते हुए **जनता के हितों** को बेचते हैं। धूमिल इस पाखंड को केवल **नैतिक विफलता** नहीं मानते, बल्कि **राजनीतिक रणनीति** का हिस्सा मानते हैं। यह पाखंड ही वह **पर्दा** है जिसके पीछे सत्ता अपना असली, **क्रूर** चेहरा छिपाती है।

इस पाखंड का सबसे बड़ा शिकार **भाषा** होती है। नेतागण **गणतंत्र, न्याय, धर्मनिरपेक्षता** जैसे महान शब्दों का प्रयोग इतने हल्के और निरर्थक तरीके से करते हैं कि ये शब्द अपना **मूल अर्थ** खो देते हैं। धूमिल इस **भाषा के पाखंड** पर तीखा वार करते हैं। वे इन शब्दों को **जनता के यथार्थ** के सामने रखते हैं और साबित करते हैं कि ये शब्द अब **केवल शोर** मात्र हैं, जिनका कोई **ठोस आधार** नहीं बचा है। उदाहरण के लिए, जब वे '**पटरी पर**' कविता लिखते हैं, तो वे **आधुनिक विकास** के पाखंड को उजागर करते हैं, जहाँ **बड़ी-बड़ी परियोजनाएँ** तो बनती हैं, पर वे **आम आदमी** के जीवन को और अधिक **दबा** देती हैं। राजनीतिक पाखंड का एक और रूप

गरीबी का प्रदर्शन है। नेता गरीबी को **समस्या** हल करने के बजाय उसे **भावनात्मक हथियार** के रूप में इस्तेमाल करते हैं। वे गरीबी का गुणगान करते हैं, ताकि गरीब व्यक्ति **संतोष** करना सीख ले और **विद्रोह** न करे। धूमिल अपनी कविताओं में **मोचीराम** और अन्य सामान्य चरित्रों के माध्यम से दिखाते हैं कि यह पाखंड केवल **ऊपर से नहीं**, बल्कि **जड़ तक** फैला हुआ है। यह पाखंड **सरकारी इमारतों** से लेकर **अखबारों की खबरों तक**, और **शिक्षण संस्थानों** से लेकर **धर्म तक**, हर जगह व्याप्त है। धूमिल की कविताएँ इस पाखंड को **नंगा** करने का काम करती हैं, ताकि जनता **मुखौटे** के पीछे छिपे हुए **शोषक** को पहचान सके।

4.3.2 जनपक्षधरता

जनपक्षधरता (People's Partisanship) धूमिल की कविता का **नैतिक केंद्र** है। यह उनके काव्य की **रीढ़** है, जो उन्हें समकालीन कवियों से अलग करती है। जनपक्षधरता का अर्थ है कि कवि ने **निष्पक्षता** की तथाकथित **बुद्धिजीवी मुद्रा** को त्यागकर, स्पष्ट रूप से **शोषित, पीड़ित और मेहनतकश वर्ग** के पक्ष में अपनी वैचारिक और साहित्यिक प्रतिबद्धता घोषित कर दी है। धूमिल के लिए, **सत्य** हमेशा **गरीब** के पक्ष में होता है, और **झूठ** हमेशा **सत्ता** के पक्ष में। इसलिए, तटस्थता एक **नैतिक अपराध** है। उनकी पक्षधरता का आधार कोई **रूमानी आदर्शवाद** नहीं, बल्कि **वर्ग-संघर्ष** का यथार्थवादी बोध है। वे मानते हैं कि समाज दो विरोधी वर्गों में बंटा हुआ है—**शोषक** (सत्ता, पूंजीपति, अभिजात्य वर्ग) और **शोषित** (मजदूर, किसान, आम आदमी)।

धूमिल की जनपक्षधरता उनके **चरित्रों** में साँस लेती है। वे **मोचीराम** को एक **दार्शनिक** और **श्रम के सौंदर्य** का प्रतीक बनाते हैं। मोचीराम की बात केवल जूते की मरम्मत की नहीं है, बल्कि **जीवन के दर्शन, श्रम की गरिमा और शोषण के चक्र** की है। धूमिल इस पक्षधरता के माध्यम से **साहित्यिक परंपरा** को भी चुनौती देते हैं, जहाँ अक्सर नायक उच्च वर्ग या मध्यवर्ग से आते थे। वे **हाशिए के लोगों** को कविता का केंद्र बनाकर यह स्थापित करते हैं कि **असली सृजन और असली ताकत** उन्हीं में निहित है। उनकी पक्षधरता **केवल सहानुभूति** नहीं है; यह **सहभागिता** है। वे स्वयं को **शोषित वर्ग** के **प्रतिनिधि** के रूप में देखते हैं, जो उनकी ओर से बोल रहा है। यह पक्षधरता कविता को एक **सौंदर्यात्मक वस्तु** के बजाय एक **सामाजिक औज़ार** बना देती है। धूमिल की जनपक्षधरता का अंतिम उद्देश्य **जनता की चेतना** को जागृत



छायावादोत्तर
काव्य

करना है, उन्हें यह बताना है कि उनकी **शक्ति** उनके **सामूहिक विद्रोह** में है, न कि सत्ता के सामने हाथ फैलाने में।

जनसामान्य के प्रति प्रतिबद्धता

धूमिल की **जनसामान्य के प्रति प्रतिबद्धता** उनकी जनपक्षधरता का **क्रियात्मक रूप** है। यह प्रतिबद्धता कवि के **जीवन-अनुभव** और **वैचारिक साहस** से उपजी है। धूमिल उन लाखों लोगों के प्रति प्रतिबद्ध हैं जिनकी **आवाज़** इस लोकतंत्र में **अनसुनी** रह गई है, जिनके लिए आज़ादी केवल एक **तारीख** है, जीवन का यथार्थ नहीं। उनकी कविता में **सामान्य व्यक्ति** किसी अपवाद की तरह नहीं, बल्कि **केंद्रीय विषय** के रूप में उपस्थित है। यह प्रतिबद्धता उन्हें उस **अभिजात्य लेखन** से दूर रखती है जो **गरीबी का गुणगान** तो करता है, पर गरीबों के **शोषण** की जड़ों पर हमला नहीं करता।

इस प्रतिबद्धता की गहराई उनके **भाषा प्रयोग** में देखी जा सकती है। वे **सड़क की गालियों**, **अनगढ़ मुहावरों** और **दैनिक जीवन** की शब्दावली का प्रयोग करते हैं ताकि उनकी कविता **जनसामान्य** की **सीधी और सहज** अभिव्यक्ति बन सके। उनकी प्रतिबद्धता का सबसे मार्मिक उदाहरण **भूख** का चित्रण है। उनके लिए भूख केवल **शारीरिक पीड़ा** नहीं है, बल्कि **राजनीतिक अन्याय** का सबसे बड़ा प्रतीक है। 'अकाल दर्शन' में वर्णित भूखा आदमी पूरी व्यवस्था पर सवाल खड़ा करता है। यह प्रतिबद्धता उन्हें मजबूर करती है कि वे **आशा** की झूठी बातें न करें। वे जानते हैं कि **वर्तमान यथार्थ** इतना क्रूर है कि केवल **क्रोध** और **आक्रोश** ही सच्ची भावना हो सकते हैं। धूमिल की जनसामान्य के प्रति प्रतिबद्धता का सार यह है कि **कविता को समाज से उधार लेना चाहिए**—उसकी भाषा, उसका दर्द, और उसका संघर्ष—और **समाज को वापस देना चाहिए**—एक **विद्रोही चेतना** और **संघर्ष करने का साहस**। उनकी कविता इस बात का सबूत है कि **साहित्यिक गुणवत्ता** और **जनपक्षधरता** एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि **पूरक** हो सकते हैं।

शोषितों की आवाज़

धूमिल की कविता की सबसे महत्वपूर्ण पहचान यह है कि वह **शोषितों की आवाज़** है। यह आवाज़ उन लोगों की है जो **** सदियों से चुप**** रहे हैं, जिनकी **पीड़ा** को

उनकी **नियति** मान लिया गया है। धूमिल ने इस **मौन** को तोड़ा और उसे एक **तीखा**, **विद्रोही और राजनीतिक स्वर** प्रदान किया। शोषितों की यह आवाज़ केवल **दर्द** व्यक्त नहीं करती, बल्कि **न्याय** की मांग करती है और **व्यवस्था को चुनौती** देती है। यह आवाज़ **आत्म-सम्मान और अधिकार** की आवाज़ है।

यह आवाज़ **शिष्टाचार** के पाखंड से मुक्त है। शोषितों की आवाज़ में **क्रोध** है, **हताशा** है, और **सीधापन** है। धूमिल इस आवाज़ को **मोचीराम** के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जो अपनी **काम की गरिमा** और **श्रम के मूल्य** को जानता है। मोचीराम की बातें केवल एक मोची की बातें नहीं हैं, बल्कि यह **पूरी मेहनतकश जमात** की आवाज़ है जो पूछ रही है कि उनके **श्रम का सच्चा मूल्य** उन्हें क्यों नहीं मिलता। धूमिल की कविता इस आवाज़ को **सार्वजनिक** करती है, उसे **विमर्श** का हिस्सा बनाती है। वे मानते हैं कि शोषितों को **भिखारी** या **दया के पात्र** के रूप में नहीं देखना चाहिए, बल्कि **क्रांति की शक्ति** के रूप में देखना चाहिए। उनकी कविता शोषितों को यह सिखाती है कि उनका **दर्द** केवल **व्यक्तिगत** नहीं, बल्कि **सामूहिक और राजनीतिक** है। जब यह आवाज़ उठती है, तो वह **व्यवस्था के झूठ** को तार-तार कर देती है। धूमिल ने कविता को **शोषितों के हथियार** में बदलकर एक **नया काव्यशास्त्र** रचा, जहाँ **दर्द विद्रोह** में रूपांतरित हो जाता है।

सामाजिक परिवर्तन की चाह

धूमिल की जनपक्षधरता का अंतिम लक्ष्य **सामाजिक परिवर्तन** की चाह है। उनकी कविताएँ केवल आलोचना पर समाप्त नहीं होतीं, बल्कि वे एक **न्यायपूर्ण और समतावादी समाज** की कल्पना को जन्म देती हैं। यह चाह **वर्तमान व्यवस्था के आमूल-चूल बदलाव** की मांग करती है, जिसे वे **क्रांति** के रूप में देखते हैं। धूमिल के लिए, यह परिवर्तन केवल **राजनीतिक सत्ता** बदलने तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका अर्थ है **आर्थिक संबंधों, सांस्कृतिक सोच और सामाजिक मूल्यों** में मौलिक बदलाव। उनका मानना था कि जब तक **आर्थिक विषमता** समाप्त नहीं होती, तब तक कोई भी राजनीतिक या कानूनी ढाँचा **न्याय** नहीं दे सकता।

सामाजिक परिवर्तन की यह चाह धूमिल की कविताओं में **एक नए मनुष्य** की कल्पना के रूप में भी सामने आती है—एक ऐसा मनुष्य जो **रूढ़ियों से मुक्त, श्रम के प्रति**

समर्पित और शोषण के विरुद्ध खड़ा होने का साहस रखता हो। उनकी कविताएँ जनता को अकर्मण्यता त्यागकर संघर्ष करने के लिए प्रेरित करती हैं। वे जानते थे कि परिवर्तन सहज नहीं होगा, इसके लिए टकराव और संघर्ष अनिवार्य है। यह चाह लोकतंत्र को सच्चे अर्थों में स्थापित करने की है, जहाँ रोटी और अधिकार दोनों उपलब्ध हों। धूमिल की कविताएँ इस परिवर्तन की चाह को वैचारिक आधार और मानसिक तैयारी प्रदान करती हैं। वे जनता को सिखाते हैं कि उन्हें अपने अधिकारों के लिए लड़ना होगा, और यह लड़ाई भाषा और कर्म दोनों स्तरों पर लड़ी जानी चाहिए। इस प्रकार, उनकी कविता आलोचना से निर्माण की ओर संकेत करती है— एक नए, समतावादी भारतीय समाज के निर्माण की ओर।

4.3.3 व्यंग्य और विद्रोह

धूमिल की कविता की शक्ति उसके व्यंग्य और विद्रोह में निहित है। व्यंग्य उनके लिए सत्य को उजागर करने का सबसे तीखा हथियार है। उनका व्यंग्य हास्यपूर्ण कम और कटु अधिक होता है, जो सीधे व्यवस्था के झूठ पर हमला करता है। यह व्यंग्य सत्ता के दावों, नेताओं के वादों, और बुद्धिजीवियों के पाखंड पर केंद्रित है। विद्रोह उनकी कविता का मूल स्वर है—एक ऐसी आवाज़ जो संपूर्ण स्थापित व्यवस्था के प्रति अपनी असहमति व्यक्त करती है। यह विद्रोह केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि साहित्यिक, सामाजिक और नैतिक भी है।



चित्र 4.4 व्यंग्य और विद्रोह

धूमिल का व्यंग्य **विरोधाभास** के माध्यम से पैदा होता है—जब वे **रोटी और संसद** को साथ रखते हैं, तो लोकतंत्र का पाखंड खुद-ब-खुद सामने आ जाता है। यह व्यंग्य **जनता की अकर्मण्यता** पर भी उतना ही तीखा है जितना कि **सत्ता की क्रूरता** पर। वे जनता को **झकझोरना** चाहते हैं, उन्हें **अपनी शर्म** महसूस कराना चाहते हैं ताकि वे **विद्रोह** करने को मजबूर हों। वहीं, उनका विद्रोह **किसी भी तरह के समझौते** को स्वीकार नहीं करता। यह **गहन आक्रोश** से भरा हुआ है जो उन्हें **पुरानी, शालीन** काव्य-शैली से दूर ले जाता है। यह विद्रोही स्वर कविता को **शांति** का प्रतीक बनाने के बजाय **युद्ध का शंखनाद** बनाता है। धूमिल की कविता में **व्यंग्य और विद्रोह** एक-दूसरे के पूरक हैं: व्यंग्य **झूठ को भेदता** है, और विद्रोह **सत्य** के आधार पर **संघर्ष** को स्थापित करता है।

तीखा व्यंग्य

धूमिल का **तीखा व्यंग्य** हिंदी कविता में एक नई परंपरा का निर्माण करता है। यह व्यंग्य **अत्यंत सीधा, अप्रत्यक्ष** कम और **आक्रामक** अधिक होता है। वे **सत्य** को **सफेद झूठों** के बीच से निकालकर **नग्न** रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह व्यंग्य नेताओं के भाषणों की **निरर्थकता**, सरकारी योजनाओं की **विफलता** और **मीडिया के छल** पर केंद्रित है। उदाहरण के लिए, जब वे कहते हैं कि **"आज़ादी एक ऐसी पतंग है जिसकी डोर कटी हुई है"**, तो यह एक **तीखा राजनीतिक व्यंग्य** है जो बताता है कि जनता के हाथ में आज़ादी का केवल **भ्रम** है, जबकि उसका नियंत्रण किसी और के हाथ में है।

उनका व्यंग्य केवल **मज़ाक** नहीं है, यह **विचार** है। यह पाठक को **हँसाने** के बजाय **चिंतन** करने को मजबूर करता है। 'मोचीराम' कविता में मोचीराम का यह कथन कि **"भूख आदमी की सबसे बड़ी जरूरत है, और उससे बड़ी ज़रूरत है - सच"**, यह केवल मोची का वक्तव्य नहीं, बल्कि **पूरे समाज पर किया गया तीखा व्यंग्य** है कि इस लोकतांत्रिक देश में **भूख** अभी भी सबसे बड़ी वास्तविकता है, और **सच** सबसे बड़ा **विद्रोही हथियार**। धूमिल अपने व्यंग्य में **साधारण जीवन** के उपकरणों का प्रयोग करते हैं—जूता, रोटी, हथौड़ी—ताकि उनका व्यंग्य **जटिल** न हो, बल्कि **सीधा**



छायावादोत्तर
काव्य

और जनसामान्य की समझ में आने वाला हो। यह तीखा व्यंग्य धूमिल की **ईमानदारी** का प्रमाण है, जो उन्हें किसी भी **मिथ्या आवरण** को बर्दाश्त करने नहीं देती।

विद्रोही स्वर

धूमिल का **विद्रोही स्वर** उनकी कविता का **अविभाज्य तत्व** है। यह स्वर **समर्पण** या **सहयोग** का नहीं, बल्कि **असहमति** और **अस्वीकृति** का है। यह विद्रोह **आक्रोश** से भरा है और **शालीनता** के पाखंड को तोड़ता है। विद्रोही स्वर सबसे पहले **भाषा** में प्रकट होता है। धूमिल **शिष्ट** और **मधुर** भाषा को त्यागकर **कठोर**, **असंसदीय** शब्दों का प्रयोग करते हैं, क्योंकि वे मानते हैं कि **शोषितों का दर्द** किसी **सुंदर छंद** में व्यक्त नहीं किया जा सकता, उसे व्यक्त करने के लिए **आग** और **कटुता** की आवश्यकता होती है। उनका विद्रोही स्वर **आत्म-आलोचना** से भी जुड़ा है। वे उन **कवियों** पर भी हमला करते हैं जो विद्रोह की बात तो करते हैं, पर स्वयं **सत्ता के करीब** रहते हैं।

यह विद्रोही स्वर **सत्ता के हर दावे** को नकारता है—चाहे वह **विकास** का दावा हो, **समृद्धि** का दावा हो या **न्याय** का दावा हो। धूमिल की कविता में विद्रोह **व्यवस्था परिवर्तन** की **तीव्र चाह** के रूप में सामने आता है। वे जनता को **डर** और **भय** की दीवारों को तोड़कर **सामने आने** और **बोलने** के लिए प्रेरित करते हैं। उनका विद्रोही स्वर यह स्थापित करता है कि **चुप रहना** इस व्यवस्था में **अपराध** है, और **बोलना** ही **क्रांति** की पहली सीढ़ी है। धूमिल का विद्रोह **एक व्यक्ति का नहीं**, बल्कि **पूरे शोषित वर्ग** का सामूहिक स्वर है, जो अपनी **गुलामी** को स्वीकार करने से इनकार करता है।

परंपरा का तोड़

धूमिल का **परंपरा का तोड़** उन्हें हिंदी कविता के इतिहास में एक **अग्रणी आधुनिक कवि** बनाता है। यह तोड़ **केवल विषय** तक सीमित नहीं है, बल्कि **कविता के रूप**, **भाषा**, **छंद** और **लय** तक फैला हुआ है। उन्होंने **छायावादी** और **प्रयोगवादी** कविता की **सौंदर्यात्मक रूढ़ियों** को ध्वस्त किया।

1. **भाषा और शैली का तोड़:** धूमिल ने **खड़ी बोली** की उस परंपरा को तोड़ा जो संस्कृतनिष्ठ और परिष्कृत थी। उन्होंने **सड़क की भाषा, रोज़मर्रा के मुहावरों** और **गद्य के निकट** की शैली को अपनाया। उनकी कविताएँ अक्सर **लंबी, बातचीत की शैली** में लिखी गई हैं, जो किसी **वक्ता** या **आक्रोशित व्यक्ति** के बोलने के लहजे को प्रतिबिंबित करती हैं।
2. **काव्य-विषय का तोड़:** उन्होंने **प्रकृति चित्रण, व्यक्तिगत प्रेम और रहस्यवाद** जैसे पारंपरिक विषयों को छोड़कर **भूख, भ्रष्टाचार, राजनीतिक धोखाधड़ी और दैनिक जीवन के संघर्षों** को कविता का केंद्र बनाया। उनके लिए **कविता का विषय** अब **सुंदरता** नहीं, बल्कि **सत्य और अन्याय** है।
3. **नायकों का तोड़:** उन्होंने **देवताओं, राजाओं या उच्च वर्ग के नायकों** को छोड़कर **मोचीराम** जैसे **मेहनतकश** को नायक बनाया, जो **श्रम की गरिमा** और **गरीब की ईमानदारी** का प्रतीक है।

धूमिल ने परंपरा के इस तोड़ के माध्यम से यह स्थापित किया कि **कविता का सौंदर्यशास्त्र** उसके **राजनीतिक और सामाजिक दायित्व** से अलग नहीं हो सकता। **सच्ची कविता** वही है जो **सच्चाई** को बिना किसी **आवरण** के प्रस्तुत करे, भले ही इसके लिए उसे **पुराने मानदंडों** को तोड़ना पड़े। यह तोड़ धूमिल की कविता को **नयापन, प्रामाणिकता और अदम्य शक्ति** प्रदान करता है।



छायावादोत्तर
काव्य

4.4 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

4.4.1 बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs – 10)

1. "पटकथा" कविता के रचयिता कौन हैं?
 - a) गजानन माधव मुक्तिबोध
 - b) अज्ञेय
 - c) धूमिल
 - d) नागार्जुन

✓ **उत्तर:** c) धूमिल
2. धूमिल का वास्तविक नाम क्या था?
 - a) हरिद्वार प्रसाद
 - b) हरिदत्त शर्मा
 - c) हरिवंश राय
 - d) हरिदत्त मिश्र

✓ **उत्तर:** a) हरिद्वार प्रसाद
3. धूमिल किस काव्यधारा से संबंधित हैं?
 - a) छायावाद
 - b) प्रयोगवाद
 - c) नई कविता और समकालीन कविता
 - d) प्रगतिवाद

✓ **उत्तर:** c) नई कविता और समकालीन कविता
4. धूमिल की कविताओं का प्रमुख स्वर क्या है?
 - a) भक्ति और अध्यात्म
 - b) सामाजिक असंतोष और जनपक्षधरता
 - c) प्रकृति वर्णन
 - d) प्रेम और सौंदर्य

✓ **उत्तर:** b) सामाजिक असंतोष और जनपक्षधरता
5. "पटकथा" कविता किस संग्रह में संकलित है?
 - a) कल सुनना मुझे
 - b) संसद से सड़क तक

c) सुदामा पांडे का प्रपत्र

d) निरव संवाद

धूमिल

✓ **उत्तर:** b) संसद से सड़क तक

6. धूमिल की कविता "पटकथा" किसकी ओर संकेत करती है?

a) समाज की राजनीतिक विडंबनाओं की ओर

b) प्राकृतिक सौंदर्य की ओर

c) प्रेम और करुणा की ओर

d) धार्मिक आस्था की ओर

✓ **उत्तर:** a) समाज की राजनीतिक विडंबनाओं की ओर

7. धूमिल की कविताओं की भाषा कैसी है?

a) अत्यंत संस्कृतनिष्ठ

b) बोलचाल की और तीखी

c) काव्यात्मक और कोमल

d) तात्त्विक और सूक्ष्म

✓ **उत्तर:** b) बोलचाल की और तीखी

8. "संसद से सड़क तक" शीर्षक का प्रतीकात्मक अर्थ क्या है?

a) शासन और जनता के बीच का संवाद

b) राजनीति और जनजीवन का संघर्ष

c) साहित्य और राजनीति का मेल

d) जन-आस्था की अभिव्यक्ति

✓ **उत्तर:** b) राजनीति और जनजीवन का संघर्ष

9. धूमिल की कविताओं में 'जनपक्षधरता' का क्या अर्थ है?

a) जनता से दूर रहना

b) जनता के पक्ष में खड़ा होना

c) शासक वर्ग का समर्थन

d) तटस्थ दृष्टिकोण

✓ **उत्तर:** b) जनता के पक्ष में खड़ा होना



छायावादोत्तर
काव्य

10. धूमिल के काव्य का मुख्य उद्देश्य क्या है?

- a) समाज में यथार्थ को उद्घाटित करना
- b) सौंदर्य का चित्रण
- c) प्रेम का अनुभव
- d) अध्यात्म का प्रचार

✓ **उत्तर:** a) समाज में यथार्थ को उद्घाटित करना

4.4.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type – 10)

1. धूमिल की कविता “पटकथा” का मुख्य भाव क्या है?
2. धूमिल की कविताओं में ‘संसद’ और ‘सड़क’ के प्रतीक क्या दर्शाते हैं?
3. समकालीन यथार्थ से धूमिल का क्या तात्पर्य है?
4. धूमिल की भाषा को जनभाषा क्यों कहा जाता है?
5. “संसद से सड़क तक” शीर्षक की प्रासंगिकता समझाइए।
6. धूमिल की कविताओं में राजनीति का स्वरूप कैसा है?
7. जनपक्षधरता से आप क्या समझते हैं?
8. धूमिल की कविताओं में व्यंग्य किस उद्देश्य से प्रयुक्त हुआ है?
9. धूमिल की काव्य-दृष्टि अन्य कवियों से कैसे भिन्न है?
10. धूमिल के यथार्थ-बोध का एक उदाहरण दीजिए।

4.4.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type – 10)

1. “पटकथा” कविता का विस्तृत विश्लेषण कीजिए।
2. धूमिल की कविताओं में समकालीन यथार्थ का चित्रण कैसे हुआ है?
3. “संसद से सड़क तक” संग्रह की जनपक्षधरता का मूल्यांकन कीजिए।
4. धूमिल की काव्य-दृष्टि में राजनीति और समाज के संबंधों का विवेचन कीजिए।
5. धूमिल को “जनकवि” कहा जाता है – उचित ठहराइए।
6. धूमिल की कविताओं में भाषा और व्यंग्य की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
7. “पटकथा” में कवि किस प्रकार शासन और जनता के संबंधों को प्रस्तुत करता है?

8. धूमिल की रचनाओं में असंतोष, संघर्ष और यथार्थ का स्वर किस रूप में प्रकट होता है?
9. आधुनिक हिंदी कविता में धूमिल की भूमिका और योगदान पर चर्चा कीजिए।
10. धूमिल की कविताओं में राजनीति के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि का विश्लेषण कीजिए।

धूमिल



छायावादोत्तर काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

संरचना

इकाई 5.1: प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, समकालीन कविता

इकाई 5.2 काव्य में सामाजिक यथार्थ, राजनीति और जनसरोकार

इकाई 5.3 भाषा और शिल्प की नवीनता

इकाई 5.4 प्रतीक, बिंब और बौद्धिक चेतना

इकाई 5.5 कवियों की काव्य-दृष्टि और वैचारिकी

5.0 उद्देश्य:

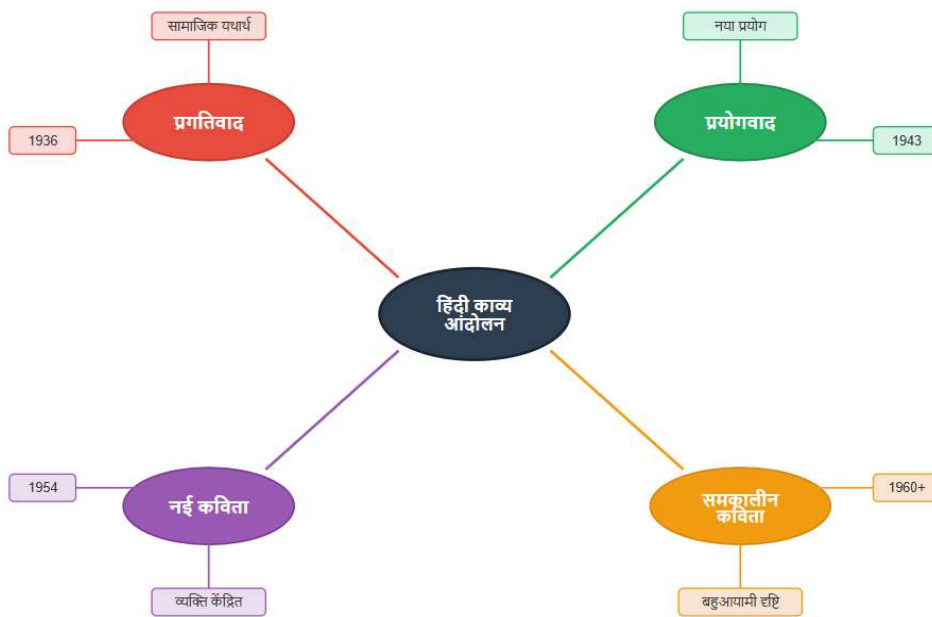
- विद्यार्थियों को छायावादोत्तर काव्य की प्रमुख धाराओं — प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता और समकालीन कविता — से परिचित कराना।
- काव्य में सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक चेतना और जनसरोकारों की अभिव्यक्ति का विश्लेषण कराना।
- भाषा, शिल्प, प्रतीक, बिंब और बौद्धिक चेतना के नवीन रूपों को समझाना।
- विभिन्न कवियों की काव्य-दृष्टि, वैचारिकी और उनके योगदान को विवेचित कराना।
- आधुनिक हिंदी कविता के विकास-क्रम में छायावादोत्तर काव्य की भूमिका और प्रभाव को स्पष्ट कराना।

इकाई 5.1: प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, समकालीन कविता

5.1.1 प्रगतिवाद (1936 के आसपास)

प्रगतिवाद हिंदी साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ था जिसने काव्य की दिशा और दशा दोनों को बदल दिया। यह आंदोलन 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के साथ औपचारिक रूप से शुरू हुआ, हालांकि इसकी जड़ें इससे पहले ही मौजूद थीं। प्रगतिवाद मूलतः मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित था और इसने साहित्य को समाज परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम माना। इस आंदोलन का उदय उस समय हुआ जब भारत में राष्ट्रीय आंदोलन अपने चरम पर था और दुनिया भर में साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव बढ़ रहा था।

प्रगतिवाद ने छायावाद की रहस्यवादी, कल्पनाप्रधान और व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध एक मजबूत प्रतिक्रिया के रूप में जन्म लिया। छायावादी कवि जहां प्रकृति के सौंदर्य, प्रेम की अनुभूति और आत्मा के रहस्य में खोए रहते थे, वहीं प्रगतिवादी कवियों ने अपना ध्यान समाज के यथार्थ की ओर मोड़ा। उन्होंने कविता को स्वर्ग की सैर से उतारकर धरती पर ला खड़ा किया। प्रगतिवादी कवियों का मानना था कि साहित्य को समाज का दर्पण होना चाहिए और कवि को समाज सुधारक की भूमिका निभानी चाहिए।



चित्र 5.1 प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, समकालीन कविता

प्रगतिवाद की मुख्य विशेषता थी सामाजिक यथार्थ का चित्रण। इस आंदोलन के कवियों ने समाज के उस वर्ग को अपनी कविता का नायक बनाया जो सदियों से उपेक्षित और शोषित रहा था। किसान, मजदूर, गरीब, दलित और स्त्रियां इनकी कविता के केंद्र में आ गए। प्रगतिवादी कवियों ने उनके जीवन संघर्ष, पीड़ा, शोषण और अधिकारों की मांग को अपनी कविताओं में स्वर दिया। वे पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ खड़े हुए और वर्ग संघर्ष को अनिवार्य मानते हुए शोषित वर्ग की मुक्ति का स्वप्न देखा।



छायावादोत्तर काव्य

मार्क्सवादी विचारधारा प्रगतिवाद की रीढ़ थी। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद, वर्ग संघर्ष और सर्वहारा की तानाशाही जैसी अवधारणाएं इनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। प्रगतिवादी कवियों ने इतिहास को वर्ग संघर्ष के इतिहास के रूप में देखा और समाज में आर्थिक आधार को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना। उन्होंने धर्म, परंपरा और रूढ़ियों को शोषण के औजार के रूप में देखा और इनके खिलाफ आवाज उठाई। प्रगतिवादी कविता में क्रांति का स्वर प्रमुख था और ये कवि समाजवादी व्यवस्था की स्थापना को अंतिम लक्ष्य मानते थे। प्रगतिवाद की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी इसकी भाषा। प्रगतिवादी कवियों ने छायावाद की क्लिष्ट, संस्कृतनिष्ठ और अलंकृत भाषा को त्यागकर सरल, सहज और जनभाषा को अपनाया। उनका मानना था कि कविता जनता तक पहुंचनी चाहिए और इसके लिए जनता की भाषा में लिखना जरूरी है। इसलिए उन्होंने आम बोलचाल की भाषा, देशज शब्दों और मुहावरों का प्रयोग किया। उनकी कविता में नारेबाजी और प्रचारात्मकता भी दिखाई देती है, जो कभी-कभी कलात्मकता की कीमत पर आती थी। नागार्जुन प्रगतिवाद के सबसे प्रमुख और प्रभावशाली कवि थे। उन्हें जनकवि के नाम से जाना जाता है। नागार्जुन की कविताओं में जनसाधारण का जीवन, उनके संघर्ष, उनकी आशाएं और निराशाएं सब कुछ मौजूद है। उनकी प्रसिद्ध कविता "बादल को घिरते देखा है" में वे प्रकृति चित्रण के साथ-साथ श्रमिक जीवन को भी चित्रित करते हैं। नागार्जुन की कविता में व्यंग्य का तीखापन और यथार्थ का कठोर चित्रण मिलता है। वे राजनीतिक भ्रष्टाचार, सामाजिक विषमता और धार्मिक पाखंड पर करारे व्यंग्य करते हैं। उनकी भाषा सीधी और प्रहारक है। केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवाद के दूसरे महत्वपूर्ण स्तंभ थे। उन्होंने प्रकृति और श्रमिक जीवन को अपनी कविताओं का विषय बनाया। उनकी प्रसिद्ध कविता "चंद्रगहना से लौटती बेर" में ग्रामीण जीवन का सुंदर चित्रण है। केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में प्रकृति मात्र सौंदर्य का विषय नहीं है बल्कि मानव जीवन से गहराई से जुड़ी हुई है। उनकी कविताओं में किसानों का परिश्रम, खेतों की हरियाली, फसलों का लहलहाना और गांव का जीवन जीवंत हो उठता है। वे प्रगतिवाद की विचारधारा को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करने में सफल रहे।

त्रिलोचन ग्रामीण जीवन और सामान्य जन के कवि थे। उनकी कविताओं में देहाती जीवन की सच्चाई, किसानों की गरीबी और उनका संघर्ष प्रमुखता से आया है। त्रिलोचन की भाषा अत्यंत सरल और सहज है। उन्होंने अपनी कविताओं में लोकजीवन के विभिन्न पहलुओं को चित्रित किया है। रामविलास शर्मा भी प्रगतिवादी आलोचक और कवि थे जिन्होंने इस आंदोलन को सैद्धांतिक आधार प्रदान किया। प्रगतिवाद की कुछ सीमाएं भी थीं। कभी-कभी विचारधारा इतनी हावी हो जाती थी कि कविता प्रचार पुस्तिका बनकर रह जाती थी। कलात्मकता की उपेक्षा होती थी और नारेबाजी हावी हो जाती थी। फिर भी प्रगतिवाद ने हिंदी कविता को एक नई दिशा दी और सामाजिक सरोकारों को साहित्य का अभिन्न अंग बना दिया।

5.1.2 प्रयोगवाद (1943 के आसपास)

प्रगतिवाद की वैचारिक कठोरता और यांत्रिकता के विरुद्ध प्रयोगवाद का उदय हुआ। प्रयोगवाद की औपचारिक शुरुआत 1943 में अज्ञेय द्वारा संपादित 'तारसप्तक' के प्रकाशन से मानी जाती है। इस संकलन में सात कवियों की रचनाएं थीं: अज्ञेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर और रामविलास शर्मा। प्रयोगवाद एक क्रांतिकारी आंदोलन था जिसने कविता की परंपरागत धारणाओं को चुनौती दी और नए प्रयोगों का मार्ग प्रशस्त किया। प्रयोगवाद का मूल मंत्र था प्रयोग और नवीनता। प्रयोगवादी कवियों ने कविता के शिल्प, भाषा, बिम्ब, प्रतीक और विषय सभी क्षेत्रों में नए प्रयोग किए। उन्होंने माना कि हर कवि का अनुभव अनूठा होता है और उसे व्यक्त करने के लिए नए माध्यमों की खोज करनी चाहिए। प्रयोगवादियों ने प्रगतिवादियों की तरह किसी एक विचारधारा को नहीं अपनाया बल्कि व्यक्ति की स्वतंत्रता पर बल दिया। उनका मानना था कि कवि को किसी दल या विचारधारा का प्रचारक नहीं बल्कि एक स्वतंत्र सृजनकर्ता होना चाहिए। प्रयोगवाद में विषय वैविध्य देखने को मिलता है। जहां प्रगतिवाद मुख्यतः सामाजिक और राजनीतिक विषयों तक सीमित था, वहीं प्रयोगवादियों ने व्यक्ति के आंतरिक संसार, मनोवैज्ञानिक जटिलताओं, अस्तित्ववादी चिंतन, अकेलेपन, निराशा और आधुनिक जीवन की विसंगतियों को भी अपनी कविता का विषय बनाया। प्रयोगवादी कविता में व्यक्ति केंद्र में है, लेकिन यह व्यक्ति समाज से कटा हुआ नहीं बल्कि समाज में रहते हुए अपनी पहचान और अर्थ की तलाश करता है।



छायावादोत्तर काव्य

प्रयोगवाद की सबसे बड़ी विशेषता थी इसकी नवीन भाषा और शिल्प। प्रयोगवादी कवियों ने परंपरागत छंद और लय को तोड़ा और मुक्त छंद को अपनाया। उन्होंने नए बिम्बों, नए प्रतीकों और नए उपमानों का प्रयोग किया। उनकी कविता में पश्चिमी साहित्य का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, विशेषकर टी एस एलियट और एजरा पाउंड जैसे आधुनिकतावादी कवियों का। प्रयोगवादियों ने भाषा को नए तरीकों से प्रयोग किया, शब्दों को नए अर्थ दिए और वाक्य संरचना में भी प्रयोग किए। उनकी कविता कभी-कभी जटिल और दुरूह हो जाती थी, लेकिन यह जटिलता आधुनिक जीवन की जटिलता का प्रतिबिम्ब थी। अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रमुख सिद्धांतकार और सबसे महत्वपूर्ण कवि थे। उन्होंने व्यक्ति की स्वतंत्रता, निजता और सृजनात्मक स्वाधीनता पर बल दिया। अज्ञेय की कविताओं में गहन दार्शनिकता, बौद्धिकता और भाषा के साथ सचेत प्रयोग दिखाई देते हैं। उनकी प्रसिद्ध कविताएं "असाध्य वीणा", "कितनी नावों में कितनी बार" और "नदी के द्वीप" में आधुनिक मनुष्य की अकेलेपन की पीड़ा और अर्थ की खोज व्यक्त हुई है। अज्ञेय ने तीन और सप्तक संपादित किए जिन्होंने प्रयोगशील कविता को आगे बढ़ाया।

गिरिजाकुमार माथुर प्रयोगवाद के दूसरे महत्वपूर्ण कवि थे। उनकी कविताओं में सौंदर्य, संवेदना और मानवीय भावनाओं का सुंदर संयोजन मिलता है। माथुर की कविता में प्रयोगशीलता के साथ-साथ एक गीतात्मकता भी है। उनकी प्रसिद्ध कविता "मैं वक्त के हूं सामने" में आधुनिक मनुष्य की पीड़ा और साहस दोनों व्यक्त हुए हैं। माथुर ने भाषा के साथ सूक्ष्म प्रयोग किए और नए बिम्बों का सृजन किया।

गजानन माधव मुक्तिबोध प्रयोगवाद और प्रगतिवाद के बीच एक सेतु थे। उनकी कविताओं में मार्क्सवादी विचारधारा थी लेकिन उन्होंने इसे व्यक्त करने के लिए बिल्कुल नए और प्रयोगशील शिल्प का उपयोग किया। मुक्तिबोध की कविता अत्यंत जटिल है जिसमें फैंटेसी, स्वप्न, यथार्थ और प्रतीक सब मिले हुए हैं। उनकी प्रसिद्ध लंबी कविता "अंधेरे में" हिंदी कविता की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। मुक्तिबोध ने मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी के आंतरिक द्वंद्व, आत्मसंघर्ष और सामाजिक यथार्थ को बहुत ही प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया। उनकी कविता में ज्ञान और संवेदना का अद्भुत संयोग है। प्रयोगवाद ने हिंदी कविता को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ला खड़ा किया। इसने कविता को नए आयाम दिए और रचनात्मक स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त किया। हालांकि

कभी-कभी प्रयोगवादी कविता दुरूह और जनसाधारण से कटी हुई लगती थी, लेकिन इसने कविता की संभावनाओं को व्यापक बनाया।

5.1.4 नई कविता (1950-60 के दशक)

नई कविता आंदोलन 1950 और 1960 के दशक में विकसित हुआ। यह प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों की सीमाओं को पार करने का प्रयास था। नई कविता ने न तो प्रगतिवाद की तरह केवल सामाजिक यथार्थ पर बल दिया और न ही प्रयोगवाद की तरह केवल व्यक्तिगत अनुभूति और शिल्प पर। नई कविता ने इन दोनों के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया। इसने व्यक्ति और समाज दोनों को महत्व दिया और इनके बीच के जटिल संबंधों को अपना विषय बनाया। नई कविता का मुख्य विषय था व्यक्ति और समाज का द्वंद्व। आजादी के बाद के भारत में तेजी से हो रहे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों ने मध्यवर्ग को विशेष रूप से प्रभावित किया। नई कविता ने मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों, कुंठाओं, निराशाओं और संघर्षों को अपना विषय बनाया। इस दौर के कवियों ने देखा कि आजादी के बाद जो सपने देखे गए थे वे पूरे नहीं हो रहे हैं। भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, मूल्यहीनता और सामाजिक विघटन बढ़ रहे हैं। नई कविता में इस निराशा और मोहभंग की अभिव्यक्ति हुई। नई कविता में आधुनिक जीवन की जटिलताओं का चित्रण प्रमुखता से हुआ। शहरीकरण और औद्योगीकरण ने मनुष्य के जीवन को तेजी से बदल दिया था। परंपरागत मूल्य टूट रहे थे और नए मूल्य अभी स्थापित नहीं हुए थे। इस संक्रमण काल में व्यक्ति एक तरह के अकेलेपन और अर्थहीनता का शिकार हो गया। नई कविता ने इस आधुनिक बोध को व्यक्त किया। इसमें अकेलापन, अलगाव, संत्रास, अस्तित्व की तलाश और जीवन के अर्थ की खोज जैसे विषय प्रमुख रहे। नई कविता की भाषा प्रयोगवाद से प्रभावित थी लेकिन उतनी जटिल और दुरूह नहीं थी। नई कविता के कवियों ने सहज और संप्रेषणीय भाषा का प्रयोग किया। उन्होंने बोलचाल की भाषा को कविता में स्थान दिया और रोजमर्रा की जिंदगी के अनुभवों को काव्य विषय बनाया। नई कविता में यथार्थ का चित्रण है लेकिन यह यथार्थ केवल बाहरी नहीं है बल्कि आंतरिक भी है। इसमें मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता और संवेदनशीलता है। धर्मवीर भारती नई कविता के प्रमुख कवियों में से एक थे। उनकी प्रसिद्ध लंबी कविता "अंधा युग" महाभारत के युद्ध को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत करती है और मूल्यहीनता, हिंसा



छायावादोत्तर काव्य

और मानवीय पतन को चित्रित करती है। भारती की कविताओं में आधुनिक मनुष्य की पीड़ा, संघर्ष और अर्थ की खोज व्यक्त हुई है। उन्होंने गीत, नाटक और कहानी सभी विधाओं में महत्वपूर्ण योगदान दिया। भवानी प्रसाद मिश्र नई कविता के एक और महत्वपूर्ण कवि थे। उनकी कविताओं में सरलता, सहजता और गहरे मानवीय मूल्यों की बात है। मिश्र की कविता में गांधीवादी मूल्यों का प्रभाव दिखाई देता है। उनकी प्रसिद्ध कविता "सतपुड़ा के जंगल" में प्रकृति का सुंदर चित्रण है। मिश्र ने सामान्य जीवन के अनुभवों को कविता में बहुत ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया। उनकी भाषा अत्यंत सरल है और उनकी कविताओं में एक गीतात्मकता है। शमशेर बहादुर सिंह नई कविता के सबसे महत्वपूर्ण कवियों में से एक थे। उनकी कविता में भाषा, बिम्ब और शिल्प का अद्भुत प्रयोग मिलता है। शमशेर की कविता में चित्रकला का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है क्योंकि वे स्वयं एक अच्छे चित्रकार थे। उनकी कविताओं में रंग, रेखा और प्रकाश का सुंदर संयोजन है। शमशेर की कविता में प्रगतिशील विचारधारा भी है लेकिन वह सीधे प्रचार के रूप में नहीं बल्कि सूक्ष्म संकेतों के रूप में आती है। उनकी प्रसिद्ध कविताओं में "उषा", "टूटी हुई बिखरी हुई" और "बात बोलेगी" शामिल हैं। नई कविता में कुंवर नारायण, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा और दुष्यंत कुमार जैसे अन्य महत्वपूर्ण कवि भी थे। नई कविता ने हिंदी कविता को समृद्ध किया और उसे नई ऊंचाइयां दीं। यह आंदोलन लंबे समय तक चला और इसने अगली पीढ़ी के कवियों को प्रभावित किया।

स5.1.4 समकालीन कविता (1960 के बाद)

समकालीन कविता 1960 के दशक के उत्तरार्ध और 1970 के दशक में विकसित हुई। यह नई कविता की व्यक्तिवादी और अंतर्मुखी प्रवृत्ति के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया थी। समकालीन कविता पुनः सामाजिक सरोकारों की ओर मुड़ी लेकिन यह प्रगतिवाद की तरह किसी एक विचारधारा से बंधी नहीं थी। इस दौर के कवियों ने अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को अपनी कविता का विषय बनाया। समकालीन कविता के उदय के पीछे कई कारण थे। 1960 के दशक में भारत में कई महत्वपूर्ण घटनाएं हुई जिन्होंने समाज और साहित्य को प्रभावित किया। चीन के साथ युद्ध, पाकिस्तान के साथ युद्ध, खाद्य संकट, आर्थिक मंदी और राजनीतिक अस्थिरता ने आम जनता को प्रभावित किया। 1967 के आम चुनावों में कांग्रेस पार्टी की हार ने

राजनीतिक परिदृश्य को बदल दिया। नक्सलवादी आंदोलन ने युवाओं को प्रभावित किया। इन सब घटनाओं ने कवियों को मजबूर किया कि वे अपने समय की समस्याओं से सीधे जुड़ें। समकालीन कविता में जनवादी चेतना प्रमुख है। इसके कवियों ने आम जनता के संघर्ष, शोषण और अधिकारों की बात उठाई। लेकिन यह जनवादी चेतना प्रगतिवाद की तरह केवल वर्ग संघर्ष तक सीमित नहीं थी। समकालीन कविता ने जाति, लिंग, धर्म और क्षेत्र के आधार पर हो रहे शोषण और भेदभाव को भी अपना विषय बनाया। दलित कविता, स्त्री कविता और आदिवासी कविता इसी दौर में उभरी। समकालीन कविता की सबसे बड़ी विशेषता है राजनीतिक व्यंग्य और सामाजिक विद्रूपताओं का तीखा चित्रण। इस दौर के कवियों ने भ्रष्ट राजनीति, नेताओं की दोगली नीतियों, प्रशासनिक अव्यवस्था और लोकतांत्रिक संस्थाओं के पतन को अपनी कविताओं में बेनकाब किया। वे स्थापित व्यवस्था के आलोचक थे और उन्होंने आक्रोश और विद्रोह की भाषा में अपनी बात कही। समकालीन कविता में व्यंग्य एक प्रमुख हथियार बना जिसके माध्यम से कवियों ने सत्ता, धर्म, समाज और संस्कृति के पाखंड को उजागर किया। समकालीन कविता की भाषा और अधिक सहज, सरल और जनसुलभ हो गई। इसमें लोक जीवन की भाषा, बोलियों, मुहावरों और देशज शब्दों का भरपूर प्रयोग हुआ। कवियों ने गली-मोहल्ले की भाषा, बाजार की भाषा और आम आदमी की बोलचाल की भाषा को कविता में स्थान दिया। समकालीन कविता में अलंकरण और शब्दाडंबर की जगह सीधी और प्रहारक भाषा का प्रयोग हुआ। कई बार यह भाषा इतनी सपाट और गद्यात्मक हो गई कि कविता और गद्य के बीच की रेखा धुंधली हो गई।

समकालीन कविता में विषय वैविध्य भी दिखाई देता है। राजनीतिक और सामाजिक विषयों के अलावा इसमें व्यक्तिगत अनुभव, प्रेम, प्रकृति, स्मृति और रोजमर्रा की जिंदगी के छोटे-छोटे प्रसंग भी आए। लेकिन इन विषयों को भी एक व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखा गया। समकालीन कविता में स्थानीयता का भी महत्व बढ़ा। कवियों ने अपने क्षेत्र, अपनी जमीन और अपनी संस्कृति को कविता में स्थान दिया। धूमिल समकालीन कविता के सबसे महत्वपूर्ण और क्रांतिकारी कवि थे। उनका वास्तविक नाम सुदामा पांडे था। धूमिल ने अपनी कविताओं में राजनीतिक व्यवस्था के खिलाफ तीखा व्यंग्य किया और आम आदमी की पीड़ा को बहुत ही मार्मिक ढंग से



छायावादोत्तर काव्य

व्यक्त किया। उनकी कविता संग्रह "संसद से सड़क तक" ने हिंदी कविता में एक नई क्रांति ला दी। धूमिल की कविता में गुस्सा है, विद्रोह है और व्यवस्था के खिलाफ सीधी चुनौती है। उन्होंने लोकतंत्र, संविधान, मतदान और संसदीय व्यवस्था की खोखली औपचारिकताओं को बेनकाब किया। धूमिल की भाषा बिल्कुल नई थी। वे आम आदमी की भाषा में, उसी के लहजे में और उसी की शब्दावली में कविता लिखते थे। उनकी कविता में गालियां भी हैं, अश्लील शब्द भी हैं और कठोर यथार्थ भी है। लेकिन यह सब एक उद्देश्य के लिए है - व्यवस्था के असली चेहरे को दिखाने के लिए। धूमिल की प्रसिद्ध कविता "मोचीराम" में एक साधारण मोची के माध्यम से भारतीय लोकतंत्र की विडंबना को दिखाया गया है। उनकी कविता "पटकथा" में राजनीतिक नाटक का पर्दाफाश है। धूमिल अल्पायु में ही गुजर गए लेकिन उन्होंने हिंदी कविता पर अमिट छाप छोड़ी। रघुवीर सहाय समकालीन कविता के दूसरे महत्वपूर्ण स्तंभ थे। वे पत्रकार भी थे और कवि भी। रघुवीर सहाय की कविताओं में मध्यवर्गीय जीवन की विडंबनाएं, अंतर्विरोध और नैतिक पतन को बहुत ही सूक्ष्मता से चित्रित किया गया है। उनकी कविता में व्यंग्य है लेकिन वह धूमिल की तरह आक्रामक नहीं बल्कि सूक्ष्म और करारा है। रघुवीर सहाय ने आजाद भारत की राजनीति, नौकरशाही, मीडिया और बुद्धिजीवियों के पाखंड को अपनी कविताओं में उजागर किया। उनकी प्रसिद्ध कविता संग्रह "आत्महत्या के विरुद्ध" और "हँसो हँसो जल्दी हँसो" में समकालीन समाज की विडंबनाओं का मार्मिक चित्रण है। रघुवीर सहाय की कविता में एक पत्रकार की तीक्ष्ण दृष्टि और एक संवेदनशील कवि का हृदय दोनों मिलते हैं। वे छोटी-छोटी घटनाओं में बड़े अर्थ देख लेते थे और रोजमर्रा की जिंदगी के अनुभवों को कविता में बदल देते थे। उनकी भाषा सरल, संप्रेषणीय और बोलचाल की भाषा के करीब थी। रघुवीर सहाय की कविता में मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का आत्मसंघर्ष और आत्मालोचन भी दिखाई देता है। कुँवर नारायण समकालीन कविता के सबसे परिपक्व और गंभीर कवियों में से एक थे। उनकी कविताओं में इतिहास, मिथक, दर्शन और समकालीन यथार्थ का अद्भुत संयोजन मिलता है। कुँवर नारायण ने भारतीय और पश्चिमी दोनों परंपराओं से प्रेरणा ली और एक विशिष्ट काव्य शैली विकसित की। उनकी कविता में गहन बौद्धिकता है लेकिन वह दुरूह नहीं है। वे जटिल विचारों को सरल और सुंदर भाषा में व्यक्त करने की क्षमता रखते थे।

कुँवर नारायण की प्रसिद्ध लंबी कविता "आत्मजयी" एक महाकाव्यात्मक रचना है जिसमें बौद्ध मिथक को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। उनकी कविता "वाजश्रवा के बहाने" में नचिकेता की कथा के माध्यम से मृत्यु, जीवन और अर्थ की खोज को चित्रित किया गया है। कुँवर नारायण की कविताओं में इतिहास केवल अतीत नहीं है बल्कि वर्तमान से संवाद करता है। उन्होंने अपनी कविताओं में समय, स्मृति, इतिहास और समकालीनता के बीच के जटिल संबंधों को खोजा। कुँवर नारायण की भाषा अत्यंत सधी हुई, परिष्कृत और काव्यात्मक है। वे शब्दों का चयन बहुत सावधानी से करते थे और हर शब्द का अपना अर्थ और महत्व होता था। उनकी कविता में बिम्बों और प्रतीकों का सुंदर प्रयोग मिलता है। कुँवर नारायण ने समकालीन कविता को गहराई और व्यापकता दोनों प्रदान की। केदारनाथ सिंह समकालीन कविता के एक और महत्वपूर्ण कवि थे जिन्होंने लोक जीवन, प्रकृति और आधुनिक संवेदना को अपनी कविताओं में एक साथ पिरोया। केदारनाथ सिंह की कविताओं में भारतीय गांव का जीवन, खेत-खलिहान, नदी-पहाड़ और प्रकृति के साथ मनुष्य का गहरा रिश्ता दिखाई देता है। लेकिन उनकी कविता केवल ग्रामीण जीवन तक सीमित नहीं है। वे आधुनिक शहरी जीवन, तकनीक, राजनीति और समकालीन समस्याओं को भी अपनी कविताओं में स्थान देते हैं। केदारनाथ सिंह की प्रसिद्ध कविता "बनारस" में प्राचीन शहर की आत्मा को आधुनिक संदर्भ में चित्रित किया गया है। उनकी कविता "अकाल में सारस" में प्रकृति और मानव जीवन के बीच के संबंध को बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। केदारनाथ सिंह की कविताओं में एक गहरी मानवीयता और संवेदनशीलता है। वे छोटी-छोटी चीजों में सौंदर्य देख लेते थे और उन्हें कविता में बदल देते थे।

केदारनाथ सिंह की भाषा अत्यंत सरल, सहज और लोकधर्मी है। वे देशज शब्दों, लोक जीवन के मुहावरों और भोजपुरी बोली के शब्दों का भी प्रयोग करते थे। उनकी कविता में एक गीतात्मकता है और उनके बिम्ब बहुत ही ताजा और मौलिक होते थे। केदारनाथ सिंह ने समकालीन कविता को लोक से जोड़ा और उसे जमीन से जुड़ी संवेदना प्रदान की। समकालीन कविता में अन्य महत्वपूर्ण कवियों में विष्णु खरे, विनोद कुमार शुक्ल, नरेश सक्सेना, मंगलेश डबराल, उदय प्रकाश, राजेश जोशी और अरुण कमल शामिल हैं। इन सभी कवियों ने अपने-अपने तरीके से समकालीन जीवन की



छायावादोत्तर काव्य

जटिलताओं, विडंबनाओं और संघर्षों को अपनी कविताओं में व्यक्त किया। समकालीन कविता में विविधता है, प्रयोगशीलता है और सामाजिक प्रतिबद्धता भी है। समकालीन कविता ने हिंदी कविता को नए आयाम दिए। इसने कविता को जनता से जोड़ा और उसे सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाया। समकालीन कवियों ने दलित कविता, स्त्री कविता और आदिवासी कविता जैसे नए आंदोलनों को भी जन्म दिया जिन्होंने हाशिए पर पड़े समुदायों को अपनी आवाज देने का अवसर प्रदान किया। दलित कवियों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, कौशल्या बैसंत्री और सूरजपाल चौहान ने अपनी यातना और संघर्ष की कथा सुनाई। स्त्री कवियों में अनामिका, कात्यायनी, सविता सिंह और नीलेश रघुवंशी ने पितृसत्ता के खिलाफ आवाज उठाई। समकालीन कविता की कुछ सीमाएं भी रही हैं। कभी-कभी राजनीतिक व्यंग्य इतना प्रत्यक्ष और प्रचारात्मक हो गया कि कविता की कलात्मकता प्रभावित हुई। कुछ कवियों में भाषा इतनी सपाट और गद्यात्मक हो गई कि कविता और गद्य में अंतर करना मुश्किल हो गया। लेकिन इन सीमाओं के बावजूद समकालीन कविता ने हिंदी साहित्य को बहुत कुछ दिया। इसने कविता को आम आदमी के करीब लाया और उसे समाज का दर्पण बनाया। आज भी समकालीन कविता की परंपरा जारी है। नई पीढ़ी के कवि इस परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं और नए प्रयोग कर रहे हैं। वैश्वीकरण, उदारीकरण, सूचना प्रौद्योगिकी, पर्यावरण संकट, सांप्रदायिकता और आतंकवाद जैसे समकालीन मुद्दों को आज के कवि अपनी कविताओं में उठा रहे हैं। हिंदी कविता की यात्रा जारी है और वह निरंतर विकसित हो रही है। इन चारों काव्य आंदोलनों - प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता और समकालीन कविता - ने हिंदी साहित्य को असीम समृद्धि प्रदान की है। हर आंदोलन ने अपने समय की चुनौतियों का सामना किया और नई रास्ते खोले। प्रगतिवाद ने कविता को सामाजिक यथार्थ से जोड़ा, प्रयोगवाद ने उसे नई अभिव्यक्ति के माध्यम दिए, नई कविता ने व्यक्ति और समाज के बीच संतुलन स्थापित किया और समकालीन कविता ने उसे जनता की भाषा में बोलना सिखाया। ये सभी आंदोलन एक-दूसरे के विरोध में नहीं बल्कि एक विकास क्रम के अंग हैं जो हिंदी कविता को निरंतर समृद्ध और प्रासंगिक बनाए रखते हैं।

इकाई 5.2: काव्य में सामाजिक यथार्थ, राजनीति और जनसरोकार

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय साहित्य केवल कल्पना की उड़ान नहीं रहा, बल्कि यह एक सचेत और संवेदनशील दस्तावेज बन गया, जिसने नए राष्ट्र की महत्वाकांक्षाओं, संघर्षों और अंतर्विरोधों को गहराई से दर्ज किया। साहित्यकारों ने भारतीय जीवन के तीनों मूलभूत स्तंभों—सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक चेतना और जनसरोकार—को अपनी रचनाओं का केंद्र बनाया, एक ऐसा आईना प्रस्तुत किया जिसमें देश की आत्मा की परछाईं देखी जा सकती थी। इस साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन या सौंदर्यबोध तक सीमित नहीं था, बल्कि इसने सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता को रेखांकित किया, सत्ता की विसंगतियों पर प्रश्नचिह्न लगाया और आम आदमी के दुःख-दर्द को वाणी दी। यह लेखन उस मोहभंग की कहानी कहता है जो आजादी के शुरुआती उत्साह के बाद जल्द ही वास्तविकता की कठोर जमीन पर उतर आया, जहाँ गरीबी, शोषण और भ्रष्टाचार ने राष्ट्रीय प्रगति के दावों को चुनौती दी।



चित्र 5.2 काव्य में सामाजिक यथार्थ, राजनीति और जनसरोकार

5.2.1 सामाजिक यथार्थ

भारतीय समाज का यथार्थ बहुआयामी और विरोधाभासों से भरा हुआ है, जहाँ प्राचीन रूढ़ियाँ आधुनिक आकांक्षाओं से टकराती हैं और जहाँ विकास की चमक के नीचे गहरी विषमताएँ छिपी हुई हैं। साहित्य ने इस सामाजिक ताने-बाने को बड़ी सूक्ष्मता से



छायावादोत्तर
काव्य

पकड़ा, खासकर उन पहलुओं को जो सत्ता और सुविधा से वंचित वर्गों के जीवन से जुड़े थे। यह सामाजिक यथार्थ केवल एक पृष्ठभूमि नहीं था, बल्कि यह चरित्रों के निर्माण, घटनाओं के विकास और अंततः, लेखन की विचारधारा को निर्धारित करने वाला केंद्रीय तत्व बन गया। ग्रामीण भारत की जड़ता, शहरी जीवन की भागमभाग, जाति और वर्ग के गहरे विभाजन, तथा नए उभरते मध्यवर्ग की नैतिक दुविधाएँ—ये सब सामाजिक यथार्थ के पटल पर विस्तृत रूप से चित्रित हुए।

गरीबी, शोषण, विषमता

भारतीय सामाजिक यथार्थ का सबसे तीखा और मार्मिक पक्ष **गरीबी, शोषण और विषमता** है, जिसे आजादी के सात दशकों बाद भी साहित्य ने लगातार उठाया है। यह वह कठोर सत्य है जिसने विकास के सभी भव्य दावों को झूठा साबित किया। साहित्यकारों ने दिखाया कि कैसे आर्थिक स्वतंत्रता केवल कुछ मुट्ठी भर लोगों तक सिमट गई, जबकि विशाल जनसमुदाय अभी भी पेट भरने, सिर छुपाने और मूलभूत सम्मान के लिए संघर्ष कर रहा था। प्रेमचंद के बाद की पीढ़ी ने भी भूमिहीन किसानों, खेतिहर मजदूरों और झुग्गी-झोंपड़ियों में रहने वाले श्रमिकों के जीवन की त्रासदी को चित्रित किया, लेकिन अब यह त्रासदी सामंती शोषण से आगे बढ़कर नवोदित पूंजीवादी व्यवस्था और सरकारी नीतियों की विफलता के रूप में सामने आई। शोषण की प्रकृति अब केवल जमींदार तक सीमित नहीं रही, बल्कि इसमें साहूकार, भ्रष्ट सरकारी कर्मचारी, पुलिस और औद्योगिक मालिक भी शामिल हो गए। साहित्य ने इस बात पर जोर दिया कि गरीबी केवल संसाधनों की कमी नहीं है, बल्कि यह मानवीय गरिमा का निरंतर उल्लंघन है। उदाहरण के लिए, दलित साहित्य और आंचलिक उपन्यासों ने स्पष्ट किया कि जातीय पूर्वाग्रह और आर्थिक पिछड़ापन एक-दूसरे को कैसे मजबूत करते हैं, जिससे वंचित वर्ग के लिए सामाजिक न्याय एक दूर का सपना बना रहता है। विषमता केवल आय की नहीं है; यह शिक्षा, स्वास्थ्य, अवसर और सामाजिक सम्मान की विषमता है। साहित्यकारों ने सवाल किया कि जिस देश ने 'समाजवादी' आदर्शों को अपनाया, वहाँ अमीर और गरीब के बीच की खाई क्यों लगातार चौड़ी होती गई? फणीश्वर नाथ रेणु के आंचलिक उपन्यासों से लेकर समकालीन दलित लेखकों की कहानियों तक, साहित्य ने इस कटु यथार्थ को एक ऐसी आवाज दी है जिसे अनसुना करना असंभव है। गरीबी को भाग्य का खेल मानने की

बजाय, साहित्य ने इसे एक संरचनात्मक समस्या और राजनीतिक विफलता के रूप में प्रस्तुत किया, जिसने समाज में आक्रोश और विरोध की भावना को जन्म दिया। यह चित्रण इतना मर्मभेदी रहा है कि इसने पाठकों को न केवल दुःख दिया है, बल्कि उन्हें अन्याय के प्रति सचेत और क्रियाशील होने के लिए भी प्रेरित किया है, जिससे साहित्य सामाजिक चेतना का एक शक्तिशाली उपकरण बन गया है। यह विडंबनापूर्ण है कि जिस देश ने अपनी आजादी के बाद योजनाबद्ध विकास के भव्य सपने बुने थे, उसी में गरीबी की जड़ें और गहरी होती चली गईं। साहित्य में गरीबी का चित्रण अब केवल करुणा जगाने का साधन नहीं रहा, बल्कि यह एक राजनीतिक और आर्थिक विश्लेषण का रूप ले चुका है। लेखकों ने दिखाया कि कैसे विकास परियोजनाएँ, बाँध और कारखाने अक्सर गरीबों को विस्थापित करते हैं और उन्हें उनकी पारंपरिक आजीविका से वंचित कर देते हैं, जिससे वे एक नए तरह के शोषण चक्र में फँस जाते हैं। शोषण की यह नई पद्धति अदृश्य और अमूर्त है, जो बाजार और नौकरशाही के जटिल नियमों में छिपी है, जिसे समझने और उसका विरोध करने के लिए आम आदमी के पास कोई हथियार नहीं है। साहित्य ने इसी अदृश्य शोषण को दृश्यमान बनाने का कार्य किया। सामाजिक विषमता के संदर्भ में, साहित्य ने केवल वर्ग-विभाजन पर ही ध्यान केंद्रित नहीं किया, बल्कि **जाति, लिंग और क्षेत्र** पर आधारित गहरी विषमताओं को भी उजागर किया। दलित साहित्य ने साफ कर दिया कि आर्थिक उन्नति भी जातिगत अपमान को पूरी तरह से समाप्त नहीं कर सकती। महिलाओं के लेखन ने पितृसत्तात्मक समाज के भीतर उनके दोहरे शोषण—घर के अंदर और बाहर दोनों जगह—को उजागर किया। यह साहित्य भारतीय समाज के भीतर एक 'अदृश्य विभाजन' को दर्शा रहा था, जहाँ कुछ लोग दोहरी गति से आगे बढ़ रहे थे, जबकि अधिकांश पीछे छूटते जा रहे थे। इस तरह, साहित्य ने समाज के सामने एक असहज प्रश्न खड़ा किया: क्या यह आजादी केवल कुछ विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों के लिए थी? इस प्रश्न की गूँज ने ही जनसरोकार और राजनीतिक चेतना को एक नई दिशा प्रदान की, और लेखकों को निष्क्रिय दर्शक से सक्रिय आलोचक और पक्षधर बना दिया।

मध्यवर्गीय जीवन

स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में सबसे महत्वपूर्ण और गतिशील परिवर्तन **मध्यवर्गीय जीवन** का उभार रहा है। यह वर्ग, जो आजादी के संघर्ष में बौद्धिक नेतृत्व



छायावादोत्तर काव्य

प्रदान करता था, अब देश के आर्थिक और सामाजिक विकास का इंजन बन गया। साहित्य ने इस मध्यवर्ग के जीवन, उसकी महत्वाकांक्षाओं, उसकी नैतिक दरारों और उसके अस्तित्वगत संघर्ष को बड़ी बारीकी से दर्शाया है। यह वह वर्ग है जो एक ओर गरीबी की छाया से दूर है, लेकिन दूसरी ओर उच्च वर्ग की समृद्धि तक पहुँचने के लिए संघर्षरत है। उसका जीवन 'इच्छा और उपलब्धि' के बीच फँसा हुआ है। मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण विशेष रूप से शहरी संदर्भों में किया गया, जहाँ उसने शिक्षा और नौकरी के माध्यम से अपनी पहचान बनाई। इस वर्ग के भीतर एक **नई नैतिक दुविधा** पैदा हुई—आदर्शों और यथार्थ के बीच का टकराव। एक तरफ, वह राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और पंडित नेहरू के उच्च आदर्शों और समाजवाद के मूल्यों में विश्वास करता था, लेकिन दूसरी तरफ, वह बढ़ती हुई उपभोक्तावादी संस्कृति और भ्रष्टाचार की व्यावहारिक दुनिया में जीने को मजबूर था। साहित्य ने दिखाया कि कैसे मध्यवर्ग धीरे-धीरे अपने आदर्शों से समझौता करता गया, महत्वाकांक्षा और असुरक्षा के द्वंद्व में फँस गया, और अपनी नैतिक शुद्धता खो बैठा। इस वर्ग के जीवन में **एकांत, अलगाव और पारिवारिक तनाव** भी प्रमुख विषय बन गए। छोटे अपार्टमेंट, प्रतिस्पर्धात्मक कार्यस्थल, और तेजी से बदलती सामाजिक संरचनाओं ने व्यक्ति को अकेला कर दिया। परिवारों के भीतर संबंध टूटने लगे; पति-पत्नी के बीच संवादहीनता, पीढ़ियों के बीच मूल्यों का अंतर, और बच्चों पर करियर बनाने का दबाव—ये सब मध्यवर्गीय जीवन के केंद्रीय विषय बने। साहित्य ने इस वर्ग को एक ऐसे 'सैंडविच' के रूप में चित्रित किया जो ऊपर से नीचे दोनों ओर से दबाव महसूस करता है, जिसके परिणामस्वरूप एक प्रकार का मानसिक और भावनात्मक तनाव पैदा होता है। इस वर्ग के जीवन में **उपभोक्तावाद का बढ़ता प्रभाव** भी एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। विज्ञापन, आसान ऋण और पश्चिमी जीवनशैली के आकर्षण ने मध्यवर्ग को भौतिक सुख-सुविधाओं की अंतहीन दौड़ में धकेल दिया। लेखक यह दर्शाते हैं कि कैसे लोग कार, फ्रिज और एयर कंडीशनर जैसी वस्तुओं के पीछे भागते हुए अपनी आत्मा और रचनात्मकता को खो रहे हैं। मध्यवर्ग का यह चित्रण साहित्य में अक्सर व्यंग्य और आलोचना का विषय बना, क्योंकि इसने अपनी सुविधा के लिए गरीबों के मुहों से आँखें मूँद लीं और राजनीतिक भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठाना बंद कर दिया। इस प्रकार, साहित्य ने मध्यवर्ग को सिर्फ एक सामाजिक समूह के रूप में नहीं, बल्कि एक गतिशील, विरोधाभासी और नैतिक रूप से संकटग्रस्त इकाई के रूप में प्रस्तुत किया

है, जिसकी चुप्पी ने देश की सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं को और जटिल बना दिया है।

ग्रामीण और शहरी यथार्थ

भारतीय सामाजिक यथार्थ को समझने के लिए **ग्रामीण और शहरी यथार्थ** के बीच के द्वंद्वत्मक संबंध को समझना अनिवार्य है। आजादी के बाद, भारत में ग्रामीण-शहरी विभाजन ने केवल भौगोलिक दूरी को नहीं दर्शाया, बल्कि यह विकास के दो विपरीत मॉडलों, दो अलग-अलग जीवन-पद्धतियों और दो भिन्न मानसिकताओं को भी दर्शाता था। साहित्यकारों ने इन दोनों यथार्थों को उनकी जटिलताओं के साथ चित्रित किया और यह दिखाया कि कैसे वे एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। **ग्रामीण यथार्थ** का चित्रण अक्सर रेणु, शिवप्रसाद सिंह और अन्य आंचलिक उपन्यासकारों के माध्यम से हुआ। यह यथार्थ गरीबी, जड़ता, जातिगत भेदभाव और सामंती अवशेषों से भरा हुआ था। गाँव, जो कभी भारतीय संस्कृति का प्रतीक माना जाता था, अब टूटी हुई आशाओं, अपूर्ण योजनाओं और राजनीतिक हस्तक्षेप का केंद्र बन गया। साहित्य ने दिखाया कि पंचायती राज और भूमि सुधार जैसे प्रयासों के बावजूद, शक्ति संरचनाएँ नहीं बदलीं। नए नेता और ठेकेदार पुराने जमींदारों की जगह लेने लगे, और गाँव की अर्थव्यवस्था शहरी बाजारों और नीतियों पर निर्भर होने लगी। ग्रामीण जीवन का आकर्षण कम होने लगा और युवा पीढ़ी शिक्षा और रोजगार की तलाश में शहर की ओर पलायन करने लगी, जिससे गाँव भावनात्मक और सामाजिक रूप से रिक्त होने लगे। साहित्य में गाँव का चित्रण अब केवल सुंदर प्रकृति या सरल जीवन का नहीं रहा, बल्कि यह एक सघन निराशा और क्षय का प्रतीक बन गया, जहाँ पुरानी पीढ़ी संघर्ष कर रही है और नई पीढ़ी भाग रही है। इसके विपरीत, **शहरी यथार्थ** साहित्य में एक अलग ही त्रासदी लेकर आया—**अलगाव और भीड़ का अकेलापन**। शहर को अक्सर प्रगति, अवसर और मुक्ति के केंद्र के रूप में देखा गया, लेकिन साहित्य ने इसके अंधेरे पक्ष को उजागर किया। महानगर—दिल्ली, मुंबई, कलकत्ता—अनाम और निर्दयी स्थान बन गए, जहाँ व्यक्ति की पहचान उसके काम या पैसे से जुड़ी थी, न कि उसके सामाजिक संबंधों से। शहर ने व्यक्ति को स्वतंत्रता दी, लेकिन उससे उसकी सामुदायिक भावना छीन ली।



छायावादोत्तर
काव्य

पलायन ग्रामीण यथार्थ और शहरी यथार्थ को जोड़ने वाला सबसे महत्वपूर्ण सूत्र बना। साहित्य ने उन लाखों प्रवासियों के दर्द को चित्रित किया जो बेहतर जीवन की तलाश में गाँव छोड़कर शहर आए, लेकिन यहाँ उन्हें गंदी झुगियों, अनियमित रोजगार और सांस्कृतिक बेगानेपन का सामना करना पड़ा। उनका जीवन न तो पूरी तरह से ग्रामीण रहा और न ही पूरी तरह से शहरी; वे दोनों दुनिया के किनारे पर खड़े थे। साहित्यकारों ने शहरीकरण के परिणामस्वरूप पैदा हुए नैतिक शून्य, व्यक्तिवाद की पराकाष्ठा, और मानवीय संबंधों के मशीनीकरण को दर्शाया। इस तरह, भारतीय साहित्य ने एक विशाल सामाजिक मानचित्र प्रस्तुत किया, जहाँ गाँव की धीमा क्षय और शहर की तेज गति की क्रूरता दोनों ही देश की विकास प्रक्रिया के गहरे अंतर्विरोधों को व्यक्त करती हैं।

5.2.2 राजनीतिक चेतना

राजनीतिक चेतना भारतीय साहित्य का एक अनिवार्य घटक रही है, खासकर स्वतंत्रता के बाद के कालखंड में। साहित्यकारों ने राजनीति को केवल सत्ता संघर्ष के रूप में नहीं देखा, बल्कि इसे समाज की दिशा तय करने वाले एक मूलभूत नैतिक क्षेत्र के रूप में देखा। इस खंड में, हम उस गहन राजनीतिक चेतना का विश्लेषण करेंगे जो स्वतंत्रता के बाद के मोहभंग से शुरू हुई, राजनीतिक भ्रष्टाचार पर केंद्रित हुई और अंततः भारतीय लोकतंत्र की मूलभूत विडंबनाओं पर आकर ठहर गई। साहित्य ने दिखाया कि राजनीतिक स्वतंत्रता केवल तभी सार्थक हो सकती है जब वह सामाजिक और आर्थिक न्याय को सुनिश्चित करे, और जब ऐसा नहीं हुआ, तो उसने विरोध और आलोचना का स्वर अपनाया।

स्वतंत्रता के बाद मोहभंग

आजादी एक **उत्साहपूर्ण सपना** था—एक समतामूलक, न्यायपूर्ण और आत्मनिर्भर राष्ट्र का सपना। हालाँकि, यह सपना जल्द ही **स्वतंत्रता के बाद मोहभंग** (Post-Independence Disillusionment) की कठोर वास्तविकता से टकराकर टूट गया। साहित्य ने इस भावनात्मक और वैचारिक टूटन को सबसे पहले और सबसे सशक्त रूप में व्यक्त किया। लेखकों ने देखा कि जिस राजनीतिक वर्ग ने आजादी की लड़ाई

लड़ी थी, वह सत्ता में आते ही अपने आदर्शों से भटक गया। नेहरू युग के शुरुआती आशावाद के बाद, मोहभंग का स्वर तेजी से मुखर हुआ। साहित्य में मोहभंग के कई आयाम थे। सबसे पहले, **आदर्शों का पतन**। गांधीवादी सादगी और सेवाभाव की जगह सत्ता, पद और धन के लिए अंधी दौड़ ने ले ली। लेखकों ने इस बात पर दुःख व्यक्त किया कि 'जनसेवक' कब 'शासक' बन गए और कैसे उन्होंने आम जनता से खुद को दूर कर लिया। दूसरा, **नीतियों की विफलता**। समाजवादी और धर्मनिरपेक्षता के वादे कागजों तक सीमित रह गए, जबकि गरीबी और सांप्रदायिकता जैसी समस्याएँ विकराल रूप लेती गईं। लेखकों ने महसूस किया कि स्वतंत्रता ने केवल सत्ता हस्तांतरित की है, शक्ति संरचनाओं को नहीं बदला। यह मोहभंग केवल राजनीतिक आलोचना नहीं थी, बल्कि एक **गहन अस्तित्वगत निराशा** थी। लेखकों ने अपनी रचनाओं में ऐसे चरित्रों को जन्म दिया जो अब नायक नहीं थे, बल्कि असहाय और व्यंग्यपूर्ण दर्शक थे। उपन्यास, कहानियाँ और कविताएँ सब इस बात की गवाही देती हैं कि एक पूरी पीढ़ी ने अपने नेतृत्व पर से विश्वास खो दिया था। धर्मवीर भारती की कृतियाँ, जिनमें 'अंधा युग' जैसी रचनाएँ शामिल हैं, महाभारत के माध्यम से समकालीन राजनीति की अनैतिकता और मोहभंग को दर्शाती हैं। यह मोहभंग साहित्य के प्रगतिशील और यथार्थवादी आंदोलन को मजबूत करने वाला एक महत्वपूर्ण उत्प्रेरक बना, जिसने लेखकों को सत्ता के करीब रहने की बजाय जनता के पक्ष में खड़े होने के लिए प्रेरित किया। इस तरह, साहित्य ने आजादी के बाद के भारत की भावनात्मक यात्रा को रिकॉर्ड किया—उत्साह से निराशा और फिर प्रतिरोध तक की यात्रा।

राजनीतिक भ्रष्टाचार

मोहभंग की भावना का सबसे कंक्रीट और व्यापक प्रकटीकरण **राजनीतिक भ्रष्टाचार** के रूप में सामने आया, जिसने भारतीय साहित्य में एक केंद्रीय विषय के रूप में अपनी जगह बनाई। साहित्यकारों ने भ्रष्टाचार को केवल नैतिक पतन के रूप में नहीं देखा, बल्कि इसे लोकतंत्र के ताने-बाने को नष्ट करने वाली एक संरचनात्मक बीमारी के रूप में चित्रित किया। यह वह यथार्थ था जिसने आम आदमी के जीवन को सबसे सीधे और दर्दनाक तरीके से प्रभावित किया।



छायावादोत्तर
काव्य

साहित्य ने भ्रष्टाचार के **विभिन्न स्तरों और स्वरूपों** को उजागर किया। सबसे पहले, **छोटा भ्रष्टाचार (पेट्टी करप्शन)**—यानी, निचले स्तर के सरकारी दफ्तरों, पुलिस चौकियों और नगर पालिकाओं में आम आदमी को अपने छोटे-छोटे काम करवाने के लिए दी जाने वाली रिश्वत। लेखकों ने दिखाया कि कैसे यह भ्रष्टाचार जीवन का एक सामान्य हिस्सा बन गया है, जिसने नागरिकों को असहाय और लाचार बना दिया है। श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' इस विषय पर लिखा गया सबसे कालजयी व्यंग्य है, जो ग्रामीण जीवन में फैले राजनीतिक और प्रशासनिक भ्रष्टाचार को इतनी निर्ममता से उजागर करता है कि वह देश की तस्वीर बन गया। दूसरा, **उच्च-स्तरीय भ्रष्टाचार**—यानी, बड़े राजनीतिक घोटालों, नेताओं और उद्योगपतियों की साँठ-गाँठ, और सार्वजनिक धन की लूट। यह वह भ्रष्टाचार था जो राष्ट्रीय नीतियों को प्रभावित करता था और देश के संसाधनों को कुछ हाथों में केंद्रित करता था। साहित्य ने इन शक्तिशाली लोगों के अनैतिक गठबंधनों को बेनकाब किया और दिखाया कि कैसे सत्ता का दुरुपयोग व्यक्तिगत लाभ के लिए किया जाता है। लेखकों ने प्रश्न किया कि विकास के लिए आवंटित पैसा कहाँ गया, और इस चोरी के परिणामस्वरूप गरीबी और विषमता क्यों बढ़ी? साहित्यकारों ने भ्रष्टाचार को **केवल लेनदेन** के रूप में नहीं, बल्कि **एक जीवन-पद्धति** के रूप में चित्रित किया, जहाँ अनैतिकता ही सफलता की कुंजी बन गई। यह एक ऐसी व्यवस्था बन गई थी जहाँ ईमानदार आदमी पिछड़ जाता था और बेईमान, धूर्त व्यक्ति आगे बढ़ जाता था। कविता में, व्यंग्य में, और नाटकों में, लेखकों ने इस व्यवस्था के खिलाफ अपना विरोध दर्ज किया। भ्रष्टाचार पर केंद्रित साहित्य का उद्देश्य केवल आलोचना करना नहीं था, बल्कि यह आम जनता को इस बीमारी के बारे में जागरूक करना और उन्हें इसके खिलाफ खड़े होने के लिए प्रेरित करना था। इस प्रकार, साहित्य ने राजनीतिक भ्रष्टाचार को सामाजिक विमर्श के केंद्र में ला दिया और इसे एक राजनीतिक समस्या के रूप में स्थापित किया जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

लोकतंत्र की विडंबनाएँ

भारतीय राजनीतिक चेतना का सबसे परिष्कृत विषय **लोकतंत्र की विडंबनाएँ** हैं। भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, लेकिन साहित्य ने लगातार सवाल किया है कि क्या यह 'जनता का शासन' वास्तव में अपनी आत्मा को बचा पाया है। लेखकों ने

लोकतंत्र के आदर्शों और उसकी व्यावहारिक वास्तविकताओं के बीच की खाई को उजागर किया है, जो आजादी के बाद के राजनीतिक परिदृश्य की केंद्रीय त्रासदी रही है। लोकतंत्र की पहली विडंबना **सैद्धांतिक समानता और सामाजिक असमानता** के बीच का अंतर है। संविधान हर नागरिक को एक वोट का अधिकार देता है, लेकिन साहित्य ने दिखाया है कि कैसे जाति, वर्ग, धर्म और धन अभी भी चुनाव परिणामों को निर्धारित करते हैं। दलित साहित्य ने विशेष रूप से दिखाया कि कैसे मतदान के अधिकार के बावजूद, वंचित वर्गों को अक्सर वोट डालने से रोका जाता है या उनके मतों का राजनीतिक लाभ नहीं मिल पाता है। यह लोकतंत्र एक **संख्या का खेल** बन गया है, जहाँ न्याय और नीति की परवाह किए बिना केवल बहुमत हासिल करना ही एकमात्र लक्ष्य रह गया है।

दूसरी विडंबना **प्रतिनिधित्व और विश्वसनीयता** का संकट है। लेखक अक्सर दिखाते हैं कि चुनाव जीतने वाले नेता, जनता के प्रतिनिधि होने के बजाय, अपने व्यक्तिगत या पार्टीगत हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे चुनाव के बाद जनता से कट जाते हैं और सत्ता के मद में चूर हो जाते हैं। साहित्य ने नेताओं के **वादे और प्रदर्शन** के बीच की दूरी को बड़ी निर्ममता से उजागर किया। नाटकों और उपन्यासों में ऐसे चरित्र भरे पड़े हैं जो जनता की उम्मीदों पर खरे नहीं उतरते और लोकतंत्र को एक ढोंग या 'तमाशा' बना देते हैं। तीसरी विडंबना **शक्ति के केंद्रीकरण** की है। हालाँकि लोकतंत्र विकेंद्रीकरण का दावा करता है, साहित्य ने अक्सर दर्शाया है कि कैसे शक्ति एक छोटे से समूह या एक ही व्यक्ति के हाथ में केंद्रित होती जा रही है। राजनीतिक पार्टियाँ आंतरिक लोकतंत्र खो देती हैं, और राज्य-तंत्र (स्टेट मशीनरी) धीरे-धीरे दमनकारी होता जाता है। साहित्य ने **आपातकाल** जैसी घटनाओं को लोकतंत्र के इस विरोधाभास के सबसे बड़े उदाहरण के रूप में चित्रित किया, जहाँ संविधान द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रताएँ ही क्षण भर में छीन ली गईं। इस प्रकार, साहित्य ने भारतीय लोकतंत्र को एक ऐसी संस्था के रूप में देखा जो उच्च आदर्शों पर टिकी थी, लेकिन जिसकी नींव धीरे-धीरे शक्ति की भूख, भ्रष्टाचार और सामाजिक असमानता के कारण खोखली होती जा रही थी। लेखकों ने इस विडंबनापूर्ण स्थिति पर व्यंग्य किया, आलोचना की और अंततः एक सच्चे और सार्थक लोकतंत्र की बहाली की वकालत की।



5.2.3 जनसरोकार

जनसरोकार (Public Concern) भारतीय साहित्य की आत्मा और उसका सामाजिक दायित्व है। इसका अर्थ है साहित्य का केवल समाज को चित्रित करना नहीं, बल्कि सक्रिय रूप से जनता के हितों, चिंताओं और आकांक्षाओं से जुड़ना। साहित्यकारों ने स्वयं को 'जनपक्षधर' घोषित किया, जिसका अर्थ था कि उनका लेखन सत्ता या स्थापित व्यवस्था के लिए नहीं, बल्कि उन शोषित, वंचित और उत्पीड़ित वर्गों के लिए समर्पित था जो समाज के हाशिये पर थे। जनसरोकार ने साहित्य को एक नैतिक बल और प्रतिरोध की आवाज प्रदान की, जिसने इसे केवल कला रूप से अधिक, सामाजिक परिवर्तन का एक उपकरण बना दिया।

आम आदमी की चिंता

जनसरोकार का सबसे सीधा और मार्मिक केंद्र **आम आदमी की चिंता** रही है। साहित्य ने उस साधारण नागरिक के जीवन को केंद्र में लाया जिसकी पहचान राजनीतिक नारों या आर्थिक आंकड़ों में खो जाती है। यह आम आदमी वह है जो रोजमर्रा के अस्तित्व के लिए जूझ रहा है—महंगाई, बेरोजगारी, आवास की कमी, और सरकारी दफ्तरों की संवेदनहीनता। साहित्यकारों ने इन चिंताओं को व्यक्तिगत स्तर पर अनुभव किया और फिर उन्हें सार्वभौमिक मानवीय भावनाओं में ढाल दिया। आम आदमी की चिंताएँ मूलभूत थीं: **रोटी, कपड़ा और मकान**। साहित्य ने दिखाया कि आजादी के बाद भी ये बुनियादी आवश्यकताएँ क्यों एक विलासिता बनी रहीं। कविता, विशेष रूप से प्रगतिशील कविता, ने श्रमिकों, किसानों और स्ट्रीट वेंडरों के श्रम और उनके दुख को सीधे तौर पर चित्रित किया। कहानीकारों ने उन छोटे-छोटे अपमानों और संघर्षों को उजागर किया जिनका सामना एक साधारण क्लर्क, एक मजदूर या एक निम्न-मध्यमवर्गीय गृहिणी को करना पड़ता है जब वे किसी सरकारी अस्पताल या राशन की दुकान पर जाते हैं। साहित्य ने यह प्रश्न उठाया कि यदि राष्ट्र महानता की ओर बढ़ रहा है, तो आम आदमी की बुनियादी परेशानियाँ क्यों कम नहीं हो रही हैं? साहित्य में आम आदमी की चिंता का एक और महत्वपूर्ण पहलू **सुरक्षा और गरिमा** है। पुलिस, नौकरशाही और स्थानीय दबंगों द्वारा उनका शोषण या उनकी उपेक्षा, उनकी नागरिक गरिमा पर लगातार हमला करती है। साहित्य ने इन संस्थाओं के अमानवीय व्यवहार को उजागर किया और दिखाया कि कैसे कानून और व्यवस्था की

मशीनरी अक्सर आम आदमी के खिलाफ काम करती है। यह चित्रण न केवल दुखद है, बल्कि यह पाठक में एक **सामाजिक न्याय की भावना** भी जगाता है। साहित्य ने आम आदमी को एक निष्क्रिय पीड़ित के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे संघर्षशील व्यक्ति के रूप में देखा जो अपनी सीमित क्षमताओं के बावजूद व्यवस्था से लड़ रहा है। इस तरह, आम आदमी की चिंताएँ साहित्य के माध्यम से समाज की चिंताएँ बन गईं, और साहित्यिक मंच एक तरह से **जनता की अदालत** बन गया जहाँ सत्ता से जवाबदेही माँगी गई।

सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा

जनसरोकार केवल वर्तमान की समस्याओं का चित्रण नहीं है, बल्कि यह **सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा** से भी प्रेरित है। साहित्य ने न केवल वर्तमान की आलोचना की, बल्कि एक बेहतर भविष्य की कल्पना भी की, एक ऐसी कल्पना जो सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय स्वतंत्रता पर आधारित हो। यह आकांक्षा प्रगतिशील विचारधारा, मार्क्सवादी दर्शन और गांधीवादी आदर्शों से प्रेरित थी, जिसने लेखकों को यथास्थिति को स्वीकार न करने के लिए प्रेरित किया। सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा सबसे पहले **जाति-व्यवस्था के उन्मूलन** में परिलक्षित हुई। दलित साहित्य ने केवल अपने दर्द को व्यक्त नहीं किया, बल्कि एक **जातिविहीन समाज** की स्थापना की मांग की। यह साहित्य सदियों से दबे हुए वर्गों के आत्मसम्मान और अधिकारों के लिए एक जोरदार आवाज बना। इसी तरह, नारीवादी लेखन ने **पितृसत्तात्मक संरचनाओं को चुनौती** दी और एक ऐसे समाज की कल्पना की जहाँ महिलाओं को पुरुषों के समान अवसर और अधिकार प्राप्त हों। यह परिवर्तन की आकांक्षा थी जिसने साहित्य में रूढ़िवादी चरित्रों को तोड़कर नए, विद्रोही और आत्म-निर्भर चरित्रों को जन्म दिया। यह आकांक्षा **आर्थिक समानता** पर भी केंद्रित थी। साहित्य ने बार-बार भूमि सुधारों को प्रभावी ढंग से लागू करने, श्रमिकों के अधिकारों को सुनिश्चित करने और राष्ट्रीय संपत्ति के अधिक न्यायसंगत वितरण की वकालत की। कविता में क्रांति और विद्रोह का आह्वान किया गया, जबकि उपन्यासों ने सामाजिक-आर्थिक विषमता के कारणों और प्रभावों का विश्लेषण किया। परिवर्तन की यह इच्छा अक्सर लेखकों को अपनी रचनाओं में **सकारात्मक और आशावादी अंत** देने के लिए प्रेरित करती



छायावादोत्तर काव्य

थी, जहाँ दमनकारी शक्तियाँ पराजित होती थीं और उत्पीड़ित को न्याय मिलता था, भले ही यह यथार्थ में मुश्किल हो। सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा ने साहित्य को एक **शिक्षक और कार्यकर्ता** की भूमिका भी दी। लेखकों ने अपने काम के माध्यम से जनता को संगठित होने, अपने अधिकारों के बारे में जानने और अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार, साहित्य केवल समाज का प्रतिबिंब नहीं था, बल्कि यह उसके भविष्य को आकार देने वाला एक **सक्रिय बल** था। यह आकांक्षा साहित्य के विभिन्न रूपों में एक स्थायी आशा के रूप में प्रवाहित होती रही कि भारतीय समाज अंततः अपनी आंतरिक विसंगतियों को दूर करेगा और अपने संस्थापक आदर्शों के अनुरूप एक न्यायपूर्ण और समतावादी राष्ट्र बनेगा।

जनपक्षधरता

जनसरोकार का उच्चतम चरण **जनपक्षधरता** (Pro-People Stance or Advocacy) है। इसका अर्थ है लेखक का स्पष्ट रूप से यह घोषणा करना कि वह तटस्थ नहीं है, बल्कि वह उत्पीड़ित जनता और वंचित वर्गों के पक्ष में खड़ा है। जनपक्षधरता साहित्य को एक **नैतिक और राजनीतिक प्रतिबद्धता** प्रदान करती है, जहाँ लेखक की कलम विरोध का हथियार बन जाती है। जनपक्षधरता का जन्म इस मान्यता से हुआ कि इस विभाजित और अन्यायपूर्ण समाज में तटस्थता का अर्थ है अप्रत्यक्ष रूप से सत्ता और यथास्थिति का समर्थन करना। इसलिए, साहित्यकारों ने जानबूझकर समाज के **दलित, आदिवासी, महिला, मजदूर और किसान** जैसे हाशिये पर पड़े वर्गों की समस्याओं को अपनी रचनाओं का केंद्रीय विषय बनाया। उन्होंने अपनी लेखन शैली और भाषा को भी बदला ताकि वह आम जनता के अधिक करीब हो सके, अक्सर ग्रामीण बोलियों, क्षेत्रीय भाषाओं के मुहावरों और दलितों की आत्म-अभिव्यक्ति को अपनी रचनाओं में स्थान दिया। जनपक्षधरता ने साहित्य में **नए नायकों** को जन्म दिया। ये नायक अब उच्च वर्ग के या आदर्शवादी चरित्र नहीं थे, बल्कि वे साधारण लोग थे जो अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे थे। ये संघर्षशील महिलाएँ, विद्रोही दलित युवा और जागरूक किसान थे। इन चरित्रों के माध्यम से लेखकों ने बताया कि असली ताकत और नैतिकता समाज के निचले तबकों में निवास करती है। यह साहित्य शक्तिशाली वर्गों की **मनोवैज्ञानिक और नैतिक कमजोरी** को भी उजागर करता है, यह दिखाता है कि कैसे उनके विशेषाधिकार ने उन्हें मानव-मूल्यों से दूर कर दिया है।

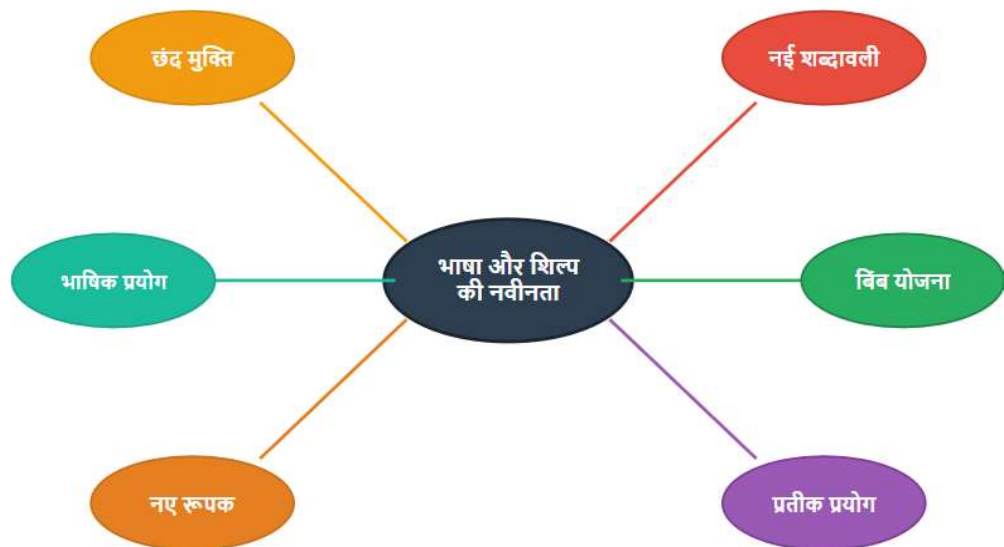
जनपक्षधरता का सबसे महत्वपूर्ण कार्य **हाशिये के वर्गों को वाणी** (Giving Voice to the Marginalized) देना था। साहित्य ने उन कहानियों को सुनाया जो मुख्यधारा के मीडिया या इतिहास में कभी जगह नहीं पाती थीं। आदिवासी साहित्य ने उनके जल, जंगल और जमीन पर बढ़ते हमलों का विरोध किया। महिला लेखकों ने निजी और सार्वजनिक जीवन में महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव के खिलाफ आवाज उठाई। इस प्रकार, जनपक्षधरता ने साहित्य को **लोकतंत्र की पहरेदारी** का कार्य दिया, जहाँ यह सुनिश्चित किया गया कि कोई भी वर्ग या समूह समाज के विमर्श से बाहर न रह जाए। यह साहित्य न केवल आलोचनात्मक था, बल्कि यह एक **सशक्तिकरण का दस्तावेज** भी था, जो आम जनता को अपनी शक्ति पहचानने और अपने भविष्य का निर्माण स्वयं करने के लिए प्रेरित करता था।

भारतीय साहित्य का यह विशाल कैनवास (5.2.1 सामाजिक यथार्थ, 5.2.2 राजनीतिक चेतना, और 5.2.3 जनसरोकार) स्वतंत्रता के बाद के भारत की एक समग्र और जटिल तस्वीर प्रस्तुत करता है। **सामाजिक यथार्थ** ने देश की गहरी जड़ों वाली विषमताओं, गरीबी और नए उभरे मध्यवर्ग की दुविधाओं को दर्ज किया। **राजनीतिक चेतना** ने आजादी के बाद के मोहभंग, भ्रष्टाचार के दानव और लोकतंत्र के खोखले होते आदर्शों पर तीखी आलोचना की। और अंत में, **जनसरोकार** ने आम आदमी की चिंताओं को आवाज दी, सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा को जीवित रखा, और स्पष्ट जनपक्षधरता के माध्यम से साहित्य को सामाजिक न्याय के संघर्ष का एक अभिन्न अंग बना दिया। यह साहित्य न केवल एक ऐतिहासिक रिकॉर्ड है, बल्कि यह एक नैतिक आह्वान भी है जो पाठकों को अपने समाज की सच्चाई से आँखें न मूंदने के लिए प्रेरित करता है। इस तरह, भारतीय साहित्य ने एक राष्ट्र के रूप में हमारे सामूहिक सपनों, विफलताओं और अनंत संघर्षों को अमर बना दिया है।

इकाई 5.3: भाषा और शिल्प की नवीनता

आधुनिक हिंदी कविता में नवीनता: भाषा, शिल्प और रूपगत परिवर्तन

हिंदी साहित्य के इतिहास में 'नई कविता' का आगमन केवल एक कालखंड का परिवर्तन नहीं था, बल्कि यह काव्य-सृजन की पूरी प्रक्रिया, दृष्टि, और प्रस्तुति में एक मौलिक क्रांति थी। छायावाद की सूक्ष्म रूमानी आध्यात्मिकता और प्रगतिवाद के सामाजिक यथार्थवाद की सीमाओं से आगे बढ़कर, नई कविता ने **आधुनिकता के संकुल बोध** को अभिव्यक्ति का आधार बनाया। इस दौर के कवियों ने जीवन की जटिलता, व्यक्ति की टूटन, शहरीकरण के तनाव, और अस्तित्ववादी संकट को महसूस किया, जिसे व्यक्त करने के लिए उन्हें परंपरागत काव्य भाषा, शिल्प, और ढाँचों को तोड़ना आवश्यक हो गया। यह नवीनता तीन प्रमुख धरातलों पर प्रकट हुई: भाषा, शिल्प (Technique) और काव्य-रूप (Forms)। इन परिवर्तनों ने हिंदी कविता को एक नई पहचान दी और उसे आधुनिक विश्व-साहित्य के समकक्ष खड़ा किया।



चित्र 5.3 भाषा और शिल्प की नवीनता

5.3.1 भाषा की नवीनता (Novelty in Language)

आधुनिक हिंदी कविता में सबसे पहला और सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन उसकी भाषा के स्तर पर दिखाई देता है। कवियों ने संस्कृतनिष्ठ, अलंकृत और 'काव्योचित' भाषा के मोह को त्यागकर, जीवन और यथार्थ के अधिक करीब की भाषा को अपनाया। यह

बदलाव कविता को अभिजात वर्ग के दायरे से निकालकर आम आदमी की रोज़मर्रा की चेतना का हिस्सा बनाने की दिशा में एक निर्णायक कदम था। भाषा की इस नवीनता के तीन मुख्य आयाम हैं, जो कविता के अंतर्निहित यथार्थ को अधिक मुखरता और प्रामाणिकता प्रदान करते हैं।

बोलचाल की भाषा (Colloquial Language)

नई कविता के कवियों ने यह महसूस किया कि जीवन की सच्चाइयाँ, विशेषकर नगरीय और महानगरीय जीवन की जटिलताएँ, उस अलंकृत और परिष्कृत भाषा में व्यक्त नहीं की जा सकतीं, जो अब तक हिंदी कविता की पहचान रही थी। इसलिए, उन्होंने **बोलचाल की भाषा** को कविता का माध्यम बनाया। इस भाषा में एक अनायासता, एक सहजता और एक **तटस्थ गद्यात्मकता** थी, जिसने कविता को आडंबर से मुक्त कर दिया। यह भाषा न केवल आम आदमी के दुख-सुख को सीधे संबोधित करती थी, बल्कि इसने कवि और पाठक के बीच एक सीधा, अनौपचारिक संवाद स्थापित किया। यह परिवर्तन केवल शब्दों के चयन तक सीमित नहीं था, बल्कि यह **वाक्य विन्यास** (Sentence Structure) और **अभिव्यक्ति की भंगिमा** (Tone of expression) में भी परिलक्षित हुआ। परंपरागत कविता में जहाँ एक विशिष्ट लय और अनुशासन के लिए वाक्य को तोड़ा-मरोड़ा जाता था, वहीं नई कविता ने सहज गद्य-वाक्य संरचना को अपनाया। इस प्रयोग ने कविता को '**कहने**' के बजाय '**बातचीत करने**' का रूप दिया। अज्ञेय, मुक्तिबोध, और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जैसे कवियों ने इस बोलचाल की भाषा के माध्यम से क्षण, दैनंदिन जीवन की विसंगतियों और व्यक्तिगत संत्रास को वह प्रामाणिकता दी, जो शास्त्रीय भाषा में संभव नहीं थी। यह बोलचाल की भाषा, यथार्थ के खुरदरेपन और अनुभव के तीखेपन को व्यक्त करने का सबसे सटीक उपकरण साबित हुई।

देशज शब्दावली (Indigenous/Local Vocabulary)

भाषा की नवीनता का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू **देशज शब्दावली** का समावेश है। नई कविता ने कविता के केंद्र को बड़े शहरों से हटाकर गाँव, कस्बों और स्थानीय जीवन की ओर मोड़ा, जिसके परिणामस्वरूप कविता में स्थानीय और आंचलिक शब्दों की सहज स्वीकार्यता बढ़ी। इन **देशज शब्दों** का प्रयोग केवल सजावट के लिए नहीं था,



छायावादोत्तर काव्य

बल्कि ये अपने साथ एक विशिष्ट सांस्कृतिक संदर्भ, एक विशेष जीवन-दृष्टि और उस मिट्टी की सोंधी महक लेकर आते थे, जहाँ वे पैदा हुए थे।

परंपरागत रूप से, हिंदी काव्य भाषा में तत्सम (संस्कृत मूल के) शब्दों की प्रधानता रही है, लेकिन नई कविता ने तद्भव और देशज शब्दों को न केवल स्थान दिया, बल्कि उन्हें केंद्रीय महत्व भी दिया। उदाहरण के लिए, रघुवीर सहाय की कविताएँ 'मामूली' या 'तुच्छ' समझी जाने वाली वस्तुओं, स्थितियों और शब्दों को महत्व देती हैं, जैसे 'ठेलना', 'कचरा', 'खटारा' या 'दरार'। ये शब्द महानगरीय या ग्रामीण जीवन के यथार्थ को बिना किसी फिल्टर के प्रस्तुत करते हैं। यह देशज शब्दावली कविता को 'भारतीयता' के मूल स्रोत से जोड़ती है और उसे उस व्यापक जनसमूह के अनुभव से एकीकृत करती है, जो अब तक काव्य की उच्च कोटि की परिधि से बाहर रहा था। यह प्रयोग भाषा को अधिक लोकतांत्रिक, लचीला और यथार्थोन्मुख बनाता है, जिससे अभिव्यक्ति की क्षमता का विस्तार होता है।

विविध भाषा प्रयोग (Diverse Language Usage)

आधुनिक जीवन की जटिलता और बहुआयामी प्रकृति को देखते हुए, नई कविता केवल बोलचाल या देशज शब्दों तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि उसने **विविध भाषा प्रयोगों** को भी अपनाया। यह विविधता आधुनिक कवि की **सचेत प्रयोगशीलता** का परिणाम थी। इस श्रेणी में निम्नलिखित प्रयोग प्रमुख हैं:

1. **विदेशी भाषाओं का मिश्रण:** शहरी जीवन और बौद्धिक विमर्श में अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रभाव स्पष्ट था। कविताओं में सहजता से 'टाई', 'प्लेटफॉर्म', 'मीटिंग', 'सिनेमा', 'ब्रेकफास्ट' जैसे शब्द आ गए, जो आधुनिक जीवन शैली का अनिवार्य हिस्सा थे। यह मिश्रण कविता को समकालीन विश्व के अनुभवों से जोड़ता था।
2. **तकनीकी एवं वैज्ञानिक शब्दावली:** जीवन के मशीनीकरण और औद्योगीकरण को व्यक्त करने के लिए कविताओं में 'फ़ैक्ट्री', 'इंजन', 'मशीन', 'रेडिएशन', 'सिग्नल' जैसे तकनीकी शब्दों का प्रयोग हुआ। ये शब्द अमूर्त भावनाओं के बजाय मूर्त, ठोस यथार्थ की ओर इशारा करते थे।

3. **सरकारी, प्रशासनिक या मीडिया की भाषा:** व्यंग्य और विडंबना को प्रकट करने के लिए कविताओं ने 'आदेश', 'नोटिफिकेशन', 'रिपोर्ट', 'दस्तावेज़', 'सरकारी घोषणा' जैसी प्रशासनिक भाषा और मीडिया की रूखी, बासी शब्दावली को भी ग्रहण किया। यह प्रयोग आधुनिक व्यवस्था की निरर्थकता और संवेदनहीनता को उजागर करने के लिए एक धारदार हथियार बना।

यह **विविध भाषा प्रयोग** यह दर्शाता है कि आधुनिक कवि किसी भी शब्द को त्याज्य नहीं मानता। उसका उद्देश्य यह है कि कविता की भाषा जीवन के हर कोने से उठे, हर स्वर को समाहित करे और आधुनिक मनुष्य के बहुस्तरीय अनुभव को ईमानदारी से व्यक्त करे। यह कविता की भाषा को एक गतिशील और ग्रहणशील इकाई के रूप में स्थापित करता है।

5.3.2 शिल्प की नवीनता (Novelty in Craft/Form)

भाषा के साथ-साथ, आधुनिक कविता ने शिल्प और प्रस्तुति के तरीकों में भी क्रांतिकारी बदलाव किए। कविताओं के आंतरिक और बाह्य ढाँचे को तोड़ा गया, जिससे अभिव्यक्ति को लय, गति और विस्तार की एक नई स्वतंत्रता प्राप्त हुई। इस शिल्पगत नवीनता के केंद्र में **मुक्त छंद**, **लंबी कविताएँ**, और **गद्यात्मक शैली** का उदय रहा।

मुक्त छंद (Free Verse)

मुक्त छंद, जिसे हिंदी में सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने शुरू किया था, नई कविता के दौर में एक स्थापित और **अनिवार्य शिल्प** बन गया। इस छंद ने कविता को **मात्रा, वर्ण, और चरण की बाह्य गणना** से मुक्त कर दिया। मुक्त छंद का लक्ष्य केवल बाह्य नियमों को तोड़ना नहीं था, बल्कि **आंतरिक लय** (Internal Rhythm) को खोजना था, जो कवि के अनुभव और भावना के उतार-चढ़ाव से निर्धारित होती है। मुक्त छंद में, कविता की गति और लय **अर्थ के संवेग** (Momentum of Meaning) और **भाव के प्रवाह** (Flow of Emotion) से निर्देशित होती है। कवि अब अपनी बात को पूरी तरह से व्यक्त करने के बाद ही पंक्ति समाप्त करता है, न कि किसी पूर्व-निर्धारित माप पर। इससे कविताओं में एक **स्वाभाविक वक्रता** (Natural Curvature) और **मानसिक**



छायावादोत्तर
काव्य

लय (Psychological Rhythm) का समावेश हुआ। लंबी, जटिल, और मनोवैज्ञानिक अनुभवों को व्यक्त करने के लिए यह छंद सर्वथा उपयुक्त साबित हुआ। इस शिल्प ने कविता को एक **आत्म-निर्भर कलाकृति** बना दिया, जहाँ उसका 'छंद' उसके आंतरिक विषय-वस्तु से उपजा, न कि किसी बाहरी परंपरा से आरोपित हुआ। यह मुक्त छंद ही वह आधार बना जिस पर आधुनिक कविता ने अपनी स्वतंत्र पहचान गढ़ी।

लंबी कविताएँ (Long Poems)

नई कविता की एक विशिष्ट पहचान **लंबी कविताओं** का व्यापक चलन है। ये लंबी कविताएँ परंपरागत महाकाव्यों से भिन्न थीं। जहाँ महाकाव्य एक विस्तृत कथा, ऐतिहासिक घटनाक्रम या किसी महान नायक के जीवन का चित्रण करते थे, वहीं आधुनिक **लंबी कविताएँ** अक्सर एक **व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक अनुभव, एक दार्शनिक अन्वेषण, या समकालीन जीवन की किसी जटिल विडंबना** पर केंद्रित होती थीं।

इन कविताओं का विस्तार भौतिक नहीं, बल्कि **मानसिक और वैचारिक** होता था। मुक्तिबोध की '**अंधेरे में**' या अज्ञेय की '**असाध्य वीणा**' जैसी कविताएँ इसका उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनमें कवि यथार्थ की परतें उघाड़ने के लिए, आत्म-संघर्ष को गहराई से समझने के लिए, और फैटेसी तथा मिथक के माध्यम से अपने समय की सच्चाइयों को उजागर करने के लिए विस्तृत कैनवास का प्रयोग करता है। लंबी कविता का शिल्प कवि को विस्तृत **बौद्धिक विमर्श, पात्रों के आंतरिक मोनोलॉग, और विचारों के आकस्मिक प्रवाह** को बिना किसी बाधा के समाहित करने की छूट देता है। यह कविता के दायरे को केवल भावात्मक अभिव्यक्ति तक सीमित न रखकर उसे एक **दार्शनिक और वैचारिक संरचना** का रूप देता है।

गद्यात्मक शैली (Prosaic Style)

शिल्प की नवीनता में **गद्यात्मक शैली** का प्रयोग एक क्रांतिकारी कदम था। इस प्रयोग ने कविता और गद्य के बीच की बारीक रेखा को धुंधला कर दिया। इस शैली में लिखी

गई कविताओं की पंक्तियाँ किसी निश्चित छंद, तुकांत या लय का पालन नहीं करतीं; वे सीधे, सपाट, और **गद्य के प्रवाह** में चलती हैं।

गद्यात्मक शैली अपनाने का मुख्य कारण यह था कि आधुनिक कवि **वैचारिक स्पष्टता, तर्कात्मकता और अनुभव के खुरदरे यथार्थ** को सीधे व्यक्त करना चाहता था। बोलचाल की भाषा और मुक्त छंद के साथ मिलकर, यह गद्यात्मकता कविता को एक **रिपोर्टिंग का अंदाज़** देती है—जैसे वह पाठक से कोई महत्वपूर्ण सूचना या गोपनीय तथ्य साझा कर रही हो। रघुवीर सहाय, धूमिल और श्रीकांत वर्मा की कविताओं में यह शैली प्रमुखता से मिलती है। वे सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों पर टिप्पणी करते हैं, जहाँ सीधी आलोचना, विडंबना, और व्यंग्य को प्रभावी बनाने के लिए गद्य की तटस्थता का उपयोग आवश्यक हो जाता है। यह शैली कविता को **'सौंदर्यबोध' की पारंपरिक अवधारणा** से मुक्त करके उसे **'सत्यबोध'** के अधिक करीब लाती है।

5.3.3 काव्य रूपों में परिवर्तन (Changes in Poetic Forms)

आधुनिक कविता ने न केवल अपनी भाषा और शिल्प को बदला, बल्कि इसने काव्य रूपों की परंपरा और प्रकृति में भी गहरा हस्तक्षेप किया। कई परंपरागत रूप तिरोहित हुए, जबकि नए रूप, जिनमें **फैंटेसी** और **नाटकीय संरचना** प्रमुख थे, काव्य को एक नया आयाम देने में सफल रहे। यह परिवर्तन काव्य को केवल रस या आनंद का साधन न मानकर उसे **जटिल सामाजिक यथार्थ और मानवीय चेतना की प्रयोगशाला** बनाने की ओर इशारा करता है।

प्रबंध और मुक्तक (Narrative and Lyrical/Short Forms)

परंपरागत हिंदी काव्य में **प्रबंध काव्य** (महाकाव्य और खंडकाव्य) और **मुक्तक काव्य** (दोहे, पद, गीतिकाव्य) दो प्रमुख रूप थे। नई कविता के दौर में, **प्रबंध काव्य की परंपरा लगभग समाप्त** हो गई। आधुनिक कवि को किसी विशाल, स्थापित नैतिक या ऐतिहासिक कथा में रुचि नहीं थी। उसका केंद्र बिंदु समकालीन, खंडित यथार्थ और **व्यक्ति का आंतरिक सत्य** था।



छायावादोत्तर
काव्य

इसके विपरीत, **मुक्तक काव्य** का रूप परिवर्तित होकर **छोटी कविता** या **लघु कविता** के रूप में प्रबल हुआ। यह लघु कविता छायावाद के गीतिकाव्य से भिन्न थी। इसमें **गेयता** (Melody) और **रोमानी भावना** कम थी, जबकि **ठोस क्षण-बोध, तीव्र वैचारिक संघात, और यथार्थ की विसंगति** को एक क्षण में पकड़ने की तीव्रता अधिक थी। यह छोटी कविता आधुनिक मनुष्य की **अखंडित क्षणों में जीने की मजबूरी** को व्यक्त करती थी। इसने अपने संक्षिप्त आकार में एक पूर्ण अनुभव को समेटने की कला विकसित की। इस प्रकार, आधुनिक कविता ने प्रबंध के व्यापक फैलाव को त्यागकर, मुक्तक की संक्षिप्त तीव्रता को अपनाया, जो आधुनिक जीवन की गति और विखंडन के लिए अधिक उपयुक्त थी।

फैंटेसी (Fantasy)

आधुनिक हिंदी कविता में **फैंटेसी** का प्रयोग रूपगत नवीनता का एक अत्यंत विशिष्ट और जटिल उदाहरण है। यहाँ 'फैंटेसी' का अर्थ केवल कोरी कल्पना या परी-कथा नहीं है, बल्कि यह **यथार्थ की भयावहता** को उसकी पूरी सघनता में प्रस्तुत करने के लिए कवि द्वारा निर्मित एक **विशिष्ट प्रतीकात्मक संरचना** है। मुक्तिबोध को फैंटेसी का सबसे बड़ा और मौलिक प्रयोक्ता माना जाता है। उनकी कविताओं में, फैंटेसी एक ऐसी तकनीक है जो **अचेतन मन के अंधकार, राजनीतिक दमन, और सामाजिक विसंगतियों** को मूर्त रूप देती है। कवि एक काल्पनिक दृश्य, एक अजीब पात्र (जैसे ब्रह्मराक्षस), या एक अति-यथार्थवादी स्थिति का निर्माण करता है, ताकि वह **सीधे, तर्कसंगत भाषा** में व्यक्त न किए जा सकने वाले गहरे सत्यों को उजागर कर सके। फैंटेसी का उपयोग करके, कवि सेंसरशिप और सतही यथार्थवाद की सीमाओं को तोड़ता है और पाठक को उसके अपने अचेतन तथा सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के गुप्त तंत्रों का सामना करने के लिए मजबूर करता है। इस तरह, फैंटेसी एक काव्य-रूप बन जाती है, जो यथार्थ को विकृत करके, अंततः उसे और भी अधिक सघनता से व्यक्त करता है।

नाटकीय संरचना (Dramatic Structure)

आधुनिक हिंदी कविता, विशेष रूप से 1940 के दशक के बाद, अपनी भावात्मक और शैलीगत सीमाओं के कारण एक गंभीर संकट से गुज़री थी। छायावाद की एकात्मक

आत्म-संवाद (Monologue) की शैली, जहाँ कवि का 'मैं' ही ब्रह्मांड का केंद्र था, और प्रगतिवाद की राजनीतिक नारेबाजी, जहाँ कविता मात्र कथन या वक्तव्य बनकर रह गई थी, दोनों ही आधुनिक जीवन की बढ़ती हुई जटिलता, विखंडन (Fragmentation) और बौद्धिक द्वंद्व को अभिव्यक्त करने में असमर्थ साबित हो रही थीं। यहीं से कविता में एक मौलिक परिवर्तन आया: कवि ने अपने 'मैं' को त्यागकर नाटकीय संरचना को अपनाया।

नाटकीय संरचना का प्रवेश कविता को केवल 'गीत' या 'कथन' (Statement) तक सीमित न रखकर, उसे 'क्रिया' (Action) और 'संघर्ष' (Conflict) का रूप देता है। यह परिवर्तन कविता को एक निष्क्रिय पाठ से हटाकर, बहुआयामी संवाद (Dialogue), चरित्र-चित्रण और वस्तुनिष्ठता की ओर ले जाता है। नाटकीयता का अर्थ केवल संवादों का प्रयोग नहीं है, बल्कि यह कविता में एक ऐसा ढाँचा विकसित करती है जो तनाव, गति, और विभिन्न दृष्टिकोणों के टकराव को एक साथ साधता है। कवि अब अपनी बात सीधे नहीं कहता; वह एक पात्र (Persona) के माध्यम से, एक विशेष दृश्य में, और एक विशिष्ट समय-संदर्भ में बात करता है। यह तकनीक कवि को अपनी भावनाओं और विचारों को व्यक्तिगत सीमा से निकालकर सार्वभौमिक और ऐतिहासिक संदर्भ प्रदान करने की स्वतंत्रता देती है। इस प्रक्रिया में, कविता का वाचक (Speaker) और श्रोता (Listener) दोनों ही सक्रिय हो जाते हैं—वाचक अपनी वस्तुनिष्ठता को बनाए रखता है, और पाठक या श्रोता कविता के संघर्ष में एक सक्रिय दर्शक की भूमिका निभाता है। इस तरह, आधुनिक कविता ने अपने आंतरिक यथार्थ को बाहरी और मूर्त रूप देने के लिए नाटक की कलात्मक युक्तियों का सहारा लिया, जिससे उसका प्रभाव गहरा और स्थायी हो गया।

नाटकीयता का उद्भव: वैचारिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

आधुनिक कविता में नाटकीय संरचना का उद्भव किसी आकस्मिक घटना का परिणाम नहीं था, बल्कि यह 20वीं शताब्दी के महत्वपूर्ण वैचारिक और साहित्यिक बदलावों की प्रतिक्रिया थी।



छायावादोत्तर
काव्य

छायावादी आत्म-केन्द्रण की प्रतिक्रिया

छायावादी कविता भावुकता, कल्पनाशीलता और आत्म-निवेदन (Self-submission) पर अत्यधिक केंद्रित थी। कवि और कविता का विषय अक्सर एक ही होता था—कवि का व्यक्तिगत दुःख, प्रेम या रहस्यवादी जिज्ञासा। 1940 के दशक तक, यह शैली बासी हो चुकी थी। कवि महसूस करने लगे कि आधुनिक जीवन का अकेलापन (Alienation), दो विश्व युद्धों की भयावहता, और बढ़ती बौद्धिक जटिलता को केवल मधुर लय और व्यक्तिगत भावुकता से व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसके लिए एक ऐसे माध्यम की आवश्यकता थी जो जीवन के विखंडित यथार्थ को पकड़ सके और विभिन्न दृष्टिकोणों को टकरा सके। नाटकीयता ने कवि को अपने व्यक्तिगत अहसास से मुक्ति दिलाई और उसे एक सामाजिक, ऐतिहासिक, या पौराणिक मुखौटा (Mask) पहनने की सुविधा दी।

बौद्धिकता और वस्तुनिष्ठता का आग्रह

प्रयोगवादी और नई कविता के दौर में, पश्चिमी साहित्य, विशेष रूप से टी.एस. इलियट (T.S. Eliot) के 'नाटकीय एकालाप' (Dramatic Monologue) और अस्तित्ववादी दर्शन (Existentialism) का गहरा प्रभाव पड़ा। इलियट ने कवि को सलाह दी थी कि कविता को 'भावों की अभिव्यक्ति' नहीं, बल्कि 'भावों से पलायन' होना चाहिए। इस विचार ने वस्तुनिष्ठता को बढ़ावा दिया। नाटकीय संरचना, विशेष रूप से पात्रों के माध्यम से बोलना, कवि को अपनी बात को व्यक्तिगत आग्रहों से मुक्त करके वस्तुनिष्ठ सत्य के रूप में प्रस्तुत करने का अवसर देती है। यह बौद्धिक दूरी कवि को अपने विषय पर अधिक आलोचनात्मक और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाने में सहायक होती है।

आधुनिकता का विखंडित यथार्थ

आधुनिक मनुष्य एक सरल, एकीकृत इकाई नहीं रहा। वह अनेक विरोधाभासी शक्तियों का पुंज है—परंपरा और आधुनिकता, आस्था और संदेह, आशा और निराशा। नाटकीय संरचना इस विखंडन को बखूबी चित्रित करती है। कविता में एकालाप का प्रयोग मन के चेतन और अवचेतन के बीच के द्वंद्व को दर्शाता है (जैसे

मुक्तिबोध के यहाँ)। संवादों का प्रयोग वैचारिक या सामाजिक टकराव को सीधे पाठकों के सामने रखता है। इस प्रकार, नाटकीय संरचना आधुनिकता के जटिल और संघर्षपूर्ण यथार्थ को व्यक्त करने का एक अनिवार्य माध्यम बन गई, जिसने कविता को उसकी संकीर्ण, गीतात्मक पहचान से निकालकर व्यापक, बहुआयामी कला-रूप में स्थापित किया।

तत्व 1: पात्र और मुखौटे (Persona and Masks) की वस्तुनिष्ठता

नाटकीय संरचना का सबसे महत्वपूर्ण और क्रांतिकारी तत्व पात्र (Persona) या मुखौटे (Masks) का प्रयोग है। 'पर्सोना' शब्द लैटिन भाषा से आया है, जिसका अर्थ है 'मुखौटा' या 'पात्र जिसके माध्यम से ध्वनि आती है'। जब आधुनिक कवि इस मुखौटे को धारण करता है, तो वह कविता को केवल आत्म-कथा नहीं रहने देता, बल्कि उसे दूसरे की दृष्टि (the other's perspective) से देखने का मौका देता है।

मुखौटे का उद्देश्य: वस्तुनिष्ठता और व्यापकता

मुखौटे का प्राथमिक उद्देश्य वस्तुनिष्ठता प्राप्त करना है। कवि अपने विचारों या भावनाओं को सीधे व्यक्त करने के बजाय एक पात्र के मुँह से कहलवाता है। इससे कवि की व्यक्तिगत सीमाएँ टूट जाती हैं और उसके विचार एक ऐतिहासिक या सार्वभौमिक संदर्भ प्राप्त कर लेते हैं। उदाहरण के लिए, धर्मवीर भारती जब 'कनुप्रिया' के मुखौटे से बात करते हैं, तो वे केवल राधा के प्रेम की बात नहीं करते; वे पौराणिक संदर्भों का उपयोग करते हुए युद्ध के औचित्य, प्रेम के मूल्य और आधुनिक स्त्री के मनोविज्ञान पर प्रश्न उठाते हैं। यह मुखौटा कविको अपनी बात को अधिक साहस और आलोचनात्मक दूरी के साथ कहने की स्वतंत्रता देता है।

विभिन्न प्रकार के मुखौटे और उनका उपयोग

नाटकीय संरचना में तीन मुख्य प्रकार के मुखौटे प्रयोग किए गए:

1. पौराणिक/ऐतिहासिक पात्र: ये पात्र अतीत के होते हैं, लेकिन कवि उन्हें आधुनिक चेतना से युक्त करके प्रस्तुत करता है। *कनुप्रिया* (राधा), *उर्वशी* (दिनकर), या *प्रमथ्यु* (अज्ञेय) इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। ये मुखौटे आधुनिक मनुष्य के शाश्वत



छायावादोत्तर
काव्य

द्वंद्वों—जैसे प्रेम, त्याग, सत्ता और विद्रोह—को एक परिचित ढाँचे में प्रस्तुत करते हैं, जिससे पाठक उनके साथ तुरंत भावनात्मक और वैचारिक रूप से जुड़ जाता है। पौराणिक पात्रों का आधुनिकीकरण कविता को मिथकीय गहराई प्रदान करता है।

2. समकालीन काल्पनिक पात्र: मुक्तिबोध की कविताओं में अक्सर एक बौद्धिक, बेचैन और आत्म-संघर्षरत पात्र दिखाई देता है ('अँधेरे में' का नायक)। यह पात्र कवि का सीधा प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि उस युगीन मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी की आत्मा का प्रतिनिधित्व करता है जो व्यवस्था के भ्रष्टाचार और अपनी व्यक्तिगत सीमाओं से जूझ रहा है। यह मुखौटा समकालीन मानसिक यथार्थ को अधिक प्रामाणिकता से दर्शाता है।
3. अ-चरित्र पात्र (Abstract Persona): कभी-कभी कवि किसी अमूर्त विचार (जैसे समय, मृत्यु, या इतिहास) को ही एक पात्र का रूप दे देता है। अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' में प्रियंवद का मुखौटा एक ऐसा ही दार्शनिक और कलात्मक मुखौटा है जो आत्म-साधना और अहंकार-त्याग की जटिल प्रक्रिया को व्यक्त करता है। यह मुखौटा कविता को केवल व्यक्ति के स्तर से उठाकर दार्शनिक और आध्यात्मिक धरातल पर ले जाता है।

पात्रों का यह प्रयोग कविता को केवल भावात्मक 'कथन' से निकालकर एक क्रियाशील, विचारशील और बहुआयामी कला-रूप में बदल देता है, जहाँ कवि की व्यक्तिगत आवाज एक व्यापक, वस्तुनिष्ठ सत्य के माध्यम से गूँजती है।

तत्व 2: मोनोलॉग और डायलॉग का मनोवैज्ञानिक और वैचारिक तनाव

नाटकीय संरचना का दूसरा आवश्यक तत्व कविता में मोनोलॉग (एकालाप) और डायलॉग (संवाद) का उपयोग है, जो कविता में गति, तनाव और मनोवैज्ञानिक गहराई उत्पन्न करता है।

एकालाप (Monologue): आंतरिक संघर्ष और अंतःकरण की अभिव्यक्ति

नाटकीय एकालाप तब होता है जब एक पात्र अपनी बात स्वयं से या एक अनाम श्रोता से कहता है, जबकि अन्य पात्र (यदि कोई हो) या तो अनुपस्थित होते हैं या चुप रहते

हैं। आधुनिक कविता में एकालाप का प्रयोग मनुष्य के आंतरिक संघर्ष, मनोवैज्ञानिक जटिलताओं और 'चेतना की धारा' (Stream of Consciousness) को व्यक्त करने के लिए किया गया।

- मनोवैज्ञानिक गहराई: मुक्तिबोध की लंबी कविताएँ एकालाप का सर्वोत्तम उदाहरण हैं। उनका नायक समाज के बाहरी यथार्थ को देखते हुए भी, भीतर ही भीतर आत्म-आलोचना, आत्म-निर्णय और आत्म-विभाजन के द्वंद्व से गुज़रता है। एकालाप उस जटिल और अंधकारमय मनःस्थिति को अभिव्यक्त करता है जहाँ सत्य और असत्य, प्रकाश और अँधेरा, लगातार टकराते रहते हैं। एकालाप की यह प्रक्रिया कविता को एक मनोवैज्ञानिक वृत्तचित्र का रूप दे देती है।
- दार्शनिक चिंतन: अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' में प्रियंवद का एकालाप केवल एक वादन का वर्णन नहीं है, बल्कि अहंकार-शून्यता, समर्पण और कला-साधना के दार्शनिक विषयों पर गहन चिंतन है। एकालाप की यह शैली कवि को विषय की गहराई में उतरने और दार्शनिक निष्कर्षों तक पहुँचने में मदद करती है, बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के।

संवाद (Dialogue): विचारों का टकराव और गतिशील विमर्श

कविता में संवाद का प्रयोग तब होता है जब दो या दो से अधिक पात्र विचारों, भावनाओं या स्थितियों पर परस्पर बातचीत करते हैं। यह कविता में नाटकीयता और गति उत्पन्न करने का सबसे प्रत्यक्ष माध्यम है।

- वैचारिक टकराव: संवाद अक्सर दो विरोधी दृष्टिकोणों के टकराव को सामने लाता है। धर्मवीर भारती की *कनुप्रिया* में राधा का कृष्ण से किया गया आंतरिक संवाद (जो वास्तविक संवाद न होकर भी संवाद की शक्ति रखता है) प्रेम और कर्तव्य के बीच के सनातन द्वंद्व को दिखाता है। यह टकराव कविता को एक आयामी (unidimensional) होने से बचाता है और उसे विमर्श (discourse) का रूप देता है।
- सामाजिक क्रिया: नागार्जुन की कविताएँ, जिनमें ग्रामीण पात्रों के सीधे संवाद का प्रयोग होता है, सामाजिक यथार्थ और वर्ग-संघर्ष को तात्कालिक और जीवंत बनाते हैं। संवाद कविता को केवल विचार नहीं रहने देता; वह उसे सामाजिक क्रिया का



छायावादोत्तर
काव्य

हिस्सा बना देता है। पाठक संवाद के माध्यम से पात्रों की सामाजिक स्थिति, भाषा और जीवन-दृष्टि को सीधे अनुभव करता है। मोनोलॉग आंतरिक तनाव (Internal Tension) को जन्म देता है, जबकि डायलॉग बाहरी संघर्ष (External Conflict) को। इन दोनों का कुशल संयोजन आधुनिक कविता को एक ऐसा रूप देता है जो मन और समाज, विचार और क्रिया, दोनों को एक साथ गतिशील रूप से व्यक्त कर सकता है।

तत्व 3: दृश्यों का परिवर्तन (Scene Shifts) और काव्यात्मक गति

पारंपरिक कविताएँ एक ही भाव या विचार को एक स्थिर पृष्ठभूमि में प्रस्तुत करती थीं। इसके विपरीत, नाटकीय संरचना में दृश्यों का परिवर्तन (Scene Shifts) एक अनिवार्य तत्व बन गया, जिसने कविता को सिनेमैटिक गति (Cinematic Pace) और यथार्थ के विखंडित कोणों को प्रस्तुत करने की क्षमता दी।

बिम्बों का प्रयोग: दृश्य-परिवर्तन के संकेतक

नाटकीय कविता में दृश्य-परिवर्तन किसी नाटक की तरह मंच पर भौतिक रूप से नहीं होता, बल्कि यह बिम्बों (Images), प्रतीकों और समय-संदर्भों के त्वरित बदलाव से संभव होता है। कवि एक क्षण में युद्ध के मैदान का भयानक बिम्ब प्रस्तुत करता है, और अगले ही क्षण पात्र के एकांत कक्ष या अतीत की मधुर स्मृति का बिम्ब ले आता है।

- तेज कर्तन (Fast Cutting): मुक्तिबोध की कविताएँ इसका उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनकी कविता का ढाँचा लगातार और अप्रत्याशित रूप से बदलता है। एक पल में अँधेरा है, दूसरे पल प्रकाश, फिर कोई गली, कोई तहखाना, या कोई ऐतिहासिक घटना। यह तीव्र कर्तन (Editing) पाठक को बौद्धिक उत्तेजना और वैचारिक अस्थिरता का अनुभव कराता है, जो आधुनिक मनःस्थिति का प्रतीक है।
- समय का विखंडन: दृश्य परिवर्तन अतीत, वर्तमान और भविष्य के बीच की दूरी को मिटा देता है। अतीत की घटनाएँ वर्तमान के संघर्ष में हस्तक्षेप करती हैं, और भविष्य की आशंकाएँ वर्तमान के निर्णय को प्रभावित करती हैं। *कनुप्रिया* में, राधा का मन वर्तमान में कृष्ण के कुरुक्षेत्र में होने के बावजूद, लगातार यमुना के तट,

रासलीला और प्रेम के क्षणों के दृश्यों में भटकता रहता है। यह कालातीत (Timeless) गति कविता को एक मिथकीय विस्तार देती है।

गति और तनाव का निर्माण

दृश्य परिवर्तन कविता में तनाव (Tension) और गति उत्पन्न करता है। जब पात्र एक दृश्य (मानसिक शांति) से दूसरे दृश्य (सामाजिक उथल-पुथल) में जाता है, तो पाठक को उस परिवर्तन के कारण उत्पन्न हुए संघर्ष का सामना करना पड़ता है। यह संघर्ष केवल पात्र का नहीं, बल्कि विचारधाराओं का भी होता है। उदाहरण के लिए, एक प्रगतिशील कवि की नाटकीय कविता में, एक दृश्य में मजदूर का श्रम और पसीना दिखाया जाता है, और अगले दृश्य में पूँजीपति की वैभवशाली कोठी या दफ्तर। यह दृश्य परिवर्तन स्वयं में एक वर्ग-संघर्ष का वक्तव्य है, जो पाठक को भावनात्मक और सामाजिक रूप से झकझोरता है। नाटकीय संरचना कविता को एक 'वातावरण' (Atmosphere) से निकालकर एक 'क्रियाशील घटना' (Active Event) में बदल देती है, जिससे पाठक कविता में एक सक्रिय भागीदार बन जाता है।

केस स्टडी: धर्मवीर भारती की 'कनुप्रिया' में नाटकीय संरचना

धर्मवीर भारती की 'कनुप्रिया' आधुनिक हिंदी कविता में नाटकीय संरचना के प्रयोग का एक उत्कृष्ट और प्रतिनिधि उदाहरण है। यह लंबी कविता न केवल एक पौराणिक मुखौटा (राधा) धारण करती है, बल्कि पूरी तरह से एकालाप, दृश्य परिवर्तन और आंतरिक संघर्ष के माध्यम से बुनी गई है।

राधा का मुखौटा: पौराणिक पात्र का आधुनिकीकरण

कनुप्रिया (राधा) का मुखौटा आधुनिक कवि के लिए एक शक्तिशाली उपकरण सिद्ध होता है। राधा, जो पारंपरिक रूप से केवल प्रेम और भक्ति की प्रतीक है, यहाँ आधुनिक चेतना की प्रतिनिधि बन जाती है। वह कृष्ण के युद्ध-धर्म (कुरुक्षेत्र) और अपने प्रेम-धर्म के बीच के द्वंद्व को जीती है। यह मुखौटा कवि को निम्नलिखित की स्वतंत्रता देता है:



छायावादोत्तर
काव्य

1. व्यक्तिगत सीमा से मुक्ति: भारती सीधे युद्ध की निरर्थकता पर सवाल नहीं करते; वह राधा के प्रेम से सवाल करवाते हैं, जिससे प्रश्न की धार अधिक नैतिक और भावनात्मक हो जाती है।
2. प्रेम का नया अर्थ: राधा का एकालाप यह स्थापित करता है कि इतिहास और महाकाव्य केवल बड़े-बड़े नायकों और युद्धों के नहीं होते, बल्कि उनमें प्रेम जैसे छोटे और व्यक्तिगत अनुभवों का भी महत्व होता है। उसका प्रेम युद्ध की विराटता के सामने एक प्रतिरोध बन जाता है।

एकालाप और संवाद का द्वंद्व

'कनुप्रिया' पूरी तरह से राधा का एकालाप है, लेकिन यह एकालाप आंतरिक रूप से संवादधर्मी है।

- आंतरिक मोनोलॉग: राधा का मन कुरुक्षेत्र के भयानक दृश्य, कृष्ण के उपदेशों (गीता) और अपने बीते हुए प्रेम के मधुर क्षणों के बीच भटकता है। यह मोनोलॉग उसके मन की उथल-पुथल, कुंठा और निराशा को व्यक्त करता है। वह अपने भीतर ही कृष्ण के उपदेशों की निरर्थकता पर सवाल उठाती है: "क्या तुम्हारे सब तर्क/ केवल इस महायुद्ध के लिए थे?"
- अदृश्य संवाद: यह कविता कृष्ण के अदृश्य संवाद से भरी हुई है। राधा लगातार कृष्ण को संबोधित करती है, उनके कर्मों का विश्लेषण करती है, और उनके फैसलों को चुनौती देती है। हालाँकि कृष्ण मौन हैं, राधा के शब्द ही उनके बीच के वैचारिक और भावनात्मक अंतराल को स्पष्ट कर देते हैं। प्रेम और धर्म का यह वैचारिक द्वंद्व कविता को चरम नाटकीयता प्रदान करता है।

दृश्यों का भावनात्मक परिवर्तन

कविता का ढाँचा लगातार दो विरोधी दृश्यों के बीच बदलता रहता है, जिससे एक गहरा भावनात्मक तनाव उत्पन्न होता है:

1. कुरुक्षेत्र का दृश्य: जहाँ युद्ध, रक्त और मृत्यु का भयानक यथार्थ है, जो कृष्ण के कर्म-धर्म का प्रतीक है।

2. यमुना तट का दृश्य: जहाँ रास, बाँसुरी, और प्रेम के मधुर क्षण हैं, जो राधा के प्रेम-धर्म का प्रतीक है।

यह तीव्र दृश्य परिवर्तन कविता में गति लाता है और पाठक को यह निर्णय लेने पर मजबूर करता है कि जीवन में व्यक्तिगत प्रेम के क्षणों का महत्व अधिक है या सामूहिक इतिहास और महाकाव्य के बड़े संघर्षों का। 'कनुप्रिया' नाटकीय संरचना का उपयोग करके कविता को केवल एक मधुर गीत नहीं रहने देती, बल्कि उसे आधुनिक मनुष्य के नैतिक, भावनात्मक और दार्शनिक संघर्ष का मंच बना देती है।

नाटकीयता का दार्शनिक और सौंदर्यशास्त्रीय प्रभाव: क्रिया बनाम कथन

आधुनिक कविता में नाटकीय संरचना का प्रवेश केवल एक शैलीगत चुनाव नहीं था; यह कविता के दार्शनिक आधार और सौंदर्यशास्त्रीय मूल्यों पर सीधा प्रभाव डालता है। इसका सबसे बड़ा प्रभाव कविता के कथन (Statement) से क्रिया (Action) की ओर संक्रमण है।

'क्रिया' (Action) का महत्व

नाटकीय कविता में 'क्रिया' से तात्पर्य भौतिक घटना से नहीं, बल्कि मनुष्य के आत्मिक और बौद्धिक संघर्ष को मूर्त रूप देने से है। जब कवि एक पात्र (persona) के माध्यम से बोलता है, तो वह केवल एक विचार को बताता नहीं, बल्कि उस विचार को एक घटना या संघर्ष के रूप में पाठकों के सामने प्रदर्शित करता है।

- Showing, Not Telling: 'कथन' (Telling) में कवि सीधा निष्कर्ष दे देता है। 'क्रिया' (Showing) में वह पाठक को पात्र के संघर्ष, उसके चुनाव (Choices) और उसके द्वंद्व की प्रक्रिया से गुज़ारता है। उदाहरण के लिए, प्रगतिशील कविता में सीधा 'कथन' हो सकता है: "शोषण बुरा है।" जबकि एक नाटकीय कविता में, मजदूर पात्र के संवाद और दृश्य परिवर्तन के माध्यम से शोषण के परिणामों को अनुभव कराया जाता है। यह अनुभवजन्य प्रस्तुति कविता के प्रभाव को कई गुना बढ़ा देती है।



छायावादोत्तर
काव्य

- पाठक की भागीदारी: 'क्रिया' पाठक को कविता में एक सक्रिय दर्शक की भूमिका निभाने के लिए प्रेरित करती है। पाठक को पात्र के क्रियाकलापों और संवादों का विश्लेषण करना पड़ता है, उसके संघर्ष के परिणामों का अनुमान लगाना पड़ता है, और अंत में, पात्र के चुनाव के नैतिक मूल्य पर स्वयं निर्णय लेना पड़ता है।

बहुआयामी सौंदर्यबोध

नाटकीय संरचना कविता के सौंदर्यबोध को भी विस्तार देती है। पारंपरिक कविता का सौंदर्य लय, उपमा और मधुरता में निहित था। नाटकीय कविता का सौंदर्य संरचना, विडंबना (Irony), तनाव और बौद्धिक गहराई में निहित होता है।

- विद्रूप और विडंबना: मुखौटे का प्रयोग कवि को अक्सर विडंबना का उपयोग करने की सुविधा देता है। जब एक पौराणिक पात्र आधुनिक शब्दावली में बोलता है, तो यह विडंबना स्वयं में एक गहरा सामाजिक और सांस्कृतिक वक्तव्य होती है। विद्रूप (Grotesque) और व्यंग्य को भी नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया जाता है, जिससे कविता का सौंदर्य केवल मधुर न रहकर, तीखा और विचारोत्तेजक हो जाता है।
- संघर्ष का सौंदर्य: नाटकीय कविता में 'संघर्ष' स्वयं एक सौंदर्य मूल्य है। पात्रों के बीच का टकराव, विचारों का द्वंद्व, और दृश्यों का अप्रत्याशित परिवर्तन—ये सभी मिलकर एक संरचनात्मक सौंदर्य का निर्माण करते हैं, जो कविता को एक महाकाव्यात्मक विस्तार देता है, भले ही वह कुछ ही पंक्तियों की क्यों न हो।

इस प्रकार, नाटकीय संरचना कविता को भावात्मक 'कथन' से निकालकर चरित्र, क्रिया और संघर्ष से युक्त एक शक्तिशाली 'घटना' में बदल देती है, जिससे कविता आधुनिक जीवन की बहुआयामी चुनौतियों के लिए एक उपयुक्त कला-रूप बन जाती है।

नाटकीय संरचना की विरासत और आधुनिक कविता का भविष्य

आधुनिक हिंदी कविता में नाटकीय संरचना का प्रवेश एक युगांतरकारी घटना थी जिसने कविता के स्वरूप और उसके उद्देश्य को मौलिक रूप से बदल दिया। यह

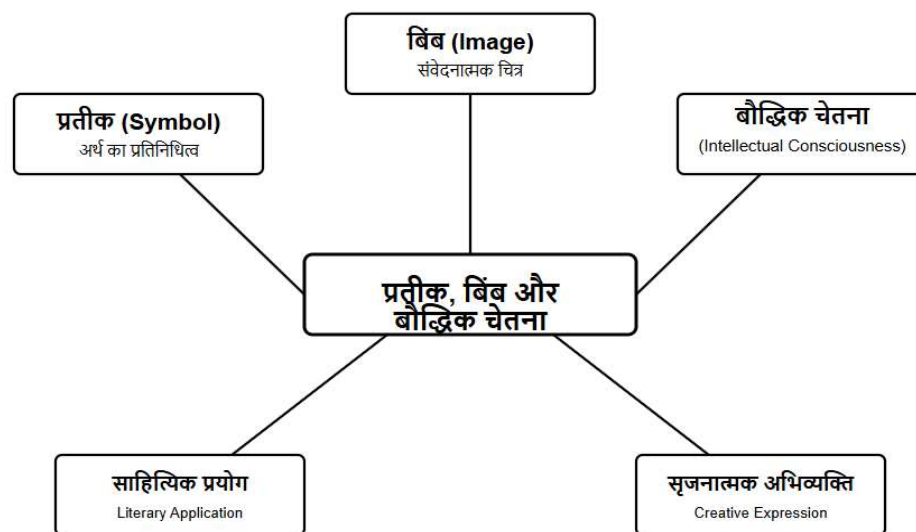
परिवर्तन केवल शिल्पगत नहीं था, बल्कि वैचारिक, दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक था। कवि ने व्यक्तिगत 'मैं' की सीमा को तोड़कर पौराणिक, ऐतिहासिक और काल्पनिक 'वह' का मुखौटा धारण किया, जिससे कविता को वस्तुनिष्ठता, सार्वभौमिकता और आलोचनात्मक दूरी प्राप्त हुई। पात्र और मुखौटे ने कवि को अपनी बात को अधिक साहस और वस्तुनिष्ठता के साथ कहने की स्वतंत्रता दी, जबकि एकालाप और संवाद ने कविता में मनोवैज्ञानिक गहराई और वैचारिक तनाव उत्पन्न किया। दृश्यों का परिवर्तन ने कविता को सिनेमैटिक गति और विखंडित यथार्थ को पकड़ने की क्षमता दी, जिससे पाठक कविता में एक निष्क्रिय श्रोता न रहकर, एक सक्रिय विश्लेषक और दर्शक बन गया। धर्मवीर भारती की *कनुप्रिया* जैसी रचनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि नाटकीय संरचना ने कविता को केवल भावुकता की अभिव्यक्ति तक सीमित न रखकर, उसे जीवन के बड़े संघर्षों और नैतिक द्वंद्वों का मंच बना दिया। संक्षेप में, नाटकीय संरचना ने आधुनिक कविता को 'गीत' से 'नाटक' के स्तर तक उठा दिया, जहाँ 'कथन' के स्थान पर 'क्रिया' और 'संघर्ष' को प्राथमिकता मिली। यह प्रक्रिया आधुनिक कविता की सबसे महत्वपूर्ण विरासत है। आज भी, समकालीन कविता, चाहे वह स्त्री-विमर्श की हो या दलित-विमर्श की, जब भी सामाजिक या आंतरिक संघर्ष को मूर्त रूप देने का प्रयास करती है, तो वह अनजाने में नाटकीय तत्वों का ही प्रयोग करती है। यह सिद्ध करता है कि नाटकीय संरचना आधुनिक कविता की अभिव्यक्ति की जटिलता और वैचारिक बहुलता के लिए एक अनिवार्य और स्थायी काव्य-रूप है।

आधुनिक हिंदी कविता में भाषा, शिल्प और काव्य-रूपों में आई यह समग्र नवीनता, **परंपरा से विद्रोह और समकालीन यथार्थ के प्रति ईमानदारी** का परिणाम थी। बोलचाल की भाषा और देशज शब्दावली ने कविता को **लोकतांत्रिक आधार** दिया; विविध भाषा प्रयोगों ने उसे **आधुनिक जीवन की जटिलता** से जोड़ा। मुक्त छंद, लंबी कविताओं और गद्यात्मक शैली ने **अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता** सुनिश्चित की। अंततः, प्रबंध के स्थान पर लघु-मुक्तक की तीव्रता, फैंटेसी की वैचारिक गहराई, और नाटकीय संरचना की गतिशीलता ने हिंदी कविता को एक **नया रूप और नई चेतना** प्रदान की। यह परिवर्तन केवल सौंदर्यवादी नहीं था, बल्कि यह आधुनिक मनुष्य के **अस्तित्ववादी संक्रास, राजनीतिक विडंबना और पहचान के संकट** को व्यक्त करने की एक अनिवार्य आवश्यकता थी।

इकाई 5.4: प्रतीक, बिंब और बौद्धिक चेतना

5.4.1 प्रतीकविधान (Symbolism)

प्रतीकविधान, साहित्य की आत्मा है। यह भाषा को केवल अर्थ की सीमा से निकालकर अनंत अर्थों और अनुभूतियों के विस्तार तक पहुँचाता है। प्रतीक किसी विचार, भावना, या जटिल संकल्पना को मूर्त रूप देने का एक साहित्यिक उपकरण है, जिसके माध्यम से कवि या लेखक अमूर्त को दृश्यमान बनाता है। आधुनिक साहित्य की विशिष्टता ही प्रतीकों के नवीन और प्रयोगधर्मी इस्तेमाल में निहित है, जहाँ प्रतीक केवल सजावट का साधन नहीं, बल्कि संप्रेषण का अपरिहार्य मार्ग बन जाता है। प्रतीकविधान की सफलता इसी बात में है कि वह पाठक को केवल संकेत दे, किंतु अर्थ की पूर्णता तक पहुँचने का दायित्व पाठक पर छोड़ दे, जिससे साहित्य एक संवादात्मक अनुभव बन जाता है।



चित्र 5.4 प्रतीक, बिंब और बौद्धिक चेतना

नए और पुराने प्रतीक (New and Old Symbols)

हिंदी साहित्य में प्रतीकों का इतिहास वैदिक काल से चला आ रहा है, जहाँ **सूर्य**, **अग्नि**, **जल** जैसे तत्व क्रमशः शक्ति, शुद्धता और जीवन के सार्वभौमिक प्रतीक रहे हैं। ये **पुराने प्रतीक** अपनी प्राचीनता, पौराणिक संदर्भों और सार्वकालिकता के कारण आज भी महत्वपूर्ण हैं। पुराने प्रतीक (जैसे **कमल** – पवित्रता, **दीपक** – ज्ञान, **गंगा** – मुक्ति)

स्थापित, सर्वमान्य और सांस्कृतिक रूप से निहित अर्थों वाले होते हैं। इनकी शक्ति इनकी सहज पहचान में है, जो पाठक को बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के गहरे अर्थ से जोड़ देती है। इसके विपरीत, आधुनिक काव्य में **नए प्रतीकों** का उदय बौद्धिक चेतना और व्यक्तिवाद की देन है। प्रगतिवाद और नई कविता के दौर में, कवि ने पारंपरिक प्रतीकों की रूढ़िवादिता को चुनौती दी और अपने निजी अनुभव, परिवेश और तात्कालिक सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों से नए प्रतीक गढ़े। ये नए प्रतीक (जैसे **टूटा पहिया, सूखी पत्ती, काँच का टुकड़ा, टेढ़ी मेढ़ी पगडंडी**) अधिक जटिल, संदर्भ-निर्भर और प्रायः व्यक्तिगत अर्थों से युक्त होते हैं। उदाहरण के लिए, अज्ञेय का **‘साँप’** (रूढ़िवादी समाज का प्रतीक) या मुक्तिबोध का **‘अंधेरे में’** (व्यक्ति और समाज के बीच के तनाव का प्रतीक)। नए प्रतीकों की महत्ता यह है कि वे विषय-वस्तु की नवीनता और आधुनिक बोध को सीधे अभिव्यक्त करते हैं, परंपरा की बेड़ियों से मुक्त होकर साहित्य को समकालीन जीवन के यथार्थ से जोड़ते हैं। इनका प्रयोग साहित्यिक भाषा को एक मौलिक ऊर्जा और अप्रत्याशित अर्थ-गहनता प्रदान करता है।

स्थानीय प्रतीक (Local/Regional Symbols)

जब कोई लेखक अपने विशिष्ट भौगोलिक, सांस्कृतिक और भाषिक परिवेश से प्रतीक ग्रहण करता है, तो उन्हें **स्थानीय प्रतीक** कहा जाता है। ये प्रतीक किसी क्षेत्र विशेष की मिट्टी, लोक जीवन, रीति-रिवाज, वनस्पति और पशु-पक्षी जगत से आते हैं। प्रेमचंद के साहित्य में **‘गोदान’** (भारतीय किसान की करुण नियति का प्रतीक) या फणीश्वर नाथ ‘रेणु’ की कृतियों में **‘पंचलाइट’** (ग्रामीण विकास की आकांक्षा और संघर्ष का प्रतीक) स्थानीय प्रतीकविधान के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। स्थानीय प्रतीक, राष्ट्रीय या सार्वभौमिक प्रतीकों की तुलना में अधिक मर्मस्पर्शी और विश्वसनीय होते हैं, क्योंकि वे सीधे उस जीवन-पद्धति से जुड़े होते हैं जिसे लेखक और पाठक दोनों ही पहचानते हैं। स्थानीय प्रतीकों का उपयोग साहित्य को **प्रामाणिकता** और **मिट्टी की गंध** प्रदान करता है। वे न केवल कथा या कविता को सजीवता देते हैं, बल्कि उस क्षेत्र की संस्कृति, संघर्ष और पहचान को भी वैश्विक मंच पर प्रस्तुत करते हैं। यह प्रतीकविधान लेखक की दृष्टि को संकीर्ण नहीं करता, बल्कि उसे एक ठोस आधार प्रदान करता है, जिससे वह विशिष्ट के माध्यम से सार्वभौमिक सत्य को छू पाता है। इस प्रकार, **‘पीपल**



छायावादोत्तर
काव्य

का पेड़ या **'तुलसी का चौरा'** सिर्फ पेड़ या स्थान न रहकर, भारतीय ग्रामीण जीवन की स्थिरता और आस्था के गहरे स्थानीय प्रतीक बन जाते हैं।

सामाजिक प्रतीक (Social Symbols)

साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, अपितु समाज को बदलने की शक्ति भी रखता है। **सामाजिक प्रतीक** वे हैं जो किसी वर्ग, जाति, आर्थिक व्यवस्था, या राजनीतिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये प्रतीक अक्सर संघर्ष, शोषण, विद्रोह, आशा और परिवर्तन जैसे विषयों को केंद्रित करते हैं। प्रगतिवादी साहित्य इसका सबसे सशक्त उदाहरण है, जहाँ प्रतीकों का इस्तेमाल सीधे-सीधे सामाजिक चेतना को जगाने के लिए किया गया।

उदाहरणार्थ: **'हथौड़ा'** और **'हँसिया'** (श्रमिक वर्ग की शक्ति और क्रांति का प्रतीक), **'महल'** (पूँजीपति वर्ग का शोषण और विलासिता), **'जेल'** या **'काला पानी'** (सत्ता का दमन और उत्पीड़न)। सामाजिक प्रतीकों की विशेषता उनकी **आक्रामकता** और **सीधापन** होती है। वे एक स्पष्ट वैचारिक मत व्यक्त करते हैं और पाठक को किसी सामाजिक यथार्थ के प्रति त्वरित प्रतिक्रिया देने के लिए प्रेरित करते हैं। आधुनिक विमर्शों में, **'स्त्री'** केवल एक पात्र न रहकर, दमित अस्मिता, शक्ति या सृजन की व्यापक सामाजिक प्रतीक बन जाती है। इस प्रकार, सामाजिक प्रतीकविधान साहित्य को समकालीन चुनौतियों से जोड़कर उसे एक क्रियाशील और प्रासंगिक रूप प्रदान करता है।

5.4.2 बिंब योजना (Imagery)

बिंब योजना, जिसे बिंबात्मकता या इमेजिंग भी कहा जाता है, वह रचनात्मक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से शब्दों का प्रयोग करके पाठक के मन में इंद्रिय-संवेदी चित्र (Sensory Images) उत्पन्न किए जाते हैं। यदि प्रतीक अर्थ का संकेत देते हैं, तो बिंब अनुभव की अनुभूति कराते हैं। एक सफल बिंब योजना पाठ को नीरस वर्णन से ऊपर उठाकर एक जीवंत अनुभव में बदल देती है, जहाँ पाठक केवल पढ़ता नहीं, बल्कि देखता है, सुनता है, स्पर्श करता है, और गंध महसूस करता है। बिंब, भाषा को स्थूलता प्रदान कर अमूर्त भावनाओं को साकार करते हैं।

दृश्य बिंब (Visual Imagery)

दृश्य बिंब साहित्य में सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाले बिंब हैं, जो आँखों के सामने रंग, रूप, आकार और गति का चित्र प्रस्तुत करते हैं। एक कवि रंगों (रक्त की लालिमा, उदासी का नीलापन), प्रकाश (सूर्य की तीक्ष्णता, चाँद की कोमलता) और रूप-रेखाओं (पहाड़ों की विशालता, नदी की वक्रता) का प्रयोग कर ऐसा संसार रचता है जिसे पाठक अपनी मानसिक आँखों से देख सके। छायावादी कविता, विशेषकर जयशंकर प्रसाद और महादेवी वर्मा के काव्य में, दृश्य बिंबों की प्रधानता है, जहाँ '**नील गगन**', '**संध्या का पीलापन**', और '**निशीथ की कालिमा**' जैसे बिंब केवल प्राकृतिक चित्रण न होकर, आत्मा की भावनाओं और मनोदशाओं को व्यक्त करते हैं।

दृश्य बिंबों का प्रयोग किसी भी साहित्यिक रचना को जीवंतता, सौंदर्य और सघनता प्रदान करता है। यह बिंबों की योजना ही है जो वर्णन को फोटोग्राफिक यथार्थ (Photographic Reality) देती है, जिससे पाठक पात्रों, दृश्यों और घटनाओं से भावनात्मक रूप से जुड़ पाता है। दृश्य बिंबों की सफलता उनकी **तीक्ष्णता** और **मौलिकता** में निहित होती है।

श्रव्य बिंब (Auditory Imagery)

श्रव्य बिंब वे हैं जो ध्वनि, संगीत या मौन की अनुभूति कराते हैं। ये बिंब कानों के माध्यम से सीधे हृदय तक पहुँचते हैं और पाठ में एक विशिष्ट **लय** और **वातावरण** का निर्माण करते हैं। प्रकृति के सूक्ष्म ध्वनियाँ (पत्तों का सरसराता हुआ स्वर, चिड़ियों का कलरव, झरने का कलकल) या मानवीय ध्वनियाँ (रोना, हँसना, चिल्लाना, पायल की छनकार) श्रव्य बिंबों को जन्म देती हैं।

उदाहरण के लिए, पंत की कविताओं में '**वीणा की झंकार**' या निराला की रचनाओं में '**मेघों का गर्जन**' श्रव्य बिंबों की सशक्त प्रस्तुति है। श्रव्य बिंब का एक महत्वपूर्ण आयाम **मौन** भी है। मौन स्वयं में ध्वनि का अभाव है, लेकिन वह गहरा अर्थ और तनाव पैदा करता है, जो अक्सर तीव्र भावनाओं जैसे डर, शांति, या उदासी का सूचक होता है। सफल श्रव्य बिंब योजना कविता को **संगीतात्मकता** प्रदान करती है और पाठकीय अनुभव को एक ध्वन्यात्मक विस्तार देती है।



छायावादोत्तर
काव्य

स्पर्श और गंध बिंब (Tactile and Olfactory Imagery)

स्पर्श बिंब (Tactile Imagery) भौतिक संवेदनाओं जैसे गर्मी, ठंडक, कोमलता, खुरदरापन, या दर्द की अनुभूति कराते हैं। ये बिंब पाठक को किसी दृश्य या स्थिति की शारीरिक निकटता प्रदान करते हैं, जिससे पाठक की भागीदारी अधिक गहरी और अंतरंग हो जाती है। उदाहरणार्थ, 'ओस की ठंडी बूँदें', 'धूप की जलन', या 'वस्त्रों की कोमल गर्माहट' स्पर्श के माध्यम से पात्रों की आंतरिक स्थिति को व्यक्त करते हैं। स्पर्श बिंब अक्सर भावनात्मक निकटता या दूरी को भी स्थापित करते हैं।

गंध बिंब (Olfactory Imagery) वे होते हैं जो सुगंध या दुर्गंध की अनुभूति कराते हैं। गंध, सभी इंद्रियों में सबसे अधिक **याददाश्त** और **भावना** से जुड़ी होती है। 'मिट्टी की सोंधी खुशबू' (अतीत और गाँव का प्रतीक) या 'अस्पताल की तीखी दवा की गंध' (पीड़ा और रोग का प्रतीक) पाठक के मन में तुरंत एक विशिष्ट वातावरण और भावनात्मक प्रतिक्रिया पैदा कर देती है। गंध बिंब का प्रयोग अक्सर **अतीत की स्मृति** या **यथार्थ की कटुता** को उजागर करने के लिए किया जाता है, जिससे साहित्य का संवेदी आयाम पूर्ण होता है।

5.4.3 बौद्धिकचेतना (Intellectual Consciousness)

बौद्धिक चेतना से तात्पर्य साहित्य में विचारों, दर्शन, तर्क और विश्लेषण की प्रधानता से है। आधुनिकता और विज्ञान के प्रभावस्वरूप, साहित्य केवल मनोरंजन या भावुकता का विषय न रहकर, मनुष्य के अस्तित्व, समाज की संरचना और जीवन के मूलभूत प्रश्नों का गंभीर चिंतन बन गया। बौद्धिक चेतना से युक्त साहित्य भावनात्मक अपील के साथ-साथ तार्किक संतुष्टि भी प्रदान करता है। यह वह धरातल है जहाँ कवि या लेखक अपने समय और समाज की समस्याओं को केवल अनुभव नहीं करता, बल्कि उनका **विश्लेषण** और **व्याख्या** भी करता है। यह साहित्य की वह कसौटी है, जो उसे सतहीपन से उठाकर कालजयी चिंतन का दर्जा देती है।

विचारों की प्रधानता (Primacy of Ideas)

आधुनिक साहित्य में, विशेषकर नई कविता और समकालीन उपन्यासों में, **विचारों की प्रधानता** एक केंद्रीय विशेषता रही है। यहाँ कहानी या चरित्र का विकास केवल

घटनाओं के माध्यम से नहीं, बल्कि विचारों के **संघर्ष** और **संवाद** के माध्यम से होता है। मुक्तिबोध, अज्ञेय, या जैनेन्द्र जैसे लेखकों के यहाँ, पात्र केवल कार्य नहीं करते, बल्कि लगातार अपने आंतरिक और बाह्य विचारों से जूझते रहते हैं। **विचारों की प्रधानता** का अर्थ है कि साहित्यकार अपने कार्य को सामाजिक, राजनीतिक, दार्शनिक या मनोवैज्ञानिक **थीसिस** (Thesis) को स्थापित करने का माध्यम बनाता है। उदाहरणार्थ, प्रगतिवादी साहित्य में **वर्ग-संघर्ष** का विचार, मनोविश्लेषणवादी साहित्य में **अहं (Ego)** और **काम (Libido)** का विचार, और अस्तित्ववादी साहित्य में **चुनाव की स्वतंत्रता** और **एकाकीपन** का विचार प्रमुख होते हैं। यह बौद्धिक झुकाव साहित्य को एक **विमर्श** (Discourse) का रूप देता है, जहाँ पाठक केवल कहानी नहीं पढ़ता, बल्कि एक विचार-धारा में भागीदार बनता है।

दार्शनिक गहराई (Philosophical Depth)

दार्शनिक गहराई किसी साहित्यिक कृति की वह क्षमता है जो उसे जीवन, मृत्यु, समय, सत्य और मानवीय नियति जैसे सार्वभौमिक और मूलभूत प्रश्नों पर विचार करने के लिए प्रेरित करती है। यह केवल तात्कालिक सामाजिक समस्याओं तक सीमित नहीं रहती, बल्कि मनुष्य के **अस्तित्व के अर्थ** (Meaning of Existence) को खोजने का प्रयास करती है। आधुनिक हिंदी साहित्य में दार्शनिक गहराई अस्तित्ववाद (Existentialism), नियतिवाद (Determinism), और सापेक्षवाद (Relativism) जैसे वैश्विक दर्शनों से प्रभावित रही है। कवि धर्मवीर भारती की '**कनुप्रिया**' में युद्ध और प्रेम के शाश्वत द्वंद्व पर विचार किया गया है, जबकि अज्ञेय की रचनाओं में **क्षणवाद** (Momentariness) और आत्म-साक्षात्कार पर गहरा दार्शनिक चिंतन मिलता है। यह गहराई साहित्य को क्षणभंगुरता से बचाकर **सार्वकालिक** (Timeless) बनाती है। लेखक अपने पात्रों और कथा के माध्यम से जीवन की जटिलताओं पर प्रश्नचिह्न लगाता है, और भले ही वह उत्तर न दे पाए, किंतु प्रश्नों की गुणवत्ता और उनके प्रस्तुतिकरण की मौलिकता ही उस कृति को दार्शनिक उँचाई प्रदान करती है।

वैचारिक तीक्ष्णता (Conceptual Acuteness/Sharpness)

वैचारिक तीक्ष्णता साहित्यकार की वह क्षमता है जिसके द्वारा वह किसी जटिल, अस्पष्ट या विरोधाभासी विषय को अत्यंत स्पष्टता, तार्किकता और मौलिकता के साथ



छायावादोत्तर
काव्य

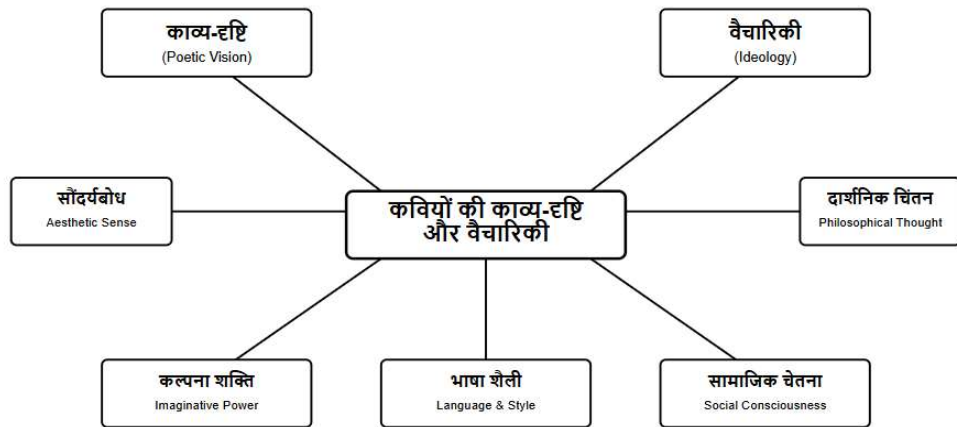
विश्लेषित करता है। यह केवल विचारों की उपस्थिति नहीं, बल्कि विचारों की **स्पष्टता**, **सटीकता** और **सार्थकता** को दर्शाती है। वैचारिक रूप से तीक्ष्ण लेखक अमूर्त समस्याओं को भी ऐसी भाषा और संरचना में प्रस्तुत करता है कि उनका मर्म तुरंत पाठक के हृदय और मस्तिष्क को छू जाए। तीक्ष्णता, लेखक को स्थापित रूढ़ियों और सामाजिक भ्रमों पर **निर्णायक प्रहार** करने में सक्षम बनाती है। उदाहरण के लिए, व्यंग्य और विडंबना (Irony) का उपयोग अक्सर वैचारिक तीक्ष्णता को व्यक्त करने के लिए किया जाता है, जहाँ लेखक मीठे शब्दों में कड़वा सच कह देता है। यह तीक्ष्णता साहित्य में **आलोचनात्मक चेतना** (Critical Consciousness) को जन्म देती है, जो समाज को आत्म-मूल्यांकन के लिए बाध्य करती है। वैचारिक तीक्ष्णता से संपन्न साहित्य केवल पाठक को सूचना नहीं देता, बल्कि उसके चिंतन की दिशा और गति को भी परिवर्तित करने की शक्ति रखता है, जिससे वह साहित्य मात्र कला न रहकर **मानवीय प्रगति** का एक शक्तिशाली उपकरण बन जाता है। यह विस्तृत आलेख साहित्यिक विश्लेषण के तीनों प्रमुख घटकों – प्रतीकविधान, बिंब योजना, और बौद्धिक चेतना – की गहरी और बहुआयामी व्याख्या प्रस्तुत करता है।

इकाई 5.5: कवियों की काव्य-दृष्टि और वैचारिकी

5.5.1 विभिन्न काव्य-दृष्टियाँ

काव्य-दृष्टि किसी भी कवि के संसार को देखने, समझने और उसे कलात्मक रूप में अभिव्यक्त करने का विशिष्ट कोण होती है। यह केवल सौंदर्यबोध तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें कवि का सामाजिक, राजनीतिक, और दार्शनिक चिंतन भी समाहित होता है। वैचारिकी, दूसरी ओर, वह संगठित दार्शनिक या राजनीतिक विश्वास प्रणाली है जो कवि की दृष्टि को आधार और दिशा प्रदान करती है। आधुनिक हिंदी कविता, विशेष रूप से छायावादोत्तर युग में, इन दोनों तत्वों का द्वंद्वीय विकास देखा गया है। बीसवीं शताब्दी के मध्य में हुए विश्वव्यापी सामाजिक, राजनीतिक और औद्योगिक परिवर्तनों ने भारतीय समाज को भी झकझोरा, जिसका सीधा प्रभाव कवियों की चेतना और उनकी अभिव्यक्ति के स्वरूप पर पड़ा। इन कवियों ने केवल छंद और भाषा के पुराने ढाँचों को नहीं तोड़ा, बल्कि उन्होंने जीवन, समाज, और मनुष्य की नियति से जुड़े मूलभूत प्रश्नों पर नई वैचारिक बुनियादें खड़ी कीं। यह परिवर्तन न केवल साहित्य की विषय-वस्तु में आया, बल्कि शिल्प, प्रतीक, बिम्ब और काव्य-भाषा के प्रयोग में भी क्रांतिकारी सिद्ध हुआ। इस इकाई का मुख्य उद्देश्य यही है कि हम यह पहचान सकें कि किसी कवि ने 'क्या' कहा (विषय-वस्तु) और 'कैसे' कहा (शिल्प), तथा इन दोनों आयामों को 'क्यों' कहा (वैचारिकी)। उदाहरण के लिए, एक ओर जहाँ **प्रगतिशील दृष्टि** ने समाज के निम्न वर्ग की पीड़ा और शोषण को मार्क्सवादी विचारधारा के आलोक में देखा, वहीं **प्रयोगवादी दृष्टि** ने युद्ध और महामंदी से त्रस्त आधुनिक मनुष्य की आत्मा की अकेलापन, कुंठा और बौद्धिक जटिलताओं को अस्तित्ववादी दर्शन के प्रिज्म से परखा। इन दोनों ध्रुवीय दृष्टियों के बावजूद, इन सबके मूल में **मानववाद** की एक सार्वभौमिक चेतना कार्यरत रही, जिसने मनुष्य को केंद्र में रखकर उसकी मुक्ति और गरिमा को स्थापित करने का लक्ष्य रखा। इस प्रकार, हिंदी कविता का यह काल वैचारिक टकराव और समन्वय का एक अद्भुत दौर प्रस्तुत करता है, जिसका तुलनात्मक अध्ययन हमारी साहित्यिक समझ को समृद्ध करता है। वैचारिकी, चाहे वह मार्क्सवाद हो, अस्तित्ववाद हो, या मानववाद हो, किसी भी काव्य-दृष्टि के लिए ऊर्जा का स्रोत बनती है, जिससे कवि की वाणी को एक विशिष्ट सामाजिक और दार्शनिक प्रासंगिकता मिलती है। कवि अपनी विचारधारा को प्रत्यक्ष उपदेश की तरह प्रस्तुत

नहीं करता, बल्कि उसे कलात्मक अनुभूति और बिम्बात्मक भाषा के माध्यम से काव्यात्मक सत्य में रूपांतरित करता है, और इसी प्रक्रिया में उसकी काव्य-दृष्टि का निर्माण होता है। यह दृष्टि ही तय करती है कि कवि परंपरा से क्या ग्रहण करेगा और किस चीज का अस्वीकार करेगा, सामाजिक यथार्थ के किस पहलू को प्राथमिकता देगा और किस सौंदर्य-मूल्य को स्थापित करेगा। इसलिए, प्रगतिशील कवियों के लिए क्रांति और सामूहिक हित परम सौंदर्य है, जबकि प्रयोगवादी कवियों के लिए आत्म-सत्य की खोज और व्यक्तिगत अनुभूति ही सबसे बड़ा मूल्य है। इन विभिन्न दृष्टियों के अध्ययन से हम केवल कविता को ही नहीं, बल्कि उस युग के सामाजिक और मानसिक द्वंद्वों को भी समझ पाते हैं।



चित्र 5.5 कवियों की काव्य-दृष्टि और वैचारिकी

प्रगतिशील काव्य-दृष्टि: सामाजिक यथार्थ और सामूहिक चेतना का संघर्ष

प्रगतिशील काव्य-दृष्टि का उदय 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के साथ हुआ, हालाँकि इसकी वैचारिक पृष्ठभूमि प्रेमचंद और निराला जैसे रचनाकारों के लेखन में पहले से ही निहित थी। यह दृष्टि मूलतः **मार्क्सवाद** की द्वंद्वात्मक भौतिकवादी विचारधारा से ऊर्जा प्राप्त करती है, जिसका केंद्रीय विषय **शोषण, वर्ग-संघर्ष और सामाजिक यथार्थ का चित्रण** है। इस दृष्टि के कवियों ने—जैसे नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन और शिव मंगल सिंह 'सुमन'—ने कविता को केवल व्यक्तिगत सुख-दुःख की अभिव्यक्ति का साधन नहीं माना, बल्कि उसे सामाजिक परिवर्तन और क्रांति के हथियार के रूप में देखा। उनका लक्ष्य सामंती और पूँजीवादी व्यवस्था के

कारण पीड़ित, शोषित मजदूर और किसान वर्ग की आवाज बनना था। यह दृष्टि कला को **कला के लिए** नहीं, बल्कि **जीवन के लिए** समर्पित मानती है, और इसलिए सौंदर्य के पारंपरिक मानकों का तिरस्कार करती है। इनके लिए फटेहाल मजदूर का श्रम, किसान का संघर्ष और अभावग्रस्त जीवन का रूखा यथार्थ ही परम सौंदर्य है। प्रगतिशील कविता में भावुकता के स्थान पर मुखर सामाजिक प्रतिबद्धता पाई जाती है। कवि समाज की विसंगतियों को न केवल उजागर करता है, बल्कि वह मुक्ति और समानता के लिए जनता को संगठित होने का आह्वान भी करता है। नागार्जुन अपनी व्यंग्यात्मक शैली से जहाँ व्यवस्था पर तीखे प्रहार करते हैं (जैसे 'अकाल और उसके बाद' में), वहीं केदारनाथ अग्रवाल अपनी भाषा में मिट्टी की सौंधी खुशबू और जन-जीवन का सीधापन लेकर आते हैं ('ओ मेरी तुम' और 'बसंत हवा' जैसी कविताओं में)। इस दृष्टि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह व्यक्ति की पीड़ा को **सामूहिक पीड़ा** में बदल देती है। व्यक्तिगत दुख और निराशा भी वर्ग-चेतना के बृहत्तर संदर्भ में ही महत्व प्राप्त करती है। प्रगतिशील कविताओं में प्रकृति का चित्रण भी वर्ग-चेतना से प्रेरित होता है; वह केवल विलास या श्रृंगार का विषय न होकर, श्रम और संघर्ष की पृष्ठभूमि बनती है। यह दृष्टि एक ऐसे **आदर्श समाज (वर्गहीन समाज)** की कल्पना करती है जहाँ शोषण समाप्त हो चुका हो और मनुष्य अपनी श्रम-शक्ति का पूर्ण उपयोग स्वतंत्रतापूर्वक कर सके। प्रगतिशील दृष्टि ने साहित्य में उपेक्षित विषयों और साधारण भाषा को केंद्रीय महत्व दिया। उन्होंने तत्सम-प्रधान, संस्कृतनिष्ठ भाषा के स्थान पर जनभाषा, लोक-प्रतीकों और दैनिक जीवन की शब्दावली का प्रयोग किया, जिससे उनकी कविताएँ आम लोगों के बीच तुरंत संवाद स्थापित कर सकीं। हालाँकि, इस दृष्टि की आलोचना यह कहकर की जाती रही है कि वैचारिक प्रतिबद्धता के अतिरेक में कई बार काव्य-सौंदर्य और कलात्मकता गौण हो जाती है, और रचनाएँ केवल प्रचार का साधन बनकर रह जाती हैं। फिर भी, हिंदी साहित्य में सामाजिक दायित्व और प्रतिबद्धता की जो गहरी नींव प्रगतिशील दृष्टि ने रखी, वह आज भी प्रासंगिक बनी हुई है, और इसने साहित्य को केवल मनोरंजन के स्तर से उठाकर समाज के अंतर्विरोधों को समझने का एक महत्वपूर्ण उपकरण बनाया है।



छायावादोत्तर
काव्य

प्रयोगवादी काव्य-दृष्टि: व्यक्ति-सत्य की खोज और नवीन शिल्प का आग्रह

प्रयोगवादी काव्य-दृष्टि, जिसका उद्भव 'तार सप्तक' (1943) के प्रकाशन से माना जाता है और जिसे **अज्ञेय** ने वैचारिक नेतृत्व प्रदान किया, प्रगतिशील दृष्टि की सामूहिक मुखरता और राजनीतिक नारेबाजी की प्रतिक्रिया में पनपी। इस दृष्टि का केंद्रीय तत्व **व्यक्तिवाद, आत्म-सत्य की खोज और आधुनिक जीवन की विसंगति** को चित्रित करना है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की निराशा, पूँजीवाद के कारण उत्पन्न **महानगरीय अलगाव**, और वैयक्तिक स्वतंत्रता के हनन ने कवि को बाहरी दुनिया से हटाकर अपने **अंतर्जगत** की ओर मोड़ दिया। इस दृष्टि को मुख्य रूप से **अस्तित्ववादी** दर्शन (Existentialism) और पश्चिमी आधुनिकतावादी साहित्य से प्रेरणा मिली। अज्ञेय, मुक्तिबोध (शुरुआत में), धर्मवीर भारती, और नेमिचंद्र जैन जैसे कवियों ने इस बात पर बल दिया कि सत्य सामूहिक नहीं, बल्कि **व्यक्तिगत और अनुभवातीत** होता है। उन्होंने 'रूप और विषय दोनों में नए प्रयोग' का नारा दिया, जिसका अर्थ था कि कविता को रूढ़िवादी छंदों, उपमानों और प्रतीकों को त्यागकर ऐसी नई संरचनाओं का निर्माण करना चाहिए जो आधुनिक मनुष्य की जटिल मनोदशा को अभिव्यक्त कर सकें। इसीलिए प्रयोगवाद में **नया शिल्प, नए बिम्ब, और अप्रचलित उपमानों** का बहुतायत से प्रयोग हुआ। ये कवि उपमानों को 'मेल के पत्थर' मानते थे, जो अब बासी पड़ चुके थे, और इसलिए उन्होंने अपनी आस-पास की दुनिया से (जैसे साइकिल की चेन, टूटे हुए गिलास, या महानगरीय ट्रैफिक) बिम्बों का चयन किया। इस दृष्टि की कविताएँ **बौद्धिक रूप से जटिल** होती हैं और उनमें **अमूर्तन** (Abstraction) का तत्व अधिक पाया जाता है। कवि अपनी कुंठा, अकेलापन, निराशा, यौन-चेतना और मृत्यु-बोध जैसे विषयों को गहन मनोवैज्ञानिक धरातल पर अभिव्यक्ति देता है। **मुक्तिबोध** की रचनाओं में प्रयोगवादी शिल्प के साथ प्रगतिशील वैचारिकी का एक द्वंद्व स्पष्ट दिखाई देता है, जहाँ व्यक्ति की 'आत्म-संघर्ष' की गाथा अंततः एक बृहत्तर 'सामाजिक-आर्थिक संघर्ष' से जुड़ जाती है। उनके 'अँधेरे में' जैसी कविताएँ इसी द्वंद्वात्मकता का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। प्रयोगवादी कवियों ने **भाषा की निजी अस्मिता** पर भी जोर दिया, मानते थे कि हर व्यक्ति का सत्य अलग है, और इसलिए हर व्यक्ति को अपने सत्य को अभिव्यक्त करने के लिए अपनी निजी भाषा का आविष्कार करना चाहिए। इस दृष्टि ने बाद में **नई कविता** को जन्म दिया,

जिसने प्रयोगवाद की अतिशय बौद्धिकता और व्यक्तिगत संकीर्णता को त्यागकर अनुभव के नए आयामों पर ध्यान केंद्रित किया। प्रयोगवादी दृष्टि का सबसे बड़ा योगदान यह रहा कि इसने हिंदी कविता को वैश्विक आधुनिकता से जोड़ा, उसे आत्म-केंद्रित चिंतन और शिल्पगत स्वतंत्रता प्रदान की, और यह साबित किया कि साहित्य में केवल सामाजिक यथार्थ ही नहीं, बल्कि मनुष्य के मन का आंतरिक यथार्थ भी उतना ही महत्वपूर्ण है। इसने कविता को **आत्म-विश्लेषण** और **सत्य के निजी साक्षात्कार** का माध्यम बनाया, जिससे कविता का फलक और उसकी वैचारिक गहराई अप्रत्याशित रूप से बढ़ी।

जनवादी काव्य-दृष्टि: प्रतिबद्धता का नया दौर और व्यापक जन-संस्कृति

जनवादी काव्य-दृष्टि का विकास मुख्य रूप से 1970 के दशक के आस-पास प्रगतिशील कविता की सैद्धांतिक और कलात्मक सीमाओं को पार करते हुए हुआ। यह दृष्टि भी मूलतः **मार्क्सवादी वैचारिकी** पर आधारित है, लेकिन यह प्रगतिवाद की तुलना में **अधिक व्यापक, अधिक प्रत्यक्ष और अधिक जन-केंद्रित** है। जहाँ प्रगतिशील कविता का जोर वर्ग-संघर्ष और एक सैद्धांतिक क्रांति पर था, वहीं जनवादी कविता का ध्यान **जनता की रोजमर्रा की जिंदगी, उनकी संस्कृति, उनके दुख-दर्द और उनकी प्रतिरोध क्षमता** को कविता में उतारने पर है। यह दृष्टि सत्ता के दमनकारी चरित्र और पूँजीवाद की विकृतियों को कहीं अधिक मुखर और तीखे ढंग से प्रस्तुत करती है। जनवादी कवि—जैसे आलोक धनवा, गोरख पांडे, और बलदेव वंशी—ने कला और राजनीति के बीच के फासले को पाटने की कोशिश की और कविता को सीधे सड़कों और संघर्षों से जोड़ा। इस दृष्टि में कवि केवल द्रष्टा नहीं रहता, बल्कि वह स्वयं संघर्ष का एक सक्रिय हिस्सा बन जाता है। इस कविता की भाषा प्रगतिशील कविता की तरह ही सहज, सरल और आम बोलचाल की भाषा होती है, लेकिन इसमें **लोक-लय, लोक-धुन और नुक्कड़ नाटक की सी ऊर्जा** पाई जाती है। जनवादी कविता की एक बड़ी विशेषता यह है कि यह **संस्कृति और राजनीति** के अंतर्संबंधों पर गहरा ध्यान देती है। यह मानती है कि पूँजीवादी व्यवस्था न केवल आर्थिक रूप से, बल्कि सांस्कृतिक रूप से भी जनता का शोषण करती है, और इसलिए जनता को अपनी सांस्कृतिक अस्मिता और प्रतिरोध की परंपरा को बचाना जरूरी है। इस दृष्टि ने कविता में **रोष, आक्रोश और विद्रोह के भाव** को अत्यंत तीव्र



छायावादोत्तर
काव्य

किया, और वह किसी भी तरह के वैचारिक अस्पष्टता को अस्वीकार करती है। जनवादी दृष्टि को अक्सर **वामपंथी विचारधारा** के विभिन्न पहलुओं (जैसे लेनिनवाद, माओवाद) से भी प्रेरणा मिली, जिसने इसे एक नई राजनीतिक ऊर्जा दी। जनवादी कविताओं में व्यवस्था पर सीधे हमला करने वाले प्रतीक, नारे और बेबाक कथन मिलते हैं, जो उन्हें पहले की प्रगतिशील रचनाओं से अधिक आक्रामक बनाते हैं। यह दृष्टि कविता को केवल पढ़ने की वस्तु नहीं, बल्कि **गाए जाने, सुने जाने और सामूहिक रूप से अनुभव किए जाने** की वस्तु मानती है, इसीलिए इसके अधिकांश कविताओं में लोक-गीतों और नारों की सी लय और प्रभाव पाया जाता है। जनवादी दृष्टि की आलोचना भी इस आधार पर की जाती है कि अति-राजनीतिकरण के कारण कविता कई बार कलात्मक सूक्ष्मता और गहराई खो देती है, और उसका सीधा, सपाट कथ्य कलात्मक उत्कर्ष को प्राप्त नहीं कर पाता। फिर भी, समकालीन हिंदी कविता में यह दृष्टि समाज के सबसे निचले तबके के संघर्षों को आवाज देती है और कविता की सामाजिक प्रतिबद्धता की विरासत को एक नए और अधिक प्रखर आयाम पर ले जाती है। यह दृष्टि यह स्थापित करती है कि सच्ची कविता वहीं से उत्पन्न होती है जहाँ मनुष्य की मुक्ति का संघर्ष जारी है, और कला का सबसे बड़ा उद्देश्य इसी संघर्ष में जनता को वैचारिक और भावनात्मक बल प्रदान करना है।

5.5.2 वैचारिकी

वैचारिकी: मार्क्सवाद का द्वंद्वत्मक प्रभाव और साहित्य में वर्ग-चेतना

मार्क्सवाद, जिसका उद्गम कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स के चिंतन में हुआ, आधुनिक हिंदी कविता को प्रभावित करने वाली सबसे शक्तिशाली और सुसंगत विचारधारा रही है। यह दर्शन **द्वंद्वत्मक भौतिकवाद** और **ऐतिहासिक भौतिकवाद** के सिद्धांतों पर आधारित है, जो यह मानते हैं कि समाज का विकास उत्पादन संबंधों (आर्थिक आधार) के द्वारा निर्धारित होता है, और विचारधारा (साहित्य, कला, धर्म आदि) उसका उपरी ढाँचा (Superstructure) मात्र है। मार्क्सवाद साहित्य में **वर्ग-संघर्ष** के विचार को केंद्रीय महत्व देता है, और यह मानता है कि कवि का दायित्व है कि वह शोषित वर्ग की चेतना को जागृत करे और उसे क्रांति के लिए प्रेरित करे। हिंदी में **प्रगतिशील** और **जनवादी** काव्य-दृष्टियाँ इसी वैचारिकी की प्रत्यक्ष उपज हैं।

मार्क्सवादी वैचारिकी से प्रभावित कवि—जैसे नागार्जुन, त्रिलोचन और मुक्तिबोध—ने अपनी कविता में पूँजीवादी व्यवस्था, सामंतवाद और धार्मिक पाखंड पर तीखे प्रहार किए। उन्होंने शोषण के आर्थिक आधार को समझा और इसे कविता में मूर्त रूप दिया। मार्क्सवादी दृष्टि कविता में निम्नलिखित तत्वों को अनिवार्य मानती है: **यथार्थवाद** (सामाजिक सच्चाइयों का निष्पक्ष चित्रण), **पक्षधरता** (शोषित वर्ग के प्रति स्पष्ट झुकाव), और **सामाजिक उपयोगिता** (कला का लक्ष्य सामाजिक बदलाव होना)। मुक्तिबोध के काव्य में मार्क्सवादी विचारधारा का सबसे जटिल और कलात्मक प्रयोग देखने को मिलता है। वे मार्क्सवादी होते हुए भी केवल वर्ग-संघर्ष का सीधा नारा नहीं देते, बल्कि वे 'व्यक्ति और समाज', 'आत्मालोचन और क्रांति' के बीच के द्वंद्व को अत्यंत बौद्धिक और फैंटेसी-आधारित शिल्प में अभिव्यक्त करते हैं। उनका 'एक साहित्यिक की डायरी' इस बात को स्थापित करता है कि सच्चा कलाकार वह है जो अपनी व्यक्तिगत कुंठा और अंधेरे को भी सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण के आलोक में देखता है। मार्क्सवाद ने हिंदी कविता को इतिहास की एक गहरी समझ दी। कवियों ने यह समझा कि वर्तमान दुख-दर्द केवल व्यक्तिगत नियति नहीं, बल्कि ऐतिहासिक रूप से विकसित आर्थिक संरचना का परिणाम है। इस समझ ने उन्हें भविष्य के प्रति एक आशावादी दृष्टिकोण भी दिया, जिसमें क्रांति के माध्यम से वर्गहीन समाज की स्थापना संभव है। मार्क्सवाद ने न केवल प्रगतिशील कवियों को, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से प्रयोगवादियों को भी प्रभावित किया। प्रयोगवादी भी पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा उत्पन्न अलगाव और विसंगति को ही चित्रित कर रहे थे, लेकिन उनका समाधान व्यक्तिगत स्तर पर था, जबकि मार्क्सवादियों का समाधान सामाजिक और क्रांतिकारी स्तर पर था। कुल मिलाकर, मार्क्सवादी वैचारिकी ने हिंदी कविता को एक प्रबल सामाजिक और राजनीतिक दायित्व प्रदान किया, जिससे कविता समाज में एक निष्क्रिय तत्व न रहकर, एक सक्रिय हस्तक्षेप बन गई। इसने साहित्य के सौंदर्यशास्त्रीय मूल्यों को भी पुनर्परिभाषित किया, जहाँ जन-संघर्ष की सुंदरता और श्रम की गरिमा को कला का सर्वोच्च मानदंड माना गया।

वैचारिकी: अस्तित्ववाद का वैयक्तिक सत्य और आधुनिक मनुष्य का कुंठा-बोध

अस्तित्ववाद (Existentialism), जिसकी जड़ें कीर्केगार्ड, नीत्शे और सार्च जैसे दार्शनिकों के चिंतन में हैं और जो द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूरोप में प्रमुखता से उभरा,



छायावादोत्तर काव्य

आधुनिक हिंदी कविता में **प्रयोगवादी** काव्य-दृष्टि का प्रमुख वैचारिक स्रोत बना। यह दर्शन मनुष्य की **स्वतंत्रता, उत्तरदायित्व, अकेलापन, मृत्यु-बोध और जीवन की निरर्थकता (Absurdity)** को केंद्रीय विषय बनाता है। अस्तित्ववाद का मूल सिद्धांत यह है कि '**अस्तित्व सार से पहले आता है**' (Existence precedes Essence), जिसका अर्थ है कि मनुष्य पहले दुनिया में आता है, फिर अपने कार्यों, चुनावों और अनुभवों के माध्यम से अपने 'सार' या अपनी पहचान को गढ़ता है। इस अत्यधिक स्वतंत्रता के कारण ही मनुष्य में 'चिंता' (Angst) और 'कुंठा' का भाव उत्पन्न होता है, क्योंकि उसे अपने सभी कार्यों के लिए पूरी तरह से जिम्मेदार होना पड़ता है। हिंदी कविता में अज्ञेय, धर्मवीर भारती और अन्य प्रयोगवादी कवि इस विचार से गहरे प्रभावित हुए। अज्ञेय ने कविता में व्यक्ति के '**आत्म-सत्य**' पर बल दिया और सामाजिक नियमों की तुलना में व्यक्तिगत अनुभव की प्रामाणिकता को स्थापित किया। उनकी कविताओं में महानगरीय जीवन का अलगाव, भीड़ में भी अकेलापन, और जीवन के हर क्षण को प्रामाणिक रूप से जीने की बेचैनी साफ झलकती है। अस्तित्ववाद ने हिंदी कविता में '**व्यक्ति-केंद्रितता**' को स्थापित किया, जो प्रगतिवाद के 'सामूहिक चेतना' के बिल्कुल विपरीत था। कवि ने समाज और राजनीति की बाहरी दुनिया से हटकर अपने मन के **अंधेरे कोनों** को टटोलना शुरू किया। 'नई कविता' के दौर में **मृत्यु-बोध** और **नियतिवाद** की भावना भी अस्तित्ववादी दर्शन से प्रेरित थी। जब कवि यह महसूस करता है कि जीवन का कोई पूर्वनिर्धारित अर्थ नहीं है, तो वह क्षण विशेष के 'भोग' और 'अनुभूति' को ही सबसे बड़ा सत्य मानने लगता है। अस्तित्ववाद ने काव्य-शिल्प को भी प्रभावित किया। चूँकि व्यक्तिगत सत्य को पारंपरिक भाषा या उपमानों में व्यक्त करना कठिन था, इसलिए कवियों ने नए, अमूर्त और बौद्धिक बिम्बों का सहारा लिया। मुक्तिबोध के यहाँ अस्तित्ववादी कुंठा और मार्क्सवादी वर्ग-चेतना का एक अद्भुत मिश्रण मिलता है। उनका 'अंधेरे में' एक ऐसा अस्तित्ववादी महाकाव्य कहा जा सकता है, जहाँ नायक अपने आंतरिक संघर्ष (अस्तित्ववादी चिंता) के माध्यम से अंततः सामाजिक और राजनीतिक जिम्मेदारी (मार्क्सवादी दायित्व) को स्वीकार करता है। इस वैचारिकी ने हिंदी कविता को एक गहन मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक आयाम प्रदान किया, जिससे वह केवल सामाजिक टीका-टिप्पणी न रहकर, मनुष्य के आंतरिक होने की जटिलताओं का अन्वेषण करने वाली कला बन गई। इसने कविता को **आत्म-परख** और **आत्म-स्वीकृति** का एक

शक्तिशाली माध्यम बनाया, जहाँ कवि अपने दोषों, कुंठाओं और जटिलताओं को स्वीकार करके ही अपने सत्य को प्राप्त करता है। अस्तित्ववाद का सबसे बड़ा योगदान यह रहा कि इसने कविता को समाज के बाहरी दबावों से मुक्त करके, उसे मनुष्य के **निजी संसार** की अभिव्यक्ति का पूर्ण अधिकार दिया।

वैचारिकी: मानववाद का सार्वभौम मूल्य और वैचारिक संघर्षों का समन्वय

मानववाद (Humanism), जिसे हिंदी कविता में अक्सर **मानवीयता** या **मनुष्य-केंद्रितता** के रूप में देखा जाता है, एक ऐसी वैचारिकी है जो मनुष्य को ब्रह्मांड के केंद्र में रखती है और उसकी गरिमा, क्षमता और स्वतंत्रता पर बल देती है। यह किसी एक दार्शनिक या राजनीतिक स्कूल तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद और अन्य सभी विचारधाराओं को अपनी नैतिक भूमि प्रदान करता है। हिंदी कविता में मानववाद एक **आधारभूत और समन्वयकारी** वैचारिकी के रूप में काम करता है। प्रगतिशील काव्य-दृष्टि का अंतिम लक्ष्य एक **समाजवादी मानववाद** की स्थापना है, जहाँ आर्थिक शोषण समाप्त हो जाए और सभी मनुष्य समान रूप से अपनी मानवीय क्षमताओं का विकास कर सकें। उनके लिए मानवतावाद का अर्थ है **वर्गहीन समाज** की स्थापना। नागार्जुन या केदारनाथ अग्रवाल की कविताएँ किसान और मजदूर के श्रम की जो गरिमा स्थापित करती हैं, वह मूलतः एक मानववादी आग्रह ही है। दूसरी ओर, प्रयोगवादी काव्य-दृष्टि का मानववाद अधिक **वैयक्तिक और अस्तित्ववादी** है। यह बाहरी समाज के दबावों से मुक्त होकर, मनुष्य के आंतरिक सत्य को खोजना चाहता है। अज्ञेय के लिए मनुष्य की सबसे बड़ी गरिमा उसकी **स्वतंत्रता** और **अपनेपन** की पहचान है। उनका चिंतन मनुष्य को उसकी नियति और अकेलेपन का सामना करने की शक्ति देता है, जो एक प्रकार का **आत्म-निर्भर मानववाद** है। जनवादी काव्य-दृष्टि का मानववाद प्रगतिशील दृष्टि के निकट है, लेकिन यह **दलित, आदिवासी और हाशिए के समाज** के प्रति अधिक संवेदनशील है। यह मानववाद सांस्कृतिक और सामाजिक न्याय पर जोर देता है, और केवल आर्थिक समानता तक सीमित नहीं रहता। यह तीनों दृष्टियाँ, अपने भिन्न-भिन्न रास्तों से, अंततः मनुष्य की मुक्ति और बेहतर भविष्य की कामना करती हैं। मानववाद यहाँ एक **अम्ब्रेला विचार** के रूप में कार्य करता है, जो कवियों को उनकी विशिष्ट वैचारिक प्रतिबद्धताओं के बावजूद एक-दूसरे से जोड़ता है। उदाहरण के लिए, निराला से लेकर धूमिल तक,



छायावादोत्तर काव्य

सभी कवियों ने सत्ता के दमन और पाखंड के खिलाफ आवाज उठाई है, और यह विरोध मनुष्य की नैसर्गिक गरिमा की रक्षा के लिए ही किया गया है। मानववाद ने हिंदी कविता को यह सिखाया कि साहित्य का अंतिम लक्ष्य किसी सिद्धांत या पार्टी की सेवा करना नहीं, बल्कि **मनुष्यता की सेवा** करना है। इसने कवियों को संकीर्ण वैचारिक दायरों से ऊपर उठकर प्रेम, करुणा, न्याय, और सत्य जैसे सार्वभौम मूल्यों को स्थापित करने की प्रेरणा दी। इसने यह सुनिश्चित किया कि वैचारिक संघर्षों के बावजूद, कविता हमेशा मनुष्य और उसके भविष्य के प्रति आशावान बनी रहे। चाहे मुक्तिबोध का जटिल आत्म-संघर्ष हो या नागार्जुन का तीखा व्यंग्य, हर रचना के मूल में एक बेहतर दुनिया के लिए **मानवीय आकांक्षा** ही निहित है।

विभिन्न काव्य-दृष्टियों का तुलनात्मक विश्लेषण: विषय-वस्तु, शिल्प और लक्ष्य का अंतर

प्रगतिशील, प्रयोगवादी और जनवादी काव्य-दृष्टियों का तुलनात्मक विश्लेषण उनके केंद्रीय विषय, शिल्प-शैली और अंतिम लक्ष्य के आधार पर किया जा सकता है। इन तीनों दृष्टियों के बीच वैचारिक द्वंद्व ने ही आधुनिक हिंदी कविता को गतिशीलता प्रदान की है। **विषय-वस्तु** के स्तर पर, प्रगतिशील दृष्टि का फोकस **सामूहिक यथार्थ, वर्ग-शोषण और क्रांति की अनिवार्यता** पर रहा, जहाँ गरीबी, भूख, और श्रम की महिमा मुख्य विषय थे। इसके विपरीत, प्रयोगवादी दृष्टि ने **व्यक्तिगत सत्य, मानसिक कुंठा, शहरी अलगाव और आत्म-पहचान** की जटिलताओं को केंद्र में रखा। जनवादी दृष्टि इन दोनों के बीच एक पुल का काम करती है, जो प्रगतिवाद के विषयों को अधिक प्रत्यक्ष राजनीतिक और सांस्कृतिक संदर्भों में प्रस्तुत करती है, जहाँ **दलित और हाशिए के लोगों** का संघर्ष मुखर होता है। **शिल्प और भाषा** के स्तर पर सबसे बड़ा अंतर दिखाई देता है। प्रगतिशील और जनवादी दोनों ही दृष्टियों ने **सरल, सहज, लोक-संपर्क की भाषा** और पारंपरिक छंदों (जैसे दोहा, सोरठा) तथा मुक्त छंद का प्रयोग किया, ताकि उनकी कविताएँ आम जनता तक पहुँच सकें। उनकी भाषा में एक सीधा और आक्रामक वक्तव्य होता है। इसके ठीक विपरीत, प्रयोगवादी दृष्टि ने **जटिल, बौद्धिक, अप्रचलित और अमूर्त बिम्बों, प्रतीकों और छंदहीन मुक्तकों** का प्रयोग किया। अज्ञेय के उपमान जहाँ प्रकृति और नगरीय जीवन के सूक्ष्म पहलुओं से लिए जाते थे, वहीं मुक्तिबोध की फैंटेसी शिल्प को अत्यधिक जटिल बना देती थी।

प्रयोगवादी मानते थे कि आधुनिक सत्य को पुराने शिल्प में व्यक्त नहीं किया जा सकता, इसलिए शिल्प में प्रयोग करना अनिवार्य है। **अंतिम लक्ष्य** के स्तर पर भी स्पष्ट विभाजन है। प्रगतिशील और जनवादी दृष्टि का अंतिम लक्ष्य **सामाजिक परिवर्तन, क्रांति और वर्गहीन समाज की स्थापना** है—यानी **बाहरी दुनिया** को बदलना। जबकि प्रयोगवादी दृष्टि का लक्ष्य **व्यक्तिगत मुक्ति, आत्म-परिष्कार और आंतरिक सत्य की खोज** है—यानी **आंतरिक दुनिया** को समझना और स्वीकार करना। यह अंतर स्पष्ट करता है कि प्रगतिवाद जहाँ मार्क्सवादी विचारधारा से निर्देशित होकर सामूहिक हित को प्राथमिकता देता है, वहीं प्रयोगवाद अस्तित्ववाद से प्रेरित होकर व्यक्तिगत स्वतंत्रता और प्रामाणिकता को सर्वोच्च मानता है। जनवादी दृष्टि इस संघर्ष को वर्तमान राजनीतिक विसंगतियों और सांस्कृतिक दमन के खिलाफ अधिक सीधे प्रतिरोध के रूप में देखती है। इस प्रकार, हिंदी कविता के इस दौर में हमें एक ही समय में **सामाजिक यथार्थ की मुखर अभिव्यक्ति** (प्रगतिशील), **मनुष्य की आत्मिक जटिलताओं का गहन अन्वेषण** (प्रयोगवादी), और **लोक-संस्कृति से जुड़े प्रतिरोध की तीव्र आवाज** (जनवादी) देखने को मिलती है, जिसने भारतीय साहित्य के फलक को अत्यंत समृद्ध और बहुआयामी बना दिया है।

वैचारिकी का तुलनात्मक विश्लेषण: मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद और मानववाद का अंतर

मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद और मानववाद तीनों ही विचारधाराएँ आधुनिक मनुष्य और समाज की समस्याओं पर केंद्रित हैं, लेकिन उनके समाधान, विश्लेषण की विधि और प्राथमिकताओं में मूलभूत अंतर हैं, जिन्होंने विभिन्न काव्य-दृष्टियों को आकार दिया। **मार्क्सवाद** मूलतः एक **भौतिकवादी और सामाजिक-आर्थिक** दर्शन है। इसका विश्लेषण ऐतिहासिक और द्वंद्ववादी है, जो यह मानता है कि मनुष्य का अस्तित्व **उत्पादन के साधनों** (Means of Production) से निर्धारित होता है। मार्क्सवाद का प्राथमिक बल **वर्ग-संघर्ष** और **सामूहिक क्रांति** पर है, और इसका अंतिम लक्ष्य एक **वर्गहीन, शोषणमुक्त समाज** की स्थापना है। यह विचारधारा व्यक्ति की स्वाधीनता को आर्थिक समानता के संदर्भ में देखती है और कला को सामाजिक परिवर्तन का हथियार मानती है। हिंदी कविता में यह **प्रगतिशील और जनवादी** दृष्टियों का वैचारिक आधार है। **अस्तित्ववाद** इसके ठीक विपरीत, एक **आदर्शवादी और**



छायावादोत्तर
काव्य

वैयक्तिक दर्शन है। यह समाज या वर्ग-संघर्ष को नहीं, बल्कि **व्यक्ति की स्वतंत्रता, उत्तरदायित्व और आत्म-निर्माण** को केंद्रीय महत्व देता है। अस्तित्ववाद का विश्लेषण **मानसिक और मनोवैज्ञानिक** है, जो 'चिंता', 'कुंठा' और 'मृत्यु-बोध' जैसे आंतरिक अनुभवों पर केंद्रित है। इसका प्राथमिक बल **व्यक्तिगत चुनाव** (Choice) और **प्रामाणिकता** (Authenticity) पर है। इसका अंतिम लक्ष्य मनुष्य द्वारा अपने जीवन के **सार** की खोज करना है, भले ही ब्रह्मांड निरर्थक हो। यह वैचारिकी **प्रयोगवादी** दृष्टि को दिशा देती है, जहाँ कवि समाज की जगह अपने मन की गहराइयों को टटोलता है। **मानववाद**, जैसा कि पहले बताया गया है, एक **समन्वयकारी नैतिक ढाँचा** है। यह किसी विशिष्ट राजनीतिक या आर्थिक सिद्धांत पर बल नहीं देता, बल्कि सभी मनुष्यों की **सहज गरिमा, स्वतंत्रता और बौद्धिक क्षमता** पर बल देता है। मानववाद मार्क्सवाद की तरह आर्थिक समानता की बात कर सकता है, और अस्तित्ववाद की तरह व्यक्तिगत स्वतंत्रता को भी महत्व दे सकता है, लेकिन इसका अंतिम बल **मनुष्यता के सार्वभौम मूल्यों** (प्रेम, करुणा, न्याय) की स्थापना पर होता है। मानववाद यह सुनिश्चित करता है कि मार्क्सवादी क्रांति का लक्ष्य भी मनुष्य की मुक्ति हो, और अस्तित्ववादी आत्म-सत्य की खोज भी मनुष्य की गरिमा को नष्ट न करे। इस प्रकार, मार्क्सवाद **समाज** को बदलने का उपकरण देता है, अस्तित्ववाद **स्वयं** को समझने का दर्शन देता है, और मानववाद इन दोनों को एक **नैतिक उद्देश्य** प्रदान करता है। हिंदी कविता में इन तीनों वैचारिक तत्वों का द्वंद्व और समन्वय ही साहित्य के फलक को निरंतर व्यापक और प्रासंगिक बनाए रखता है।

निष्कर्ष: काव्य-दृष्टि, वैचारिकी और साहित्यिक परंपरा का निर्माण

आधुनिक हिंदी कविता का अध्ययन स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि **काव्य-दृष्टि** और **वैचारिकी** एक-दूसरे से अविभाज्य रूप से जुड़े हुए हैं। **प्रगतिशील दृष्टि** ने मार्क्सवाद को आत्मसात कर कविता को सामाजिक दायित्व का वाहन बनाया; **प्रयोगवादी दृष्टि** ने अस्तित्ववाद से ऊर्जा लेकर उसे व्यक्तिगत सत्य और जटिलता की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया; और **जनवादी दृष्टि** ने मार्क्सवाद की विरासत को एक नई सांस्कृतिक और राजनीतिक तीव्रता प्रदान की। इन सभी दृष्टियों के मूल में **मानववाद** का एक व्यापक नैतिक आग्रह रहा, जिसने कला को हमेशा मनुष्य की नियति और उसकी मुक्ति की आकांक्षा से जोड़े रखा। इस तुलनात्मक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि

आधुनिक हिंदी कविता केवल भावुकता की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि यह अपने समय के सामाजिक, राजनीतिक और दार्शनिक अंतर्विरोधों की गहरी समझ प्रस्तुत करती है। विभिन्न कवियों की रचनाएँ उनके विशिष्ट वैचारिक झुकावों का कलात्मक प्रमाण हैं। जहाँ नागार्जुन की कविता में मार्क्सवादी वर्ग-चेतना का आक्रोश और लोक-भाषा का सीधापन है, वहीं अज्ञेय की कविता में अस्तित्ववादी अकेलापन और बौद्धिक शिल्प की जटिलता है। मुक्तिबोध का काव्य इसी द्वंद्व को आत्मसात करता है, जहाँ वह मार्क्सवादी आदर्शों के लिए लड़ते हुए भी अस्तित्ववादी चिंता से घिरे रहते हैं। हिंदी साहित्य की यह परंपरा हमें सिखाती है कि महान साहित्य वह होता है जो किसी एक वैचारिक सांचे में बंधकर न रहे, बल्कि युग की सभी महत्वपूर्ण वैचारिक धाराओं को आत्मसात कर मनुष्य की पूर्णता और उसके संघर्षों को अभिव्यक्ति दे। इस प्रकार, विभिन्न काव्य-दृष्टियों और उनकी वैचारिक नींवों का अध्ययन हमें हिंदी कविता की समृद्धि और उसकी वैश्विक प्रासंगिकता को समझने का आवश्यक उपकरण प्रदान करता है, और यह भी दिखाता है कि कला और जीवन का संबंध कितना गहरा और द्वंद्वात्मक होता है।



छायावादोत्तर
काव्य

5.6 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

5.6.1 बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs)

1. प्रगतिवाद आंदोलन की शुरुआत किस दशक में हुई थी?

- a) 1920 का दशक
- b) 1930 का दशक
- c) 1940 का दशक
- d) 1950 का दशक

उत्तर: b) 1930 का दशक

2. प्रयोगवाद का प्रमुख कवि कौन माना जाता है?

- a) अज्ञेय
- b) निराला
- c) नागार्जुन
- d) दिनकर

उत्तर: a) अज्ञेय

3. "नई कविता" का प्रमुख आधार क्या है?

- a) रहस्यवाद
- b) प्रतीकात्मकता और अनुभूति
- c) शृंगार रस
- d) राष्ट्रीयता

उत्तर: b) प्रतीकात्मकता और अनुभूति

4. प्रगतिवादी कविता का मुख्य लक्ष्य क्या था?

- a) सौंदर्य की खोज
- b) सामाजिक परिवर्तन
- c) रहस्य अनुभव
- d) आत्मानुभूति

उत्तर: b) सामाजिक परिवर्तन

5. "समकालीन कविता" का प्रमुख स्वर है—

- a) प्रकृति-सौंदर्य
- b) जन-संघर्ष और असंतोष
- c) भक्ति भावना
- d) प्रेम और करुणा

छायावादोत्तर
काव्य की प्रमुख
प्रवृत्तियाँ

उत्तर: b) जन-संघर्ष और असंतोष

6. "भाषा और शिल्प की नवीनता" का संबंध किस काव्य प्रवृत्ति से है?

- a) छायावाद
- b) प्रगतिवाद
- c) प्रयोगवाद
- d) भक्ति काल

उत्तर: c) प्रयोगवाद

7. प्रतीक और बिंब की प्रधानता किन कविताओं में मिलती है?

- a) प्रगतिवादी
- b) नई कविता
- c) वीर रस की कविता
- d) भक्ति कविता

उत्तर: b) नई कविता

8. "जनसरोकार" शब्द का तात्पर्य है—

- a) धार्मिक भावना
- b) जनजीवन से जुड़ाव
- c) राजनीतिक विचार
- d) व्यक्तिगत अनुभूति

उत्तर: b) जनजीवन से जुड़ाव

9. "काव्य में बौद्धिक चेतना" का अर्थ है—

- a) भावनात्मक अनुभूति
- b) विचारशील दृष्टि



छायावादोत्तर
काव्य

- c) ललित कल्पना
- d) नायक-नायिका की कथा

उत्तर: b) विचारशील दृष्टि

10. छायावादोत्तर काल में कविता का केंद्र क्या रहा?

- a) रहस्य और कल्पना
- b) यथार्थ और संघर्ष
- c) भक्ति और अध्यात्म
- d) वीरता और राष्ट्रवाद

उत्तर: b) यथार्थ और संघर्ष

5.6.2 लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. प्रगतिवाद की मूल अवधारणा क्या थी?
2. प्रयोगवादी काव्य में "नवीनता" किस रूप में दिखाई देती है?
3. नई कविता और प्रयोगवाद में क्या अंतर है?
4. समकालीन कविता में कौन-से प्रमुख विषय व्यक्त होते हैं?
5. 'जनसरोकार' की अवधारणा का काव्य से क्या संबंध है?
6. प्रगतिवादी कवियों ने समाज को किस दृष्टि से देखा?
7. भाषा और शिल्प की नवीनता का एक उदाहरण दीजिए।
8. प्रतीक और बिंब कविता में क्या भूमिका निभाते हैं?
9. बौद्धिक चेतना से कवि का उद्देश्य क्या होता है?
10. छायावादोत्तर काव्य का हिंदी साहित्य में क्या योगदान है?

5.6.3 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता और समकालीन कविता की प्रमुख विशेषताओं का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।

2. हिंदी कविता में सामाजिक यथार्थ और राजनीतिक चेतना की भूमिका पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
3. नई कविता में प्रतीकात्मकता और बौद्धिक चेतना का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
4. प्रयोगवाद में भाषा और शिल्प की नवीनता को उदाहरण सहित समझाइए।
5. समकालीन कविता में जनसरोकार और यथार्थ की अभिव्यक्ति पर विवेचन कीजिए।
6. प्रगतिवादी कवियों के योगदान का मूल्यांकन करते हुए उनके सामाजिक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालिए।
7. छायावादोत्तर काल की कविताओं में "मनुष्य" केंद्र क्यों बन जाता है — चर्चा कीजिए।
8. प्रतीक, बिंब और वैचारिकी के माध्यम से आधुनिक कविता में आए परिवर्तन पर विचार कीजिए।
9. छायावादोत्तर काव्य को हिंदी काव्य का संक्रमणकाल क्यों कहा जाता है?
10. कवियों की काव्य-दृष्टि और वैचारिकी के आधार पर छायावादोत्तर हिंदी कविता की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।



संदर्भ

1. पंत, सुमित्रानंदन (2000). सुमित्रानंदन पंत की कविताएँ. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी।
2. दिनकर, रामधारी सिंह (1998). रचनासंग्रह. पटना: भारतीय ज्ञानपीठ।
3. वर्मा, महादेवी (2005). महादेवी वर्मा की कविता. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
4. प्रसाद, जयशंकर (2002). काव्यकथा और आलोचना. लखनऊ: भारतीय ज्ञानपीठ।
5. सिंह, हरिशंकर (2010). छायावाद और उसके कवि. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
6. पांडे, के. सी. (2012). हिंदी कविता का इतिहास. नई दिल्ली: साहित्य भवन।
7. चौबे, हृदयेश (2015). आधुनिक हिंदी काव्य. रायपुर: साहित्य निकेतन।
8. उपाध्याय, नरेश (2018). छायावाद और आधुनिकता. दुर्ग: नई दिशा प्रकाशन।
9. वर्मा, रामनारायण (2011). काव्यपरंपरा और छायावाद. पटना: ज्ञानदीप प्रकाशन।
10. सिंह, पुष्पा (2016). महादेवी वर्मा की संवेदनाएँ. बिलासपुर: भारतीय साहित्य परिषद।
11. साहू, अमित (2019). आधुनिक हिंदी कविता की धारा. रायपुर: साहित्य संसार।
12. बघेल, महेश (2013). हिंदी काव्य विमर्श. बिलासपुर: संस्कार प्रकाशन।
13. टंडन, रमेश (2014). छायावादोत्तर कविता का स्वरूप. जयपुर: नवभारत प्रकाशन।
14. शर्मा, अशोक (2017). हिंदी साहित्य में कवि और काल. भोपाल: साहित्य अकादमी।
15. नेगी, सुनील (2015). छायावादी और आधुनिक कवि. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिकेशन।
16. मिश्रा, अमरनाथ (2018). काव्य और समाज. दिल्ली: साहित्य भवन।
17. वर्मा, एस. एन. (2020). छायावाद के बाद की कविता. रायपुर: केंद्रीय विश्वविद्यालय प्रकाशन।

18. त्रिपाठी, रमा (2019). हिंदी कविता: दृष्टि और प्रवृत्तियाँ. इलाहाबाद: लोकभारती।
19. झा, राधेश्याम (2016). हिंदी काव्य और आलोचना. वाराणसी: भारती भवन।
20. छत्तीसगढ़ साहित्य परिषद् (2021). छायावादी और आधुनिक कविताएँ. रायपुर: साहित्य परिषद् प्रकाशन।

7. सारांश (छायावादोत्तर काव्य)

छायावादोत्तर काव्य हिन्दी काव्य का वह चरण है जो 1945 ई. के बाद शुरू हुआ। इस काल में काव्य का केन्द्र व्यक्तिगत भावनाओं से हटकर सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक चेतना और मानवीय संघर्ष की ओर मुड़ गया।

कविता में बौद्धिकता, प्रयोगशीलता और सामाजिक आलोचना के स्वर प्रबल हुए। छायावादोत्तर काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं -

यथार्थवाद की प्रवृत्ति: कवि अब कल्पना की दुनिया से निकलकर समाज के वास्तविक जीवन से जुड़ने लगे। गरीबी, अन्याय, शोषण और राजनीतिक विडंबनाएँ काव्य के विषय बने।

प्रयोगवाद : अज्ञेय के नेतृत्व में कविता में नये रूप, शिल्प और अभिव्यक्ति के प्रयोग हुए। भाषा, बिंब और प्रतीकों में नवीनता दिखाई दी।

नयी कविता की प्रवृत्ति: कवियों ने व्यक्ति के भीतर की जटिलताओं और अकेलेपन को व्यक्त किया। व्यक्तिगत अनुभूति को सामाजिक संदर्भों में रखा गया।

प्रगतिवाद और सामाजिक यथार्थ: दिनकर, नागार्जुन, शमशेर और मुक्तिबोध ने समाज में परिवर्तन की चेतना जगाई। अन्याय और विषमता के विरोध में कविताएँ लिखी गईं।

आत्मचेतना और संघर्षशीलता: कवि अब समाज में अपनी भूमिका को लेकर सजग हुए। कविता “जनजीवन का दस्तावेज़” बन गई।

प्रमुख कवि और उनकी विशेषताएँ :

(क) गजानन माधव मुक्तिबोध (1917-1964)

हिन्दी कविता में आत्मसंघर्ष, बौद्धिक गहराई और सामाजिक चेतना के कवि।

प्रमुख रचनाएँ: अंधेरे में, चाँद का मुँह टेढ़ा है, भूतकाल, ब्रह्मराक्षस।

उन्होंने व्यक्ति की आत्मपीड़ा और समाज के भ्रष्ट ढाँचे पर प्रहार किया।

उनकी कविता विचारशील, वैचारिक और आत्मविश्लेषी है।

(ख) अज्ञेय (1900-1987)

प्रयोगवाद और नई कविता आंदोलन के प्रवर्तक।

प्रमुख रचनाएँ: हरी घास पर क्षणभर, असाध्य वीणा, इत्यलम, बहुत दिन बीते।

उन्होंने कविता में स्वातंत्र्य, आत्मानुभूति और सौंदर्यबोध को स्थान दिया। बिंब, प्रतीक और भाषा के प्रयोग में अत्यधिक नवीनता दिखाई।

(ग) रामधारी सिंह ‘दिनकर’ (1908-1974)

राष्ट्रीय चेतना, वीर रस और सामाजिक संघर्ष के कवि।

प्रमुख रचनाएँ: उर्वशी, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, परशुराम की प्रतीक्षा। दिनकर की कविता में शौर्य, ऊर्जा, स्वाभिमान और मानवतावाद की भावना है। उन्हें “राष्ट्रीय कवि” कहा जाता है।

(घ) धूमिल (1936-1975)

जनवादी चेतना और राजनीतिक व्यंग्य के कवि।

प्रमुख रचनाएँ: संसद से सड़क तक, कल सुनना मुझे, मोचीराम। उन्होंने भ्रष्ट व्यवस्था, झूठी राजनीति और आम आदमी की पीड़ा को तीखे शब्दों में व्यक्त किया। उनकी कविता में कटु यथार्थ और विद्रोही स्वर प्रमुख हैं।

निष्कर्षत : छायावादोत्तर काव्य ने हिन्दी साहित्य को यथार्थ, संघर्ष और विचार की नयी दिशा दी।

मुक्तिबोध ने आत्मसंघर्ष का दर्शन दिया, अज्ञेय ने प्रयोग की स्वतंत्रता दी, दिनकर ने राष्ट्रीय चेतना का संचार किया, और धूमिल ने व्यवस्था के विरुद्ध जनस्वर को मुखर किया। इन कवियों ने मिलकर हिन्दी कविता को आध्यात्मिक भावुकता से निकालकर सामाजिक यथार्थ और चिंतनशीलता की ओर अग्रसर किया।

MATS UNIVERSITY

MATS CENTRE FOR DISTANCE AND ONLINE EDUCATION

UNIVERSITY CAMPUS: Aarang Kharora Highway, Aarang, Raipur, CG, 493 441

RAIPUR CAMPUS: MATS Tower, Pandri, Raipur, CG, 492 002

T : 0771 4078994, 95, 96, 98 Toll Free ODL MODE : 81520 79999, 81520 29999

Website: www.matsodl.com

